❀ विषय सूची ❀

विषय		पृष्ठ
प्रस्तावना	...	१–४८
१ अश्व भेंट	...	४९
२ अश्व परीक्षा	...	५२
३ दुर्गम वन में	...	५५
४ भील कन्या से प्रणय	...	५८
५ युवराज की खोज	...	६३
६ युवराज पद की प्रथम परीक्षा	...	६६
७ युवराज पद की द्वितीय परीक्षा	...	६८
८ युवराज पद की तृतीय परीक्षा	...	७०
९ देश-निष्कासन	...	७२
१० राज्य संन्यास	...	७४
११ नन्दिग्राम में	...	७८
१२ मूर्खता अथवा चातुर्य	...	८०
१३ प्रणय परीक्षा	...	८४
१४ गृह-जामाता	...	८८
१५ पुत्र लाभ	...	९२
१६ चिलाती के अत्याचार	...	९८
१७ गिरव्रज की पुकार	...	१०१
१८ गिरव्रज पर आक्रमण	...	१०५
१९ राज्यारोहण	...	१०८
२० नन्दि ग्राम पर कोप	...	११३
२१ बुद्धि चातुर्य	...	११८
२२ अभयकुमार का अन्वेषण	...	१३०
२३ पिता-पुत्र की भेंट	...	१३३
२४ युवराज पद	...	१३८
२४ श्रमण गौतम	...	१४०
२६ गौतम सिद्धार्थ तथा बिम्बसार	...	१५०
२७ कोशल राजकुमारी से सम्बन्ध	...	१५५
२८ बौद्धमत की शरण में	...	१५९
२९ अभयकुमार की न्याय बुद्धि	...	१६३

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

हिन्दी में साहित्य की वर्तमान गति—यद्यपि भारत परतन्त्रता की बेड़ी को तोड़ कर आज स्वतन्त्र हो चुका है, किन्तु उसकी परतन्त्रता की अनेक कुटेव अभी तक भी बनी हुई हैं। भारत को वर्तमान स्वतन्त्रता अंग्रेजों से मिली है, अतः उसकी नस-नस में अंग्रेज़ीपना समाया हुआ है। जिस प्रकार समृद्ध योरुप के नर-नारी उपन्यास द्वारा मनोरंजन कर समय यापन करते हैं, उसी प्रकार भारतवासी आज भी करना चाहते हैं। हिन्दी के लेखक भी अपने ऐसे पाठकों की रुचि को पूर्ण करने के लिए अपनी लेखनी का दुरुपयोग कर रहे हैं।

समय-यापन करने वाले साहित्य का राष्ट्रविरोधी रूप—यद्यपि हमको आज राजनीतिक स्वतन्त्रता मिल गई है, किन्तु बौद्धिक परतन्त्रता से हम अभी तक भी नहीं छूट पाये हैं। इसके अतिरिक्त आर्थिक परतन्त्रता तो हमको अत्यन्त भयंकर रूप में कस कर जकड़े हुए है। देश के सामने पुनर्निर्माण के कई क्षेत्र खुले पड़े हैं, जिनमें हमको दसियों वर्ष तक अत्यन्त कठोर परिश्रम करना पड़ेगा। आज देश के सामने पुनर्निर्माण का इतना अधिक कार्य है कि भारत के बच्चे-बच्चे के योग से ही उसको पन्द्रह-बीस वर्ष में पूर्ण किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में हमको समय का अपव्यय करने वाले साहित्य का अध्ययन करना अथवा निर्माण करन्य दोनों ही कार्य देशहित के प्रतिकूल दिखलाई देते हैं। जो लोग अपने देश को भरपेट अन्न, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा तथा आजीविका नहीं दे सकते उनको इस प्रकार समय का अपव्यय करने तथा कराने का कोई अधिकार नहीं है।

हिन्दी के ऐतिहासिक उपन्यास—इसी भावना के वशवर्ती होकर आज हिन्दी के लेखकों में समय का अपव्यय करने वाले उपन्यासों की अपेक्षा ऐतिहासिक उपन्यासों का कुछ-कुछ आदर किया जाने लगा है। इधर हिन्दी में कई-एक अच्छे ऐतिहासिक उपन्यास निकले हैं। श्री वृन्दावनलाल वर्मा ऐसे उपन्यास लेखकों में आज अग्रगण्य हैं। किन्तु श्री चतुरसेन शास्त्री को वृन्दावन बाबू की

गति पसंद नहीं है। उनका कहना है कि "वृन्दावनलाल वर्मा के इतिहास की सत्य रेखाओं पर चलने के कारण उनके उपन्यासों में इतिहास-रस की अपेक्षा इतिहास-सत्य अधिक व्यक्त हुआ है, जिससे उनकी रचना में भावना और तल्लीनता की अपेक्षा सतर्कता अधिक व्यक्त हुई है।" श्री चतुरसेन शास्त्री की सम्मति में "इसी से वृन्दावन बाबू के उपन्यास हृदय की अपेक्षा मस्तिष्क पर अपना प्रभाव अधिक डालते हैं और पाठक उनके पात्रों के सुख-दुःख को अपने सुख-दुःख में आरोपित नहीं कर पाता और केवल एक सहानुभति-पूर्ण दर्शक-मात्र ही रह जाता है।"

ऐतिहासिक उपन्यासों की मर्यादा—श्री चतुरसेन शास्त्री ने अपने ६०० पृष्ठ के विशालकाय उपन्यास "वैशाली की नगर-वधू" के पृष्ठ ८८६ पर लिखा है कि "इस ग्रन्थ में पात्रों की काल-परिधि का कुछ भी विचार नहीं किया गया है और आवश्यकता पड़ने पर इतिहास के सत्य की रक्षा करने की कुछ भी परवाह नहीं की गई है।"

इसका अर्थ यह हुआ कि श्री चतुरसेन शास्त्री अपने पाठकों को इतिहास-रस के नाम से इतिहास के धोखे में रखना चाहते हैं। इसीलिये उन्होंने अपने इस उपन्यास में अखण्ड ब्रह्मचारिणी महासती चन्दनबाला का विवाह राजकुमार विडूडभ से कराया है, वीतराग भगवान् महावीर स्वामी को राग-द्वेष में रत दिखलाया है तथा उत्तम गृहस्थ महाराजा श्रेणिक बिम्बसार के चरित्र को इतना गिरा हुआ दिखलाया है कि उन्होंने प्रथम आर्या मातंगी नामक कुमारी कन्या के साथ गुप्त व्यभिचार करके आम्रपाली को उत्पन्न किया और फिर अपनी पुत्री उसी आम्रपाली के साथ भी समागम किया। यदि ऐतिहासिक घटनाओं को इतना अधिक विकृत करके इसे इतिहास-रस नाम दिया जाता है तो ऐसे इतिहास-रस से हिन्दी के पाठकों की रक्षा करना प्रत्येक इतिहासप्रेमी का परम कर्तव्य हो जाता है।

ऐतिहासिक उपन्यास तो केवल उसी को कहा जा सकता है, जिसमें ऐतिहासिक तथ्यों की समस्त रूप से रक्षा की गई हो। उसमें कल्पना का उपयोग ऐतिहासिक पात्रों की उन्हीं जीवन-घटनाओं के सम्बन्ध में किया जा सकता है, जिनके सम्बन्ध में इतिहास मौन हो। ऐतिहासिक पात्रों की ऐसी जीवन-घटनाओं

से सम्बद्ध अन्य नवीन पात्रों की भी कल्पना ऐतिहासिक उपन्यास में की जा सकती है। किन्तु ऐतिहासिक तथ्य को तोड़-मरोड़ कर उपस्थित करना ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र से बाहिर की बात है।

इतिहास-रस क्या है ?—श्री चतुरसेन शास्त्री ने अपने पक्ष के समर्थन में 'इतिहास-रस' शब्द का नया प्रयोग किया है। इसमें संदेह नहीं कि ऐतिहासिक उपन्यास में इतिहास-रस ही प्रधान होता है, किन्तु प्रश्न यह है कि वह इतिहास-रस है क्या ? क्या ऐतिहासिक पात्रों के नाम की पृष्ठभूमि में उनकी जीवन-घटनाओं को कल्पना की उड़ान पर उड़ाना इतिहास-रस है ? निश्चय ही यह इतिहास-रस न होकर इतिहास का उपहास एवं उसका दुरुपयोग है। इतिहास-रस इससे विलक्षण एक और ही रस है, जिसका नीचे वर्णन किया जाता है—

आज के भारत की साहित्यिक आलोचना की मनोवृत्ति अत्यन्त संकीर्ण बन गई है। वह इस विषय में पाश्चात्य संसार से भी कुछ सीखना नहीं चाहता। हमारे प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में शृङ्गार, हास्य, रौद्र आदि नवरसों का वर्णन मिलने के कारण आलोचना के क्षेत्र को अत्यन्त संकीर्ण बना कर केवल कल्पनात्मक साहित्य—उपन्यास, कहानी तथा कविता को ही साहित्य मान कर उसी की आलोचना की जाती है। आज के भारत के पुनर्निर्माण-कार्य में मुख्य रूप से भाग लेने वाले इतिहास, राजनीति, शोध तथा विज्ञान के विषयों को साहित्य से एकदम बहिष्कृत करके उनकी एकदम उपेक्षा की जाती है। हमारे आलोचक विद्वानों की इस प्रवृत्ति के कारण आज हिन्दी साहित्य के लेखन तथा प्रकाशन दोनों ही क्षेत्रों में एक भारी दलबन्दी बन गई है, जिसके द्वारा कविता, कहानी के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के साहित्य का बहिष्कार किया जा रहा है, किन्तु यह प्रवृत्ति आत्मघाती है। इस प्रकार देश की प्रगति में रोड़े डाल कर अपनी स्वार्थसाधना द्वारा बाधा पहुँचाई जा रही है। वास्तव में आजकल के आलोचकों का अध्ययन अत्यन्त सीमित होता है। किन्तु लिखने का एक तो उन्हें व्यसन होता है, दूसरे, अपने शिक्षा-विभाग के स्थान के कारण उनमें पाठ्य ग्रन्थों पर अपना प्रभाव डाल कर अपने एकांगी अध्ययन के बल पर ही अपनी लेखनी से धन कमा लेने की क्षमता होती है। अतएव कम अध्ययन करने वालों के लिए आलोचना

से अधिक सस्ता विषय लिखने के लिए दूसरा नहीं मिल सकता। इसमें लेखक खूँटे में बंधे हुए बछड़े के समान अपनी अत्यधिक संकुचित परिधि के अन्दर घूमता-घामता हुआ ही बिना अन्य विषयों का अध्ययन किये अपने को भारी विद्वान् मान कर लिखता रहता है। किन्तु उसकी इस प्रवृत्ति से हमारे राष्ट्र, हिन्दी भाषा तथा स्वयं उस लेखक तीनों की ही उन्नति अवरुद्ध हो जाती है। यदि भारतीय राष्ट्र तथा राष्ट्रभाषा की उन्नति करनी है तो हिन्दी को अपने आलोचनात्मक दृष्टिकोण को निम्नलिखित दिशाओं में व्यापक बनाना ही होगा।

नव रसों की सीमा को बढ़ाने की आवश्यकता—भारत का कल्याण आज उन पुराने ढंग के नव रसों, उनकी कविताओं तथा समय का अपव्यय करने वाले उपन्यासों से नहीं हो सकता। आज उसको राजनीति, इतिहास, विज्ञान अर्थशास्त्र आदि विषयों के अनेकानेक ग्रन्थों की आवश्यकता है। अतएव साहित्य को पुराने नौ रसों की संख्या में परिमित रखने से आज साहित्य के अनेक अंग न्याय प्राप्त करने से वंचित हो रहे हैं। अतएव आज आवश्यकता इस बात की है कि नव रसों की इस संख्या को आगे बढ़ा कर तीन-चार नए रसों की कल्पना की जावे। कम से कम यह तीन रस तो अत्यधिक आवश्यक हैं—

इतिहास रस व विज्ञान रस तथा अन्वेषण रस—इन तीन रसों की कल्पना करके इन-इन विषयों के ग्रन्थों को साहित्य में उनका उपयुक्त स्थान दिया जाना चाहिए। इतिहास रस में राजनीति का अन्तर्भाव किया जा सकता है, क्योंकि वर्तमान इतिहास ही राजनीति है और भूतकालीन राजनीति ही इतिहास है। विज्ञान रस में भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, प्राणिशास्त्र, भूगर्भ विज्ञान, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र आदि विषयों का अन्तर्भाव किया जा सकता है। जो लोग इन सभी विषयों की शोध में रुचि रखते हैं, उनके लिए अन्वेषण रस की कल्पना भी करनी ही पड़ेगी।

इन विषयों का अध्ययन करने वाले इस बात को जानते हैं कि यह विषय रस शून्य नहीं हैं। एक प्राणिशास्त्र का विद्वान् अपने विषय में वर्षों तक केवल इसीलिए तन्मय होकर खोज करता रहता है कि उसको उसमें रस आता है।

इतिहास एवं राजनीति का एक विद्वान् सैकड़ों ग्रन्थों का पर्यालोचन करके केवल इसीलिये अपने विषय पर तन्मय होकर लिखता रहता है कि उसे उसमें रस आता है। यही बात अन्य अनेक विषयों का अन्वेषण करने वालों पर भी लागू होती है। इन तीनों विषयों को रस मानना ही चाहिये। किन्तु यदि आजकल के आलोचक अब भी हठवश इन विषयों को रसों में सम्मिलित करना स्वीकार न करेंगे तो वह देखेंगे कि कुछ समय पश्चात् इन विषयों की आलोचना की गंगा उनकी पूर्णतया उपेक्षा करके स्वयं ही प्रवाहित होने लगेगी।

इस ग्रंथ की कथावस्तु—अब हम आलोचना के विषय को छोड़कर फिर अपने प्रकृत विषय पर आते हैं। हमारे प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु का आधार वह प्रसिद्ध व्यक्ति है, जिसको आज भारतीय इतिहास के निर्णीत भाग का आदि पुरुष माना जाता है। वास्तव में श्रेणिक बिम्बसार से पूर्व का भारतीय इतिहास अत्यधिक विवादास्पद होने के कारण अभी तक भी निर्विवाद रूप से इतिहास में स्थान नहीं पा सका है। यद्यपि श्रेणिक बिम्बसार के सम्बन्ध की भी सब घटनाएं इतिहास में नहीं आ सकी हैं, किन्तु जैन तथा बौद्ध ग्रन्थ उसके जीवन की अनेक घटनाओं से भरे पड़े हैं। यद्यपि उन सभी घटनाओं को अभी निर्विवाद रूप से सत्य नहीं माना जा सकता, किन्तु ऐतिहासिक अन्वेषण के इस युग में कौन जाने कि भविष्य में कौन सी घटना ऐतिहासिक तथ्य की कसौटी पर खरी उतर आवे। हमने इस ग्रन्थ में उन सभी घटनाओं को ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लिया है। इससे हमको एक लाभ यह भी हुआ है कि नई-नई कल्पनाएं करने का झंझट कुछ कम हो गया है, फिर भी हमको इस ग्रन्थ में कुछ नई-नई कल्पनाएं करनी ही पड़ी हैं, जैसा कि आगे चल कर दिखलाया जावेगा।

श्रेणिक बिम्बसार एक ऐसा व्यक्ति था, जो भगवान् महावीर तथा गौतम बुद्ध दोनों का समकालीन था। उसको दोनों ही महानुभावों के मुख से उनके उपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। गौतम बुद्ध ने भगवान् महावीर से प्रथम उपदेश देना आरंभ किया था। अतएव श्रेणिक बिम्बसार प्रथम बौद्ध बन कर पीछे जैन बना था।

मगध का प्राचीन इतिहास—श्रेणिक बिम्बसार मगध का राजा था। बिहार राज्य के जो प्रदेश आजकल पटना तथा गया जिलों में सम्मिलित हैं, उन्हीं का प्राचीन नाम मगध था। उसकी राजधानी पहिले गिरिव्रज थी, जो राजगृह से कुछ दूर पंच पहाड़ियों से बाहिर गया के कुछ पास थी। ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के ५६ वें सूक्त के मंत्र ४ के अनुसार मगध का राजा प्रपगंड कीकट नरेश था। यास्क ने अपने निरुक्त (६-३२) में कीकट को अनार्य बतलाया है। अभिधान चिन्तामणि में कीकट मगध है। अथर्ववेद के पांचवें काण्ड के २२ वें सूक्त के १४ वें मंत्र में मगध का वर्णन है। मागधों का पहले बुरा समझा जाता था। किन्तु शांखायन ब्राह्मण में उनका सम्मानित रूप में वर्णन किया गया है। महाभारत के अनुसार बृहद्रथ मगध के प्रथम राजा थे। उस समय मगध में ८०,००० ग्राम लगते थे और वह विध्याचल पर्वत तथा गंगा, चम्पा और सोन नदियों के बीच में था। रीज़ डेविड्स् के अनुसार उस समय मगध की परिधि २३०० मील थी।

ऐतरेय ब्राह्मण में प्राचीन काल के विविध राज्यों की शासनप्रणालियों का वर्णन करते हुए यह बतलाया गया है कि उन दिनों प्रतीची (पश्चिम) दिशा के सुराष्ट्र (गुजरात), कच्छ (काठियावाड़) तथा सौवीर (सिन्ध) आदि देशों के शासन को 'स्वराज्य' कहा जाता था और वहां के शासक 'स्वराट्' कहलाते थे। उदीची (उत्तर) दिशा में हिमालय के परे उत्तरकुरु, उत्तर मद्र आदि जनपदों मे 'वैराज्य' शासन प्रणाली थी। ये राज्य 'विराट्' या राजा से विहीन होते थे। दक्षिण दिशा में सात्वत (यादव) लोगों में 'भोज्य' प्रणाली प्रचलित थी। इन जनपदों के शासकों को 'भोज' कहते थे। इसी प्रकार कुछ अन्य जनपदों के शासन का उल्लेख करके ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि 'प्राच्य' (पूर्व) दिशा के देशों में जो राजा हैं, वे 'सम्राट्' कहलाते हैं। उनका साम्राज्य के लिये 'सम्राट्' के रूप में ही अभिषेक होता है। उन दिनों प्राचीन जनपदों में मगध और कलिंग प्रमुख थे।

बार्हद्रथ वंश—मगध राज्य का प्रारंभ ही साम्राज्यवाद की प्रकृति से हुआ। महाभारत के समय मगध का राजा जरासन्ध था। उसके वंश को

बार्हद्रथ वंश कहा जाता था। जरासन्ध बृहद्रथ से नौवीं पीढ़ी पर था। उसनें अंग, बंग, कलिङ्ग तथा पुण्ड्र आदि को जीतकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया और अनेक राज्यों से कर लिया। उसकी राजधानी गिरिव्रज थी। उसनें अनेक गणतंत्रों पर भी आक्रमण किये। अन्धक-वृष्णियों का मथुरा का संघ राज्य भी उसके आक्रमण का शिकार हुआ, जिससे कृष्ण ने उनको अपना जनपद छोड़ कर द्वारिका ले जाकर बसाया। बाद में कृष्ण नें पाण्डवों की सहायता से भीम के हाथों जरासन्ध का वध कराया। उसके बाद ९४० वर्ष तक २२ बार्हद्रथ वंशीय राजाओं ने राज्य किया। इस वंश का अंतिम राजा रिपुञ्जय था।

रिपुञ्जय के अमात्य का नाम पुलिक था। उसने राजा रिपुञ्जय को मार कर अपने पुत्र बालक को मगध का सम्राट् बनाया। पुलिक मगध के आधीन अवन्ति का राजा भी था। उसके दो पुत्र थे—बालक और प्रद्योत। पुलिक नें अपने बड़े पुत्र बालक को मगध का राज्य देकर अपने छोटे पुत्र प्रद्योत को अवन्ति का राज्य दिया। बाद में प्रद्योत नें अपनी शक्ति को खूब बढ़ा लिया, जिससे बाद में उसे चण्डप्रद्योत भी कहा गया।

शिशुनाग वंश का संस्थापक भट्टिय शिशुनाग—किन्तु बालक एक निर्बल शासक था। भट्टिय नामक एक बलवान् सेनापति ने उसे मार कर मगध के राज्यसिंहासन पर अधिकार कर लिया। भट्टिय को कहीं-कहीं श्रेणिक तथा जैन ग्रन्थों में उपश्रेणिक कहा गया है। संभवतः उसका एक नाम शिशुनाग भी था। कुछ विद्वानों का मत है कि भट्टिय पुलिक की परम्परा का अनुसरण करके मगध के राजसिंहासन पर स्वयं नहीं बैठा, वरन् उसने अपने पन्द्रहवर्षीय पुत्र बिम्बसार को राजा बनाया। किन्तु जैन ग्रन्थों में लिखा है कि बिम्बसार को अपने पिता उपश्रेणिक का कोपभाजन बन कर निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा। क्योंकि राजा भट्टिय ने एक भीलकन्या से विवाह करके उसके पुत्र को राजगद्दी देने की प्रतिज्ञा की थी, अतः राजा भट्टिय ने अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के लिये बिम्बसार को देशनिर्वासित करके अपने पुत्र चिलाती को मगध की गद्दी पर बिठलाया। किन्तु वह एक अच्छा शासक तथा सेनापति नहीं था। अतएव मगध के नागरिक तथा सैनिक नेताओं ने बिम्बसार को निर्वासित जीवन से

बुला कर अपना राजा बनाया।

श्रेणिक नाम का कारण—जैन ग्रन्थों में राजा भट्टिय का नाम उपश्रेणिक तथा बिम्बसार का नाम श्रेणिक बतलाया गया है। किन्तु विद्वानों का विचार है कि श्रेणिक उनका नाम न होकर उनकी उपाधि थी, जो उनको अपनी सैन्य-बल के महत्त्वशाली 'श्रेणिबल' के कारण प्राप्त थी। विद्वानों का विचार है कि उन दिनों मगध में सैनिकों की अनेक श्रेणियाँ (Guilds) थीं, जिनका संगठन स्वतन्त्र होता था। श्रेणियों में संगठित इन सैनिकों की आजीविका युद्ध से ही चलती थी। राजा लोग उन सैनिकों को अपने अनुकूल बना कर उनकी सहायता प्राप्त करने के लिये सदा उत्सुक रहा करते थे। संभवतः भट्टिय इसी प्रकार की एक शक्तिशाली सैनिक श्रेणि का नेता था, किन्तु बिम्बसार की आधीनता सभी श्रेणियों ने स्वीकार कर ली थी। इसीलिये भट्टिय को उपश्रेणिक तथा बिम्बसार को श्रेणिक कहा गया। ऐसा जान पड़ता है कि बिम्बसार ने अपने बल को बढ़ा कर अपनी सेनाओं के श्रेणि रूप को समाप्त कर अपनी सेनाओं को अधिक संगठित किया। इसीसे बाद में इसके पुत्र कुणिक अजातशत्रु को श्रेणिक नहीं कहा गया।

किन्तु अवन्ति के राजा प्रद्योत को मगध में अपने भाई का राज्यच्युत होना अच्छा नहीं लगा। इसीलिये उसने मगध पर आक्रमण करने की तैयारी की। अवन्ति तथा मगध के घोर संघर्ष का वर्णन इन पंक्तियों में आगे किया जावेगा। कहना न होगा संघर्ष में मगध ही सफल हुआ। मगध में भृत तथा श्रेणि बल की प्रधानता बाद में भी किसी न किसी रूप में अवश्य बनी रही। इसलिये मगध की सैनिक शक्ति ऐसी प्रचण्ड बन गई कि अन्य राज्य उसके सामने नहीं टिक सकते थे।

सोलह महाजनपद—राजा बिम्बसार के समय तथा उसके बाद भी मगध की इतनी अधिक उन्नति हुई कि क्रमशः वह भारत की सब से बड़ी राजनीतिक शक्ति बन गया। मगध की तत्कालीन इस उन्नति पर विचार करने के लिये भारत के उस समय के अन्य राज्यों का वर्णन करना भी आवश्यक है।

प्राचीन भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्य थे। इनमें से प्रत्येक राज्य को 'जनपद' कहा जाता था। कालान्तर में इनमें से कुछ ति की

दौड़ में अन्य जनपदों से आगे निकल गए। उन्होंने अपने पास के जनपदों पर अधिकार करके अपने जनपद के आकार को बढ़ा लिया, जिससे बाद में बड़े-जनपदों को 'महाजनपद' कहा जाने लगा।

इस समय के आस-पास गौतम बुद्ध का जन्म हो चुका था। बाद में उन्होंने बोध प्राप्त करके बौद्ध धर्म का उपदेश किया। इसलिये इन दिनों बौद्ध साहित्य की अत्यधिक उन्नति हुई। बुद्ध की मृत्यु के सौ वर्ष के अन्दर ही अन्दर बौद्ध साहित्य के एक बड़े भारी अंश का निर्माण किया गया, जिससे हमको तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक आदि अनेक क्षेत्रों में भारतीयों द्वारा की हुई उन्नति का पता चलता है। इस काल के बौद्ध साहित्य में हमको स्थान-स्थान पर सोलह महाजनपदों का वर्णन पढ़ने को मिलता है। जान पड़ता है कि उन दिनों जनपदों की संख्या अधिक होते हुए भी सोलह महाजनपद अधिक उन्नति कर गए थे।

इन महाजनपदों का आरंभ ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी में हुआ था। तीन सौ वर्ष तक उनका किसी न किसी रूप में अस्तित्व बना ही रहा। इन सोलह महाजनपदों में दो-दो की आठ जोड़ियां इस प्रकार थीं—

(१) अंग-मगध, (२) काशी-कोशल, (३) वृजि-मल्ल, (४) चेदि-वत्स, (५) कुरु-पाञ्चाल, (६) मत्स्य-शूरसेन, (७) अश्मक-अवन्ति तथा (८) गान्धार-कम्बोज। यह गिनती पूर्व से आरंभ होती है।

अब इनमें से प्रत्येक का पृथक्-पृथक् वर्णन किया जाता है—

१. **अंग**—यह राज्य मगध के पूर्व में था। चन्दन नदी मगध तथा अंग दोनों राज्यों की सीमा थी। इसकी राजधानी चम्पा थी, जिसे मालिनी भी कहा जाता था। उन दिनों यह भारत की बड़ी समृद्ध नगरियों में से थी। जिस स्थान पर आज भागलपुर नगर का पश्चिमी भाग चम्पानगर चम्पा नाला अथवा चम्पा नदी के किनारे बसा हुआ है, अंग की प्राचीन राजधानी ठीक उसी स्थान पर थी। महाभारत काल में यहां दुर्योधन के प्रसिद्ध मित्र कर्ण का राज्य था। बाद में जैनियों के बारहवें तीर्थंकर भगवान् वासुपूज्य का यहीं जन्म हुआ। उन्होंने यहां राज्य भी किया और यहीं दीक्षा लेकर चम्पापुरी के पास मन्दार पर्वत से मोक्ष गए। इसलिये यह जैनियों का सिद्धक्षेत्र भी गिना जाता है। इन

दिनों चम्पा, गिरिव्रज (राजगृह), श्रावस्ती, साकेत, काशी तथा कौशाम्बी भारत के बड़े नगर थे। व्यापारी लोग चम्पा से अपने-अपने पोतों (जहाजों) में माल भर कर स्वर्णभूमि (बर्मा) तथा पूर्वी द्वीपसमूह तक जाया करते थे। अंग तथा मगध में प्रायः युद्ध हुआ करते थे। मगध के महाराज भट्टिय उपश्रेणिक के समय अंग की गद्दी पर महाराज ब्रह्मदत्त विराजमान थे। उन्होंने एक बार महाराज भट्टिय को युद्ध में पराजित भी किया था। बिम्बसार के समय उनके पुत्र दधिवाहन पर कौशाम्बी नरेश शतानीक ने आक्रमण करके उनको मार दिया और अंग पर अधिकार कर लिया। किन्तु दधिवाहन के पुत्र दृढ़वर्मन् को शतानीक के पुत्र उदयन ने फिर से अंगपति बना दिया, जैसा कि प्रियदर्शिका में लिखा हुआ है।

बाद में सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार ने दृढ़वर्मन् से अंग जीतकर उसे मगध में मिला लिया।

२. **मगध**—वर्तमान पटना तथा गया जिलों को मगध राज्य कहा जाता था। महाभारत के अनुसार यहां का प्रथम नरेश बृहद्रथ था। उसके बाद जरासन्ध यहां का सब से प्रतापी राजा हुआ। उसके समय में मगध में ८०,००० ग्राम लगते थे और यह विंध्याचल तथा गंगा, चम्पा तथा सोन नदियों के बीच में था। उसकी परिधि २३०० मील थी। राजा श्रेणिक तथा अजातशत्रु के समय मगध की सीमाएं बहुत कुछ बढ़ गईं, जिनका यथास्थान आगे वर्णन किया जावेगा। श्रेणिक बिम्बसार ने ५२ वर्ष तथा उसके पुत्र अजातशत्रु ने २५ वर्ष तक राज्य किया।

३. **काशी**—अथर्ववेद में काशी, कोशल तथा विदेहों का साथ-साथ वर्णन किया गया है। शांख्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार श्वेतकेतु के समय जल जातुकर्ण्य काशी, विदेह और कोशल के नरेशों का पुरोहित था। काशीराज पुरुवंशी थे। पौरववंश के बाद काशी में ब्रह्मदत्त वंश का राज्य हुआ। इस वंश की स्थापना काशी में महाभारत काल में हुई थी। संभवतः यह वंश विदेहों की शाखा थी। ईसा पूर्व ७७७ में काशीराज अश्वसेन का देहान्त हुआ था।

राजा अश्वसेन अथवा विश्वसेन ने अश्वमेध यज्ञ किया था। बाद में जैनियों के तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ ने उनकी पटरानी ब्रह्मदत्ता की कोख से

जन्म लिया। संभवतः अपने पुत्र के प्रभाव के कारण बाद में वह जैनी हो गए। इसी से उनका उत्साह सैन्य संगठन में नहीं रहा और बाद में शतानीक शत्रुजित् ने उन्हें पराजित कर दिया। किन्तु काशीराज ने विभिन्न काल में कोशल, अश्मक, अंग तथा मगध तक को पराजित किया था। काशी राज्य के पश्चिम में वत्स राज्य, उत्तर में कोशल राज्य तथा पूर्व में मगध राज्य था। समय-समय पर वत्सों, कोशलों तथा मागधों ने भी काशी को जीता। बुद्ध से लगभग १५० वर्ष पूर्व ब्रह्मदत्तवंशीय काशी-नरेश ने कोशल पर विजय प्राप्त की। ईसा पूर्व ६७५ तक काशी का अच्छा प्रभाव बना रहा।

५. **कोशल**—कोशल राज्य वर्तमान अवध प्रांत में था। पहिले इसकी राजधानी अयोध्या थी, जो सरयू नदी के किनारे पर थी। बौद्ध काल में अयोध्या का प्रभाव घटने पर श्रावस्ती उसकी राजधानी हुई। श्रावस्ती अचिरावती (राप्ती) नदी के तट पर स्थित थी। ईसा पूर्व सन् ५३३ से कोशल की गद्दी पर प्रसेनजित् बैठा। वह इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय था। उसने अपनी प्रधान राजधानी श्रावस्ती ही बनाई। साकेत श्रावस्ती से ४५ मील उत्तर को थी। साकेत सरयू नदी के किनारे पर ही बसा हुआ था। अतएव वह स्थल व्यापार के अतिरिक्त नौ-व्यापार का भी मुख्य केन्द्र था। उन दिनों सरयू का विस्तार डेढ़ मील का था और उसमें बड़े-बड़े पोत चला करते थे। महाराज प्रसनजित् का साकेत में भी एक राजमहल तथा किला था।

श्रावस्ती में उन दिनों समस्त जम्बूदीप की सम्पत्ति एकत्रित थी। वहां अनेक धनकुवेर निवास करते थे, जिनके सार्थ जम्बूद्वीप के अतिरिक्त ताम्रलिप्ता नदी के मार्ग द्वारा पूर्व में बंगाल की खाड़ी तथा पश्चिम में भरुकच्छ तथा शूर्पारक के मार्ग से अरब सागर को पार कर लक्षद्वीप, मालद्वीप तथा सुदूर पश्चिम के अन्य द्वीपों में व्यापार करके जम्बूद्वीप की सम्पदा का विस्तार किया करते थे। इनके अतिरिक्त एक मार्ग श्रावस्ती से प्रतिष्ठान तक जाता था। उस मार्ग में माहिष्मती, उज्जैन, गोनर्द, विदिशा, कौशाम्बी तथा साकेत पड़ते थे। श्रावस्ती से एक सरल मार्ग राजगृह को पार्वत्य प्रदेश में होकर जाता था। इस मार्ग में सेतव्य, कपिलवस्तु, कुशीनारा, पावा, हस्तिग्राम, भण्डग्राम, वैशाली, पाटलीपुत्र और नालन्द पड़ते थे। नदियों से उन दिनों व्यापार का कार्य अधिक लिया

जाता था। उन दिनों गंगा में सहजाति और यमुना में कौशाम्बी तक बड़ी-बड़ी नावें चलती थीं। सार्थवाह विदेह होकर, गान्धार होकर, मगध होकर सौवीर तक, भरुकच्छ से बर्मा तक, दक्षिण होकर बैबिलोन तक तथा चम्पा से चीन तक जाते-आते थे। कोशल जनपद के पश्चिम में पांचाल, पूर्व में सदानीरा (गण्डक) नदी, उत्तर में नेपाल की पर्वतमाला तथा दक्षिण में स्यन्दिका नदी थी। आधुनिक समय का अवध प्रांत प्रायः प्राचीन काल का कोशल ही है।

प्रसेनजित् बड़ा भारी दिग्विजयी सम्राट् था। वास्तव में उन दिनों कोशल का प्रसेनजित् तथा मगध का श्रेणिक बिम्बसार दोनों समस्त जम्बूद्वीप पर अधिकार करके चक्रवर्ती बनने की अभिलाषा रखते थे। प्रसेनजित् ने शाक्यों को पराजित करके बलपूर्वक उनकी एक राज्यकन्या से विवाह किया। किन्तु शाक्य प्रसेनजित् से घृणा करते थे, क्योंकि उसके घर में कोई कुलीन रानी नहीं थी। उसकी राजमहिषी एक माली की लड़की थी। अतएव उन्होंने प्रसेनजित् के साथ धोखा करके उसको एक राजकुमारी न देकर उसके साथ नन्दिनी नामक एक ऐसी राजकुमारी का विवाह किया, जो वासभ खत्तिया नामक एक दासी में सामंत महालनामन से उत्पन्न हुई थी। प्रसेनजित् का उत्तराधिकारी पुत्र विडूडभ इसी शाक्य कुमारी नन्दिनी से उत्पन्न हुआ था। विडूडभ के प्रपौत्र सुमित्र को महापद्मनन्द ने ईसा पूर्व ३८० के आस-पास राज्यच्युत करके कोशल को मगध में मिला लिया।

५ वृजि या वज्जी—यहां उन दिनों गणतंत्र शासन प्रणाली थी, जिनकी राजधानी वैशाली थी। पहिले इसका नाम विशालपुरी था। मिथिला वैशाली से उत्तर पश्चिम ३५ मील पर थी। उसकी राजधानी तब भी जनकपुर ही थी। वास्तव में विदेह राज्य ने ही टूट कर वज्जी संघ का रूप ग्रहण कर लिया था। इसमें निम्नलिखित अष्टकुल थे—विदेह, लिच्छवि, ज्ञातृक, वज्जी, उग्र, भोज, ऐक्ष्वाकु और कौरव। इनमें प्रथम चार प्रधान थे। विदेहों की राजधानी मिथिला तथा लिच्छवियों की राजधानी वैशाली थी, जो आजकल के मुजफ्फरपुर जिले में थी। लिच्छवियों के भी नौ राजा थे। उनके प्रधान गणपति उन दिनों राजा चेटक थे, जो बाद में समस्त वज्जीसंघ के भी गणपति हो गए थे। ज्ञातृकों की राजधानी वैशाली के निकट कुण्डपुर या कोल्लाग थी। इसे कुण्डलपुर भी कहा

जाता था। उसके प्रधान उन दिनों राजा सिद्धार्थ थे। जैनियों के अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर उन्हीं राजा सिद्धार्थ के पुत्र थे। वैशाली बहुत बड़ा नगर था। उसके तीन भाग थे। रामायण में लिखा है कि वैशालिक वंश के संस्थापक इक्ष्वाकु राजा अलम्बुष के पुत्र विशाल थे। पुराणों में भी उनको वंशधर माना गया है। इसी कारण लिच्छवियों को शुद्ध क्षत्रिय माना जाता था। उनको अपनी वंशशुद्धि का अभिमान भी कम नहीं था। यह लोग जैन तथा बौद्धों के बराबर सहायक रहे। इसीलिये वैदिक परिपाटी वालों ने उनको द्वेषवश व्रात्य क्षत्रिय लिखा है।

वैशाली के तीन जिले थे— वैशाली, कुण्डपुर (कोल्लाग या कुण्डलपुर) तथा वाणिज्य ग्राम। तिब्बती मत के अनुसार इन तीनों में क्रमशः ७०००, १४००० तथा २१००० मकान थे। वृजि लोगों में प्रत्येक गांव के सरदार को राजा या राजुक कहा जाता था। लिच्छवियों के ७७०७ राजा थे और उनमें से प्रत्येक उपराज, सेनापति और भाण्डागारिक (कोषाध्यक्ष) भी था।

वैशाली के खण्डहर अब भी मुजफ्फरपुर से पश्चिम की ओर को जाने वाली पक्की सड़क पर वहां से अठारह मील दूर 'वैसोढ़' नामक एक छोटे से गांव में देखे जा सकते हैं। अब से लगभग अढ़ाई सहस्र वर्ष पूर्व यह एक अत्यंत विशाल नगर था। उसके चारों ओर तिहरा परकोटा था। यह नगर अत्यंत समृद्ध था। उसमें ७७७७ प्रासाद, ७७७७ कूटागार, ७७७७ आराम और ७७७७ पुष्करिणियां थीं। उन दिनों समृद्धि में उस नगरी की समानता भारत का कोई नगर नहीं कर सकता था। उन दिनों यह गणतंत्र पूर्वी भारत में एक मात्र आदर्श तथा शक्तिशाली संघ था। इसीलिये यह प्रतापी मगध साम्राज्य की साम्राज्य-विस्तार भावना में सबसे बड़ी राजनीतिक तथा सामरिक बाधा था।

वैशाली नगर के चारों ओर काष्ठ के तीन प्राकार बने हुए थे, जिनमें स्थान-स्थान पर गोपुर तथा प्रवेशद्वार बने हुए थे। गोपुर इतने ऊंचे थे कि उनके ऊपर खड़े होकर मीलों तक के दृश्य को देखा जा सकता था। इनके ऊपर खड़े होकर प्रहरीगण हाथों में पीतल के तूर्य लिये हुए पहरा दिया करते थे।

वज्जी महाजनपद वत्स, कोशल, काशी तथा मगध जनपदों के बीच में घिरा हुआ था। यह श्रावस्ती से राजगृह जाने वाले मार्ग पर पड़ने के कारण

उन दिनों व्यापारिक तथा राजनीतिक संघर्षों का केन्द्र बना हुआ था।

यह पीछे लिखा जा चुका है कि उन दिनों यहां के गणपति राजा चेटक थे, जो लिच्छवियों के भी गणपति थे। उनकी छः कन्याएं तथा एक बहन थी। इन सातों कन्याओं के कारण उन्होंने वज्जी गणतंत्र के संबंध भारत के कई राज्यों से बना रखे थे। उनकी बहिन त्रिशला का विवाह ज्ञातृक कुल के गणपति राजा सिद्धार्थ के साथ हुआ था, जिनके यहां जैनियों के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी ने जन्म लिया था। श्वेताम्बर जैन ग्रन्थों में त्रिशलादेवी को राजा चेटक की बहिन बतलाया गया है, जो उसकी बड़ी आयु को देखते हुए ठीक मालूम देता है। दिगम्बर ग्रन्थों में उसे राजा चेटक की सातों कन्याओं में सब से बड़ी बतलाया गया है। उसके नाम प्रियकारिणी तथा मनोहरा भी थे। राजा चेटक की दूसरी पुत्री मृगावती का विवाह वत्सनरेश शतानीक के साथ कौशाम्बी में हुआ था। शतानीक को प्राचीन ग्रन्थों में सार तथा महाराज नाथ भी लिखा गया है। उन दोनों के पुत्र उदयन के सम्बन्ध में संस्कृत-साहित्य में अनेक नाटक लिखे गए हैं। राजा चेटक की तृतीय पुत्री वसुप्रभा का विवाह दशार्ण (दशानन) देश के हेरकच्छपुर (कर्मठपुर) के सूर्यवंशीय राजा दशरथ के साथ हुआ था। राजा चेटक की चौथी कन्या प्रभावती का विवाह कच्छदेश के रोरुकपुर के राजा महातुर के साथ हुआ था। पांचवीं कन्या धारिणी अंग नरेश दधिवाहन के साथ चम्पापुर में ब्याही गई थी। उसके दो संतान थीं—एक दृढ़वर्मन नामक पुत्र, दूसरी महासती चन्दनबाला, जो बालब्रह्मचारिणी रह कर विवाह किये बिना ही भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा लेने गई थी। राजा चेटक की छठी पुत्री ज्येष्ठा के विवाह का उल्लेख नहीं मिलता। उनकी सबसे छोटी पुत्री चेलना का विवाह मगध सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के साथ हुआ था। इस विवाह के कारण मगध तथा वज्जीगण का होने वाला युद्ध तो टल ही गया, इन दोनों विपरीत आदर्श वाले राज्यों में लगभग ७५ वर्ष तक घनिष्ठ मैत्री भी बनी रही। बाद में बिम्बसार तथा चेलना के पुत्र अजातशत्रु ने इस संघ पर आक्रमण करके इसे समाप्त कर दिया। वज्जी संघ का शासन एक राज्यपरिषद् किया करती थी, जिसका निर्वाचन प्रत्येक सातवें वर्ष आठों कुलों में से किया जाता था।

लिच्छवियों का अपना स्वतंत्र प्रबन्ध था। उनके शासन-प्रबन्ध के लिये उनके ७७०७ राजाओं में से नौ व्यक्तियों को गणराजा चुन लिया जाता था वैशाली के ७७०७ राजाओं में से प्रत्येक का अभिषेक मंगल-पुष्करिणी में किया जाता था। यह पुष्करिणी चारों ओर से दीवारों से घिरी हुई सशस्त्र सैनिकों के पहरे में रखी जाती थी। जैन आगमों में लिखा है कि वैशाली तथा अजातशत्रु के युद्ध में राजा चेटक की आधीनता में नौ लिच्छवी राजाओं तथा नौ मल्ल राजाओं (नव लिच्छइ नव मल्लइ) ने भी युद्ध किया था, किन्तु अजातशत्रु ने उन सभी को पराजित करके इस गणतंत्र को नष्ट करके अपने राज्य में मिला लिया।

६. **मल्ल संघ**—मल्लों की दो राजधानियां थीं—कुशीनारा तथा पावा। कुशीनारा कसिया के निकट थी तथा पावा वर्तमान पडरौना है। इनके भी नौ राजा थे। कुछ दिनों स्वतंत्र रहने के बाद यह मगध के आक्रमणों को न सह कर लिच्छवियों के साथ उनके गणराज्य.में मिल गए। नौ लिच्छवियों तथा नौ मल्ल राजाओं ने मिल कर १८ राजाओं का एक गणराज्य बनाया। इस प्रकार वज्जी तथा मल्लों ने मिलकर एक संघ बना लिया। इन दोनों की संयुक्त राजधानी भी वैशाली ही रही। बाद में मगध के अजातशत्रु ने इस संयुक्त संघ पर आक्रमण किया। संघपति राजा चेटक की आधीनता में नौ लिच्छवी तथा नौ मल्ल राजाओं ने मिल कर अजातशत्रु का भारी मुकाबला किया, किंतु अजातशत्रु के सामने उनको पराजित होकर अपने अस्तित्व को समाप्त कर मगध राज्य में मिलना पड़ा। मल्ल संघ वज्जी संघ के ठीक पश्चिम में था।

७. **चेदि**—इस राज्य के दो उपनिवेश थे, जिनमें एक नेपाल तथा दूसरा कौशाम्बी के पूर्व पुराने स्थान पर आधुनिक बुन्देलखण्ड तथा निकट के देशों में था और कभी नर्मदा तक फैलता था। इसकी राजधानी शुक्तिमती थी।

८. **वत्स**—वत्स की राजधानी कौशाम्बी प्रयाग के निकट थी, जिसे महाभारत काल के बाद चेदिराज ने बसाया था। काशीराज वत्स वंशधर थे। उन्हीं के नाम पर इस देश का नाम वत्स पड़ा। इन दिनों वत्स पर राजा शतानीक का शासन था। उसका विवाह लिच्छवी राजकुमारी मृगावती से हुआ था। यह लिच्छवी गणतंत्र के प्रधान राजा चेटक की पुत्री तथा जैनियों

के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी की मौसेरी बहन थी। कुछ लेखकों ने उसे जो विदेहकुमारी लिखा है, सो उनके भ्रम का कारण यह था कि विदेह भी उन दिनों लिच्छवियों के संघ राज्य का एक गणराज्य था। लिच्छवी राजा चेटक की एक पुत्री धारिणी चम्पा के राजा दधिवाहन को भी ब्याही गई थी। किन्तु शतानीक ने इस सम्बन्ध पर कोई ध्यान न देकर चम्पा पर आक्रमण करके राजा दधिवाहन को मार डाला था। शतानीक का पुत्र प्रतापी राजा उदयन था। प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ यौगन्धरायण उसका महामात्य था। उसने दधिवाहन के पुत्र दृढ़वर्मन को फिर चम्पा के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया था, किंतु दृढ़वर्मन बाद में श्रेणिक बिम्बसार से अपनी स्वतंत्रता की रक्षा न कर सका।

९. **कुरु**—इस महाजनपद की राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी, जो वर्तमान दिल्ली के समीप यमुना के तट पर स्थित था। हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र तथा दिल्ली के प्रदेश इसी जनपद के अन्तर्गत थे। जातकों में लिखा है कि इस समय यहाँ युधिष्ठिर के वंशजों का शासन था, जिनके नाम धनञ्जय, श्रुतसोम तथा कौरव्य थे। राष्ट्रपाल भी कौरव राजा था। जैन उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार कुरुदेश के इषुकार नगर में इषुकार राजा रहता था। किन्तु कौटिल्य के समय तक कुरुदेश में संघराज्य बन चुका था। कुरु महाजनपद का विस्तार २००० मील था।

१०. **पाञ्चाल**—यह जनपद कोशल और वत्स के पश्चिम में तथा चेदि के उत्तर में था। महाभारत के समय इसके दो राज्य बन गए थे—एक उत्तर पाञ्चाल, दूसरा दक्षिण पाञ्चाल। वर्तमान समय का रुहेलखण्ड उत्तर पाञ्चाल था। उसकी राजधानी अहिच्छत्र थी। आजकल इसके स्थान पर बरेली जिले में रामनगर नामक गांव तहसील आंवला के निकट बसा हुआ है। कानपुर तथा फर्रुखाबाद के वर्तमान जिलों के स्थान पर दक्षिण पाञ्चाल था। उसकी राजधानी काम्पिल्य थी। जातक (५४६) उत्तराध्ययन सूत्र, स्वप्नवासदत्ता नाटक तथा रामायण में पाञ्चाल के राजा चूलनि ब्रह्मदत्त का वर्णन मिलता है। कौटिल्य ने यहां भी गणराज्य बतलाया है।

११. **मत्स्य**—यह महाजनपद यमुना के पश्चिम में तथा कुरु महाजनपद के दक्षिण में था। इसकी राजधानी विराट् नगर या वैराट थी, जो वर्तमान जयपुर

राज्य में थी। महाभारत में पाण्डवों ने अपना अज्ञातवास का तेरहवां वर्ष यहीं व्यतीत किया था। महाभारत युद्ध में राजा विराट् तथा उसके दोनों पुत्रों ने बड़ा पराक्रम दिखलाया था। विराट् की राजपुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुनपुत्र अभिमन्यु के साथ हुआ था। उसी का पुत्र परीक्षित् पाण्डवों का उत्तराधिकारी बनकर हस्तिनापुर की गद्दी पर बैठा था। सोलह महाजनपद काल में मत्स्य में भी संघ राज्य था।

१२. **शूरसेन**—इसकी राजधानी मथुरा थी। महाभारत के समय यह प्रसिद्ध अन्धक-वृष्णि संघ का केन्द्र था। बौद्ध साहित्य में शूरसेन के राजा अवन्तिपुत्र का उल्लेख मिलता है, जो महात्मा बुद्ध का समकालीन था। यह राजा प्रद्योत का पुत्र था। जैन ग्रन्थों में अवन्तिपुत्र का नाम सुबाहु दिया हुआ है। काव्यमीमांसा में शूरसेनों के राजा का नाम कुविन्द लिखा है। शूरसेनों का उल्लेख मेगस्थनीज ने भी किया है।

१३. **अश्मक**—यह राज्य बौद्ध ग्रन्थ सुत्तनिपात के अनुसार महाराष्ट्र में गोदावरी के निकट था। किन्तु पाणिनि उसे दक्षिण प्रान्त में बतलाता है। महाराष्ट्रीय लोगों को आज भी दक्षिणी कहा जाता है। सम्भवतः इसीलिये पाणिनि ने उनको दक्षिण प्रांत में बतलाया है। अश्मक की राजधानी पोतन या पातलि थी। महाभारत में भी अश्मकपुत्र का उल्लेख है। वहां अश्मक की राजधानी का नाम पौदन्य बतलाया गया है। मूलक जनपद इसके दक्षिण में था। महागोविन्द सुत्त के अनुसार अश्मकराज ब्रह्मदत्त, कलिङ्गराज सत्तभु, अवन्तिराज वैस्सभु, सौवीर राज भरत, विदेहराज रेणु तथा काशीराज धत्तरथ समकालीन थे। चुल्ल कलिंग जातक के अनुसार अश्मक-नरेश अरुण ने कलिंग पर विजय प्राप्त की थी। सम्भवतः महाराष्ट्र से मिला होने के कारण अश्मक तथा अवन्ति की सीमाएँ मिलती थीं, किन्तु अन्य ग्रन्थों में अश्मक और मूलक का नाम एक साथ आता है। यहाँ का राजा ब्रह्मदत्त दक्षिण कोशल का सूर्यवंशी राजा था।

१४. **अवन्ति**—आधुनिक मालवे का नाम प्राचीन काल में अवन्ति था। उसकी राजधानी उज्जैन थी। इन दिनों यहां का राजा प्रसिद्ध प्रद्योत था। उसका पिता अवन्तिराज का मंत्री था। जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है, उसने अपने स्वामी को मारकर अपने पुत्र को राजा बनाया था। प्रद्योत एक

प्रबल शासक था। उसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की थी। इसीलिये उसे चण्ड प्रद्योत भी कहते थे। वत्स को जीतने की उसे बड़ी अभिलाषा थी। इसलिये उसमें तथा उदयन में बहुत समय तक शीतयुद्ध चला। उदयन को उन दिनों वीणावादन में तीन लोक में अद्वितीय समझा जाता था। वीणा बजाकर ही वह हाथियों को भी पकड़ लिया करता था। एक बार प्रद्योत ने वत्स की सीमा पर एक नकली हाथी खड़ा करवा दिया और उसके पेट में अनेक योद्धाओं को छिपा दिया। उदयन जब उसको वश में करने गया तो योद्धा लोग उसे पकड़ कर उज्जैन ले गए। प्रद्योत ने उज्जैन लाकर उसे अपनी पुत्री को संगीत सिखाने का कार्य दिया। बीच में एक पर्दा डालकर संगीत की शिक्षा दी जाती थी। प्रद्योत ने अपनी पुत्री को बतला रखा था कि उसे एक अन्धा शिक्षा दे रहा है और उदयन को बतला रखा था कि उसे एक कुबड़ी वृद्धा को शिक्षा देनी है। एक दिन किसी बात पर राजकुमारी ने उदयन को अन्धा कहा। तब उदयन ने उसे कुबड़ी बुड्ढी कहा। अंत में उसने असली बात को जानकर राजकुमारी को अपना वास्तविक परिचय दिया। अब तो दोनों में घनिष्ठ प्रेम हो गया। उधर उदयन का कूटनीति-विशारद महामात्य यौगन्धरायण अपनी नीति का आश्रय लेकर समस्त उज्जैन में अपने चरों का जाल बिछा चुका था। उनकी सहायता से उसने उदयन को प्रद्योत की पुत्री सहित उज्जयिनी से चुपचाप निकाल लिया। अपनी पुत्री से उदयन का विवाह हो जाने पर चण्ड प्रद्योत ने भी उन दोनों को आशीर्वाद दिया। इसके पश्चात् अवन्ति तथा वत्स में स्थायी संधि हो गई।

१५. गान्धार—आजकल के अफगानिस्तान तथा पख्तूनिस्तान का नाम उन दिनों गांधार देश था। आजकल के कन्दहार नगर का नाम उन दिनों गांधार था और उसी के नाम पर इस देश का नाम गान्धार देश पड़ा था। महाभारत के समय दुर्योधन का मामा शकुनि यहां का राजा था। इसीलिये उसकी बहिन को गान्धारी कहा जाता था। सोलह महाजनपद काल में गान्धार देश की राजधानी तक्षशिला थी। इन दिनों गान्धार के राजा का नाम पुक्करणाति अथवा पुक्कसाति था। उसने राजा बिम्बसार को पठौनी भेजी थी और युद्ध में प्रद्योत को हराया था। आजकल के रावलपिण्डी, पेशावर, काश्मीर तथा हिन्दूकुश पर्वतमाला सब गान्धार में ही थे।

तक्षशिला में इन दिनों ऐसा बड़ा भारी विश्वविद्यालय था कि संसार भर में उसकी जोड़ का दूसरा विश्वविद्यालय नहीं था। उसमें सभी विषयों के साथ-साथ रसायन तथा युद्ध विद्या की भी शिक्षा दी जाती थी। आर्य बहुलाश्व उसके प्रधान आचार्य थे। तक्षशिला के बाद दूसरा विश्वविद्यालय उन दिनों राजगृह में था।

१६. **काम्बोज**—यह जनपद उत्तरापथ में गान्धार के निकट था। इसकी राजधानी का नाम राजपुर अथवा राजघट था। नन्दिनगर नाम की एक अन्य बस्ती भी काम्बोज में थी। महाभारत में चन्द्रवर्मन तथा सुदक्षिण काम्बोज थे। इसकी राजधानी द्वारिका थी। यहां संघ राज्य था। गान्धार के परे उत्तर में पामीर का प्रदेश तथा उससे भी परे बदख्शां का प्रदेश काम्बोज महाजनपद में ही था।

इस प्रकार इन सोलह महाजनपदों में से निम्नलिखित छै में संघ राज्य थे।

वज्जी, मल्ल, मत्स्य, कुरु, पाञ्चाल तथा काम्बोज। शेष दस में राजा राज्य करते थे। राजा लोग सदा ही संघ राज्यों को हड़पने की योजना बनाया करते थे।

तत्कालीन अन्य जनपद—कोशल-नरेश प्रसेनजित् के आधीन निम्न-लिखित पांच राज्य थे—काशी, यायावि, सेतव्यानरेश, हिरण्यनाभ कौशल और कपिलवस्तु के शाक्य। इस प्रकार बुद्ध के समय सोलह महाजनपदों में से कई लुप्त हो चुके थे।

यह सोलह महाजनपद उत्तरी भारत में ही थे। दक्षिण के राज्य इनसे पृथक् थे। दक्षिण के पैठण, पतित्थान अथवा दक्षिणापथ का उल्लेख भी इस काल के ग्रन्थों में आता है। यह आंध्रों की राजधानी थी। कलिङ्ग का नाम भी इन सोलह जनपदों में नहीं है। उसकी राजधानी दन्तिपुर थी। चोल और पाण्ड्य राज्य तो वाल्मीकीय रामायण से भी पुराने राज्य थे। सौवीर (सिन्ध) देश की राजधानी रोरुक थी। यह व्यापार का प्रधान केन्द्र था। वहाँ यहूदी राजा सोलोमन के जहाज भी व्यापारार्थ आया करते थे। यहां के राजा का नाम रुद्रायण था। मद्रदेश की राजधानी सागल भारत के उत्तर-पश्चिम में थी। महाभारत के समय में इसे साकल कहा जाता था। बाद में राजा

मिलिन्द ने यहीं राज्य किया। इस प्रकार इन सोलह महाजनपदों के अतिरिक्त उन दिनों भारत में अन्य भी अनेक जनपद थे, जिनमें अनेक स्वतन्त्र थे। कोशल के उत्तर तथा मल्लजनपद के पश्चिमोत्तर में आधुनिक नेपाल की तराई में अचिरावती (राप्ती) तथा रोहिणी नदी के बीच शाक्यों का गणराष्ट्र था, जिसकी राजधानी कपिलवस्तु थी। महात्मा बुद्ध का जन्म यहीं हुआ था। शाक्य गण के पास ही कोलिय गण था, जिसकी राजधानी रामग्राम थी। वहीं मोरियगण भी था, जिसकी राजधानी पिप्पलिवन थी। बुलि गण, भग्ग गण तथा कालाप गण भी यहीं थे, जिनकी राजधानियों के नाम क्रम से अल्लकप्प, सुंसुमार तथा केसपुत्त थे।

गांधार, कुरु तथा मत्स्य के बीच में केकय, मद्रक, त्रिगर्त और यौधेय जनपद थे तथा अधिक दक्षिण में सिन्धु, शिवि, अम्बष्ठ तथा सौवीर आदि थे। सिंहल को नागद्वीप, ताम्रपर्णी या हंस द्वीप भी कहते थे। सौवीर के सम्बन्ध में तीन मत मिलते हैं। एक मत के अनुसार वह दक्षिण में था, दूसरे के अनुसार वह सिंध था तथा तीसरे मत के अनुसार वह सूरत था।

किन्तु यह सभी जनपद उस समय अपने पड़ौसी शक्तिशाली महाजनपदों की किसी न किसी रूप में आधीनता स्वीकार करते ही थे। वास्तविक बात तो यह है कि इन सोलह महाजनपदों में से भी मगध, वत्स, कोशल और अवन्ति यह चार ही सबसे अधिक शक्तिशाली थे। यह एक ओर अपने पड़ौसी जनपदों को जीतकर अपने आधीन करते जाते थे तो दूसरी ओर यह आपस में भी एक दूसरे को हड़प जाने का यत्न किया करते थे।

श्रेणिक बिम्बसार का शासन—यह ऊपर बतला दिया गया है कि श्रेणिबल के धारक सेनापति भट्टिय ने राजा बालक को मार कर मगध के राजसिंहासन को हस्तगत किया था। सम्भवतः इस राजा बालक का दूसरा नाम कुमारसेन भी था। महाकवि बाणभट्ट ने भी इस घटना का उल्लेख अपने ग्रन्थ हर्षचरित्र में किया है। उन दिनों महाकाली के मेले में महामांस की बिक्री के कारण एक झगड़ा उठ खड़ा हुआ था। उस गड़बड़ से लाभ उठाकर श्रेणिक भट्टिय की प्रेरणा से तालजङ्घ नामक एक वेताल सैनिक ने राजा कुमारसेन पर अचानक आक्रमण करके उसे जान से

मार दिया था। भट्टिय उपश्रेणिक के बाद उसका पुत्र चिलाती गद्दी पर बैठा। किन्तु सेनाओं ने उसके शासन को सहन न कर उसके ज्येष्ठ भ्राता श्रेणिक बिम्बसार को निर्वासित जीवन से वापिस बुलाकर मगध के राजसिंहासन पर बिठलाया।

वास्तव में इस समय मगध में आर्यभिन्न सैनिक श्रेणियों की प्रबलता थी। उनके नेता मगध के सिंहासन को गेंद के समान उछालते रहते थे। किन्तु बिम्बसार उनके वास्तविक नेताओं में से था। वह बहुत शक्तिशाली तथा महत्त्वाकांक्षी राजा था। किन्तु उन दिनों अन्य भी कई शक्तिशाली और महत्त्वाकांक्षी राजा थे।

कोशल-नरेश प्रसेनजित् का पिता महाकोशल बहुत महत्त्वाकांक्षी था। उसने ईसा पूर्व ६७५ में काशी पर आक्रमण किया किन्तु इस आक्रमण में उसको पराजित होना पड़ा। बाद में महाकोशल ने इसके पचास वर्ष बाद ईसा पूर्व ६२५ में काशी को पराजित करके अपने राज में मिला लिया। प्रसेनजित् ने अपने पिता के दिग्विजय कार्य को बराबर जारी रखा। वह एक कूटनीतिकुशल शासक था। उसने सोचा कि शक्तिशाली मगध राज्य के विरोध में रहकर दिग्विजय कार्य को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। अतः उसने मगध के राजा बिम्बसार के साथ अपनी बहिन कोशलदेवी उपनाम क्षेमा का विवाह कर दिया। इस विवाह के दहेज में प्रसेनजित् ने अपनी बहिन के 'नहान चुन्न मूल्य' के रूप में काशी जनपद का एक ऐसा प्रदेश बिम्बसार को दिया, जिसकी आय एक लाख वार्षिक थी। कोशल के साथ वैवाहिक सम्बन्ध हो जाने से मगध और कोशल दोनों की मित्रता हो गई और उन दोनों को एक दूसरे के अपने ऊपर आक्रमण का भय न रहा और प्रसेनजित् का पूर्व की ओर साम्राज्यविस्तार का मार्ग एकदम साफ हो गया।

राजा बिम्बसार ईसा पूर्व ५८४ में पन्द्रह वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा था। उसने ईसा पूर्व ५३२ तक ५२ वर्ष राज्य किया। गद्दी पर बैठने से पूर्व ही उसका विवाह वेणपद्म नगर के सेठ इन्द्रदत्त की पुत्री नन्दश्री के साथ हो चुका था, जिससे उसको अभयकुमार जैसा प्रतिभाशाली पुत्र उत्पन्न हुआ था। राजगद्दी पर बैठने के बाद उसने कोशल राजकुमारी के साथ विवाह करके अपनी उच्चकोटि की राजनीतिज्ञता का परिचय दिया।

बिम्बसार द्वारा अंग पर अधिकार—अंग तथा मगध का झगड़ा बहुत पुराना था। अंगराज ने पहिले बिम्बसार के पिता राजा भट्टिय उपश्रेणिक को हरा दिया था। किन्तु जैन ग्रन्थों में लिखा है कि अंगराज दधिवाहन को शीघ्र ही वत्स देश के राजा शतानीक के हाथ पराजित हो कर अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। यद्यपि शतानीक के पुत्र उदयन ने दधिवाहन के पुत्र दृढ़वर्मा को अंग का राज्य वापिस दे दिया, किन्तु बाद में राजा बिम्बसार ने दृढ़वर्मा को युद्ध में मार कर अंग को मगध साम्राज्य में मिला लिया। कुछ ग्रन्थों में बिम्बसार द्वारा पराजित होने वाले अंगराज का नाम ब्रह्मदत्त लिखा है। संभव है ब्रह्मदत्त उसकी उपाधि हो, क्योंकि इस नाम के अनेक अंगराज हमको इतिहास में मिलते हैं।

अंग को जीतने से मगध की शक्ति बहुत बढ़ गई। काशी का कुछ प्रदेश उसको पहिले ही प्राप्त हो गया था, अब अंग पर अधिकार हो जाने से मगध की शक्ति इतनी अधिक बढ़ गई कि वह साम्राज्यविस्तार के संघर्ष के उस मार्ग पर अग्रसर होने लगा, जिसका उग्ररूप उसके पुत्र अजातशत्रु के शासन में देखने को मिला।

राजगृह का निर्माण—आदि में मगध की राजधानी गिरिव्रज थी। किन्तु इस नगर की किलेबंदी उत्तम न होने के कारण यह लिच्छवियों के आक्रमणों से सुरक्षित नहीं था। एक बार तो इन आक्रमणों के कारण गिरिव्रज में भारी आग लग गई। अतएव सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार ने गिरिव्रज को छोड़कर उदयगिरि, सोनागिरि, खण्डगिरि, रत्नागिरि तथा विपुलाचल इन पांच पहाड़ियों के बीच में एक नए नगर की स्थापना करके उसका नाम राजगृह रखा। महागोविंद नामक प्रसिद्ध वास्तुकलाविद् ने राजगृह के राजप्रासादों का निर्माण किया। राजगृह को एक ऐसे दुर्ग के रूप में बनवाया गया कि वह लिच्छवियों के आक्रमणों का सफलतापूर्वक मुकाबला कर सके। उपरोक्त पांचों पर्वतों ने राजगृह की स्वाभाविक प्राचीर का काम अच्छी तरह किया। जिस एक स्थान पर पर्वतों की घाटी थी उसको सुदृढ़ दीवार बना कर पूर्ण किया गया। इस नए नगर के कारण वज्जियों के आक्रमण बन्द हो गए। राजा चेटक की पुत्री रानी चेलना के साथ विवाह होने से तो

शाली तथा मगध में एक स्थायी संधि भी हो गई।

उन दिनों मगध उन्नति के चरम शिखर पर था। बौद्ध ग्रन्थ महावग्ग के अनुसार मगध राज्य में ८०,००० ग्राम थे, जिनके ग्रामिक बिम्बसार की राजसभा में एकत्रित हुआ करते थे। एक अन्य बौद्ध ग्रन्थ में उसके राज्य का विस्तार ३०० योजन लिखा गया है।

बिम्बसार के रनवास में अनेक रानियां थीं। जैन ग्रन्थों में नन्दश्री, कोशल-राजकुमारी, केरल राजकुमारी तथा लिच्छवी राजकुमारी यह चार रानियां ही उसकी बतलाई गई हैं, किन्तु बौद्धग्रन्थ महावग्ग के अनुसार उसकी रानियों की संख्या ५०० थी। संभव है कि इस विषय में बौद्ध लेखक ने कुछ अतिशयोक्ति से काम लिया हो। जैन ग्रन्थों में राजा श्रेणिक के आठ पुत्रों के नाम मिलते हैं। उनमें नन्दश्री का पुत्र अभयकुमार सबसे प्रसिद्ध था। रानी चेलना के सात पुत्र बतलाए गए हैं, जिनमें कुणिक सबसे बड़ा था। अजातशत्रु के नाम से बाद में वही मगध-सम्राट् बना था। बौद्ध ग्रन्थों में दर्शक, शीलवन्त तथा विमल आदि के नाम भी राजा बिम्बसार के पुत्रों के रूप में मिलते हैं।

बिम्बसार की बुद्ध तथा महावीर से समसामयिकता—बिम्बसार १५ वर्ष की आयु में ईसापूर्व ५८४ में मगध की गद्दी पर बैठा था। उसने पूरे ५२ वर्ष तक राज्य किया। अतएव उसका पुत्र अजातशत्रु ईसापूर्व ५३२ में गद्दी पर बैठा। बिम्बसार ने महात्मा गौतम बुद्ध तथा भगवान् महावीर दोनों के ही दर्शन करके उन दोनों के मुख से उपदेश सुना था। भगवान् महावीर स्वामी का निर्वाण अजातशत्रु के राज्य के छटे वर्ष ईसापूर्व ५२६ में तथा बुद्ध का निर्वाण उनसे दो वर्ष बाद ईसापूर्व ५२४ में हुआ था। भगवान् महावीर स्वामी का निर्वाण ७२ वर्ष की आयु में हुआ था। उन्होंने २८ वर्ष की आयु में दीक्षा ली, उसके बाद १४ वर्ष तक तप किया तथा ४२ वर्ष की आयु में केवल-ज्ञान होने पर तीस वर्ष तक उपदेश दिया। इस प्रकार भगवान् महावीर स्वामी का जन्म ईसापूर्व ५९८ में हुआ। उन्होंने २८ वर्ष की आयु में ईसा पूर्व ५७० में दीक्षा ली। उसके बाद १४ वर्ष तक तप करके ईसा पूर्व ५५६ में उनको केवल ज्ञान हुआ और उसके तीस वर्ष बाद ईसापूर्व ५२६ में वह मोक्ष गए।

गौतम बुद्ध का निर्वाण अजातशत्रु के राज्य के आठवें वर्ष ईसा पूर्व ५२४ में हुआ। उनकी आयु ८१ वर्ष थी। अतएव उनका जन्म ६०५ ईसा पूर्व में हुआ था। उन्होंने २५ वर्ष की आयु में विवाह किया, तथा २८ वर्ष की आयु में गृह त्याग किया। ३५ वर्ष की आयु में बोध होने पर उन्होंने ४५ वर्ष तक उपदेश दिया। इस प्रकार उन्होंने ईसापूर्व ५८० में विवाह किया, ईसा पूर्व ५७७ में घर छोड़ा, और ईसा पूर्व ५७० में उनको बोध हुआ।

इस प्रकार भगवान् महावीर तथा गौतम बुद्ध के सम्बन्ध में हमको निम्न-लिखित तुलनात्मक अंक मिलते हैं—

	गौतम बुद्ध	भगवान् महावीर
जन्म	ई० पू० ६०५	ई० पू० ५९८
दीक्षा	,, ५७७	,, ५७०
बोध	,, ५७०	,, ५५६
निर्वाण	,, ५२४	,, ५२६

इस प्रकार महात्मा गौतम बुद्ध का जन्म भगवान् महावीर के जन्म से सात वर्ष पूर्व हुआ। उन्होंने दीक्षा भी भगवान् महावीर से सात वर्ष पूर्व ली। (दोनों ने २८ वर्ष की आयु में दीक्षा ली थी।) गौतम बुद्ध को ज्ञान भी भगवान् महावीर स्वामी से चार वर्ष पूर्व हुआ था। किन्तु बुद्ध का निर्वाण महावीर स्वामी के दो वर्ष बाद हुआ था। इस प्रकार महात्मा गौतम बुद्ध ने भगवान् महावीर से पहले उपदेश देना आरंभ किया और उनके दो वर्ष बाद तक दिया।

जिस वर्ष श्रेणिक बिम्बसार ईसा पूर्व ५८४ में मगध की गद्दी पर बैठा उसके चौदह वर्ष बाद महात्मा गौतम बुद्ध को बोध हुआ और उन्होंने उपदेश देना आरम्भ कर दिया। उस समय महात्मा गौतम बुद्ध की आयु ३५ वर्ष की तथा श्रेणिक बिम्बसार की २९ वर्ष की ही थी। उससे कुछ ही वर्ष पूर्व बिम्बसार ने गौतम बुद्ध को अपने राजमहल में भोजन कराकर उनको तप के मार्ग से हटने का परामर्श भी दिया था। श्रेणिक बिम्बसार कठिनता से चार वर्ष तक बौद्ध रहने के बाद जैन हो गए। महात्मा बुद्ध तथा भगवान् महावीर दोनों ने उनके राज्यकाल-भर उपदेश देकर अजातशत्रु के राज्यकाल में

निर्वाण प्राप्त किया। इस प्रकार श्रेणिक बिम्बसार महात्मा बुद्ध तथा भगवान् महावीर के पूर्णतया समकालीन थे।

बिम्बसार की अपने राज्य के प्रथम अठारह वर्षों में ही वैशाली के साथ संधि हो गई थी और संभवतः इसी बीच में वह अंग देश को भी अपने राज्य में मिला चुका था। यह भी संभव है कि उसने अंग देश को इसके कुछ समय बाद जीता हो। क्योंकि पिता दधिवाहन के मरने के बाद चन्दनबाला वापिस चम्पा नहीं गई और उसने भगवान् महावीर स्वामी के केवल-ज्ञान होने का समाचार कौशाम्बी में सुन कर वहां से राजगृह आकर उनसे दीक्षा ली थी। गिरिव्रज के स्थान पर राजगृह का निर्माण भी बिम्बसार ने अपने शासन के प्रथम अठारह वर्ष में ही किया था। इस प्रकार हम देखते हैं कि बिम्बसार ने अपने शासन के प्रथम अठारह वर्ष में अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किये। इससे पता चलता है कि उसको कितनी कम आयु में कार्यदक्षता प्राप्त हो गई थी।

सेनापति जम्बूकुमार—यद्यपि बिम्बसार के सेनापति जम्बूकुमार का वर्णन अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलता, किन्तु जैन आचार्यों ने उनके संबन्ध में अनेक ग्रन्थों की रचना की है। वह राजगृह के सेठ अर्हद्दास तथा उनकी सेठानी जिनमती के पुत्र थे। उन्होंने युवावस्था के आरम्भ में ही सम्पूर्ण अस्त्र-शस्त्रों की शिक्षा प्राप्त कर ली थी। इससे राजदरबार में भी इनकी मान्यता हो गई। कुछ समय पश्चात् राजा श्रेणिक बिम्बसार ने उनको अपना प्रधान सेनापति बनाया।

बिम्बसार का केरल-राजकुमारी से विवाह—इन दिनों दक्षिण के केरल देश में मृगांक नामक एक विद्याधर राजा राज्य करता था। उसकी स्त्री का नाम मालतीलता था। उसके विशालवती नामक एक पुत्री थी, जिसकी मंगनी उसने राजा बिम्बसार के साथ कर दी थी। इस कन्या के नाम विलासवती, मंजु तथा वासवी भी मिलते हैं। किन्तु हंस (सिंहल) द्वीप के विद्याधर राजा रत्नचूल ने विशालवती को राजा मृगांक से अपने लिये मांगा। मृगांक के इनकार करने पर रत्नचूल ने केरल पर आक्रमण कर दिया। मृगांक द्वारा इस समाचार को पाकर राजा बिम्बसार श्रेणिक जम्बूकुमार के सेनापतित्व में एक सेना उसकी सहायता को भेज कर पीछे से आप भी एक भारी सेना

लेकर केरल गए। उन्होंने विन्ध्याचल और रेवा नदी को पार कर कुरल नामक पर्वत पर विश्राम किया। जम्बूकुमार ने केरल के युद्ध में अत्यंत पराक्रम दिखला कर राजा रत्नचूल की आठ सहस्र सेना को जान से मार दिया। अंत में रत्नचूल तथा मृगांक की मित्रता कराकर तथा विलासवती से विवाह करके राजा श्रेणिक बिम्बसार जम्बूकुमार सहित वापिस राजगृह आए।

जम्बूकुमार द्वारा जिन-दीक्षा—जम्बूकुमार भगवान् महावीर स्वामी के पांचवें गणधर सुधर्माचार्य से दीक्षा लेना चाहते थे, किन्तु उनके पिता उनका विवाह करके उनको गृहस्थ के बंधन में बांधना चाहते थे। उधर राजगृह के चार सेठ भी जम्बूकुमार के साथ अपनी पुत्रियों का विवाह करना चाहते थे। उनकी पुत्रियों ने जब सुना कि जम्बूकुमार विवाह न करके दीक्षा लेना चाहते हैं तो उन्होंने अपने-अपने पिताओं द्वारा जम्बूकुमार से कहलाया कि वह सायंकाल के समय उन चारों के साथ विवाह कर लें और उनको रात्रि भर बातचीत करने का अवसर दें। इसके बाद यदि वह चाहें तो प्रातःकाल होने पर दीक्षा ले लें। जम्बूकुमार ने इस बात को स्वीकार करके सायंकाल के समय उन चारों के साथ विवाह कर लिया। उन चारों ने जम्बूकुमार को रात भर समझाया। वह जम्बूकुमार को भोग भोगने के लिये प्रेरित करती थीं और जम्बूकुमार उनको संसार की असारता दिखलाते थे।

विद्युच्चर—उन दिनों दक्षिण के पोदनपुर नगर में विद्युद्राज नामक एक राजा था। उसके पुत्र विद्युत्प्रभ अथवा विद्युच्चर ने चौर्य-शास्त्र का अध्ययन किया। पिता के बहुत समझाने पर भी उसने राज्य-कार्य न कर चोरी का पेशा ही अपनाया। जिस समय जम्बूकुमार तथा उनकी चारों स्त्रियों का वार्तालाप हो रहा था तो वह उनके यहां चोरी करने आया। किन्तु उनकी बातों में उसे ऐसा रस आया कि वह चोरी करना भूल कर उनकी बातें ही सुनने लगा।

प्रातःकाल होने पर जम्बूकुमार तथा उनकी चारों पत्नियों के साथ विद्युच्चर ने भी सुधर्म स्वामी के पास दीक्षा ले ली।

बिम्बसार के समय विमानों का अस्तित्व—जम्बू स्वामी चरित्र तथा अन्य ग्रन्थों का अध्ययन करने पर हमको इस बात का पता लगता है कि उन

दिनों आजकल के दक्षिण देशों तथा सीलोन में विद्याधर राजाओं का राज्य था, जिनके पास आकाशगामी विमान थे।

वाल्मीकीय रामायण जैसे ग्रन्थों में जहां किष्किन्धा के राजा बाली तथा सुग्रीव को पशु योनि का बन्दर माना है, वहां जैन ग्रन्थों में उस समय भी वहां विद्याधर जातियों का निवास मानकर उनको विद्याधर ही माना है। इसीलिये जहां वाल्मीकीय रामायण में हनूमान् जी समुद्र को कूद कर लंका जाते हैं वहां जैन रामायण के अनुसार वह विमान पर बैठ कर लंका जाते हैं।

फिर भी वाल्मीकीय रामायण में ऐसे स्थलों की कमी नहीं है, जिनसे हनूमान् जी के पास आकाशगमन विद्या का होना प्रमाणित होता है। उनका जन्म लेते ही सूर्य की ओर को उड़ना, उनका अयोध्या के ऊपर आकाश मार्ग से द्रोणागिरि पर्वत के शिखर को लाना—ऐसी घटनाएँ हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि हनुमान् जी मन की गति से आकाश में भ्रमण करते थे। किन्तु वाल्मीकीय रामायण में जहां लंका जाते समय उनके समुद्र को कूदने का वर्णन करके उसकी आकाशगामिनी विद्या के महत्त्व को घटा दिया है वहां द्रोणागिरि पर्वत से संजीवनी बूटी लाते समय वह इसकी कोई व्याख्या नहीं दे सके हैं। इस स्थल पर यह बात स्पष्ट हो गई है कि हनूमान् जी के पास आकाशगामिनी विद्या थी।

इसी प्रकार सुग्रीव के पास भी आकाशगामिनी विद्या होने के प्रमाण मिलते हैं। कुम्भकर्ण जब सुग्रीव को अपनी बगल में दाब कर ले चला तो सुग्रीव उसकी बगल में नोच-खसोट कर उससे निकल आए और उसके नाक-कान काट कर आकाश-मार्ग से उड़ कर उसकी पहुँच से निकल भा`।

इस प्रकार जैन ग्रन्थों ने जो दक्षिण में रामायण से भी प्राचीन समय से सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के समय तक विद्याधर जातियों का अस्तित्व माना है वाल्मीकीय रामायण से उनको किसी अंश तक ऐसा समर्थन मिलता है कि उसकी दूसरी व्याख्या की ही नहीं जा सकती।

इसीलिये सिंहल के राजा रत्नचूल द्वारा केरल-नरेश राजा मृगांक के ऊपर चढ़ाई करने पर रत्नचूल ने विमान पर व्योमगति विद्याधर को राजगृह भेज कर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार को इस चढ़ाई का समाचार उसी दिन भिजवा दिया और बमान की सहायतासे जम्बू स्वामी उसी दिन राजा मृगांक की

सहायता को जा पहुँचे।

इस घटना के बाद प्रियदर्शी अशोक के समय भी हमको बौद्ध ग्रन्थों से यह पता लगता है कि अशोक के पुत्र महेन्द्र तथा पुत्री सिंहमित्रा बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये विमान द्वारा ही सिंहल द्वीप गए थे। इस प्रकार उस प्राचीन काल में अब से अढ़ाई सहस्र वर्ष पूर्व तक हमारे देश में विमानों तथा आकाशगामिनी विद्या का अस्तित्व था। किन्तु विमानविद्या का अस्तित्व न दिनों उत्तरी भारत में न होकर केवल दक्षिणी भारत तथा सिंहल द्वीप में ही था।

संभव है कि उन दिनों आजकल की अपेक्षा अन्य भी ऐसी अनेक विद्याओं का अस्तित्व हो जिनका आज लोप हो चुका है।

वीणा-वादन-कला—ऐसी विद्याओं म वीणावादन की एक अभूतपूर्व कला तथा सिद्धांजन की कला का उल्लेख हमको तत्कालीन साहित्य में मिलता है। वीणावादन की जैसी उच्चतम-कुशलता हमको उस काल के राजा उदयन में देखने को मिलती है, वैसी कुशलता का सम्पादन इस विद्या में आज तक भी नहीं किया जा सका है।

सिद्धांजन कला—उन दिनों एक ऐसा सिद्धांजन तैयार किया जाता था, जिसको आंखों में लगाने वाला आप स्वयं तो अदृश्य हो कर सब कहीं जा सकता था, किन्तु उस को कोई नहीं देख सकता था। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के राज्यकाल में विद्युच्चर नामक चोर राजकुमार इस विद्या में पारंगत था।

जैन ग्रन्थ परिशिष्ट पर्व से हमको इस विद्या के अस्तित्व का पता चन्द्रगुप्त मौर्य के काल में भी मिलता है। उसमें चन्द्रगुप्त के सम्बन्ध में एक कहानी आती है कि कोई व्यक्ति बे रोजगार तो था, किन्तु उसके पास सिद्धलोपांजन था। अतएव वह अपना अंजन लगाकर नित्य चन्द्रगुप्त के अन्तःपुर में जाकर उसकी थाली में भोजन करने लगा। इस घटना से चन्द्रगुप्त भूखा रहने लगा और कुछ दुर्बल भी हो गया। उसकी इस दशा को देखकर चाणक्य को बड़ी चिन्ता हुई। उसने राजा के दुर्बल होने के कारणों का पता लगाया, किन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी उसको असली कारण का पता न चला। अंत में उसको संदेह हो ही गया कि कोई व्यक्ति सिद्धलोपांजन का प्रयोग करके राजमहल में आता है। अतः उसने चन्द्रगुप्त मौर्य के भोजन कर चुकने पर

राजमहल की ड्योढ़ी में अत्यधिक धुआँ करवा दिया।

जब वह व्यक्ति चन्द्रगुप्त के थाल में भोजन करके ड्योढ़ी पर आया तो धुएं के कारण उसके नेत्रों से इतना अधिक जल निकला कि उसके नेत्रों का अंजन धुल गया और वह सबको दिखाई देने लगा। अब तो द्वारपालों ने उसको गिरफ्तार करके राजदण्ड दिलवा दिया।

इस प्रकार की ऐसी अनेक विद्याओं का पता हमको उस सोलह महाजनपद-काल में मिलता है, जिनका आज नाम के अतिरिक्त कहीं अस्तित्व नहीं मिलता और हम उन विद्याओं के सम्बंध में यह मान बैठे हैं कि वह उन दिनों के ग्रन्थों की केवल कपोलकल्पना है।

वैद्य जीवक—प्रसिद्ध चिकित्सक जीवक भी राजा बिम्बसार का समकालीन था। उसने शालवती नामक एक वेश्या के उदर से जन्म लिया था। माता के द्वारा जन्म लेते ही त्याग दिये जाने के कारण उसे मगध के युवराज अभयकुमार ने अपना लिया और पाल-पोसकर बड़ा किया। अभयकुमार ने जीवक को उत्तम शिक्षा देकर उच्चतम शिक्षा प्राप्त करने के लिये तक्षशिला भेजा। तक्षशिला में जीवक ने आयुर्वेद का खूब अध्ययन किया और उसकी कौमारभृत्य शाखा में विशेष निपुणता प्राप्त की। जीवक अपना विद्याध्ययन समाप्त करके वापिस मगध लौटा। आगे चल कर उसने वैद्यक मे अत्यधिक ख्याति प्राप्त की। बौद्ध साहित्य में जीवक के चिकित्सासम्बन्धी चमत्कारों का वर्णन अनेक स्थानों पर किया गया है।

कोशल, मगध, वत्स तथा अवन्ति की होड़—यह पीछे बतला दिया गया है कि सर्वप्रथम ईसा पूर्व सातवीं शताब्दी के आरम्भ में काशी महाजनपद ने अपना एक बड़ा साम्राज्य बना लिया। काशी के बाद कोशल ने उन्नति करनी आरंभ की। दोनों में अनेक बार युद्ध हुआ। अन्त में कोशल के एक राजा महाकोशल ने ईसा पूर्व ६२५ के लगभग काशी को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। उसका पुत्र प्रसेनजित् बिम्बसार तथा बुद्ध का समकालीन था। उसने तक्षशिला में विद्याध्ययन किया था।

कोशल, मगध, अवन्ति तथा वत्स की होड़ में सर्वप्रथम अवन्ति ने अपना हाथ बढ़ाना आरम्भ किया। अवन्ति के राजसिंहासन पर इस समय प्रद्योत था,

जिसे बाद में चण्ड प्रद्योत कहा गया। उसने उत्तर की ओर बढ़कर मथुरा को जीतकर वहां का शासन अपने एक पुत्र को सौप दिया।' जिसको तत्कालीन ग्रन्थों में अवन्ति पुत्र तथा जैन ग्रन्थों में सुबाहु कहा गया है। इसके पश्चात् उसने हस्तिकान्त शिल्प के प्रतिभाशाली विद्वान् वत्सराज उदयन को धोखे से कैद किया। प्रद्योत ने उदयन से अपनी पुत्री को पढ़वाना आरम्भ किया। पढ़ाई बीच में पर्दा डाल कर की जाती थी। प्रद्योत ने उदयन से कहा कि तुमको एक बुड्ढी कुबड़ी को शिक्षा देनी है। उधर उसने वासवदत्ता से कहा कि तुझे एक कोढ़ी पढ़ावेगा। किन्तु यह भेद प्रकट होने पर दोनों में प्रेम हो गया और उदयन प्रद्योत की पुत्री सहित उज्जैन से भागकर अपनी राजधानी कोशाम्बी आ गया। उदयन के प्रद्योत-पुत्री से विवाह हो जाने पर प्रद्योत तथा उदयन का भी प्रेम बढ़ गया। इससे प्रद्योत की शक्ति और बढ़ गई, क्योंकि आधीन उदयन की अपेक्षा जामाता उदयन उसके लिये अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ।

बिम्बसार के विरुद्ध अजातशत्रु का विद्रोह—अभयकुमार के भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा ले लेने पर बिम्बसार ने अपने एक और पुत्र दर्शक को युवराज बनाकर उससे काम लेना आरम्भ किया। संभवतः दर्शक कोशलदेवी क्षेमा का पुत्र था। कुछ वर्ष बाद रानी चेलना का ज्येष्ठ पुत्र अजातशत्रु (कुणिक) काम करने योग्य हो गया। अपने शासन के अंतिम वर्षों में बिम्बसार ने उसे चम्पा (अङ्ग जनपद) का शासक नियत कर दिया। किन्तु अजातशत्रु को अंग के राज्य से संतोष न हुआ। वह संपूर्ण मगध राज्य का स्वामी होना चाहता था। उसने चम्पा का राज्य पाने के पूर्व ही अपने पिता के विरुद्ध षड्यन्त्र करना आरम्भ कर दिया था।

इन दिनों बौद्ध संघ में भी गौतम बुद्ध का चचेरा भाई देवदत्त बुद्ध के विरुद्ध षड्यंत्र कर रहा था। उसने अजातशत्रु के साथ मिल कर अपनी शक्ति को बढ़ाने का यत्न किया।

अंत में अजातशत्रु ने अपने पिता राजा बिम्बसार को कैद कर लिया। इस जेल जीवन में परमप्रतापी, अंगविजेता, सैनिक श्रेणी के नेता सम्राट् बिम्बसार का स्वर्गवास हुआ। इस घटना से खिन्न होकर अजातशत्रु की माता महारानी

चेलना ने भगवान् महावीर स्वामी के समवशरण में आकर जिन दीक्षा ले ली। अजातशत्रु के शीलवन्त, विमल आदि सौतेले छोटे भाइयों ने अजातशत्रु के भय के कारण गौतम बुद्ध के पास जाकर बौद्ध दीक्षा ले ली। किन्तु अजातशत्रु ने अपने सगे चारों छोटे भाइयों को समझा-बुझा कर दीक्षा नहीं लेने दी। बिम्बसार की कोशलरानी क्षेमा इस घटना से बहुत पूर्व बौद्ध भिक्षुणी बन चुकी थी।

बिम्बसार के विषय में कुछ ग्रन्थों में लिखा है कि उसने ६७ वर्ष की आयु तक ५२ वर्ष राज्य किया। किन्तु कुछ विद्वानों की सम्मति में उन्होंने कुल २८ वर्ष राज्य किया। वह ईसा पूर्व ५८४ में गद्दी पर बैठा। उसके बाद ईसा पूर्व ५३२ में अजातशत्रु मगध की गद्दी पर बैठा। बिम्बसार अपने पुत्र के पास कितने समय तक बन्दी रहा, इसके कोई अंक प्राप्य नहीं हैं।

अजातशत्रु का शासन—इसमें सन्देह नहीं कि राज्यप्राप्ति के पश्चात् अजातशत्रु को अपने कार्य पर अत्यधिक पश्चात्ताप हुआ। बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों में स्थान-स्थान पर उसके पश्चात्ताप का उल्लेख किया गया है। जैन लेखक हेमचन्द्राचार्य का तो यहां तक कहना है कि इस घटना के बाद वह राजगृह में नहीं रह सका और उसने अपनी राजधानी राजगृह से उठा कर चम्पापुरी को बनाया।

अजातशत्रु ने कुल चौंतीस वर्ष तक राज्य किया।

कोशल और मगध का युद्ध—अजातशत्रु के अपने पिता को इस प्रकार मारने की बड़ी भयंकर अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिक्रिया हुई। बिम्बसार कोशलराज प्रसेनजित् का बहनोई था। उसको आशा थी कि बिम्बसार के बाद उसका भानजा दर्शक मगध सम्राट् होगा। किन्तु अजातशत्रु ने अपने रास्ते से बिम्बसार के अतिरिक्त दर्शक को भी हटा दिया। इस पर क्रुद्ध होकर राजा प्रसेनजित् ने मगध को दिये हुए काशी के उस प्रदेश पर फिर अधिकार कर लिया, जो उसने अपनी बहिन कोशलदेवी क्षेमा का बिम्बसार के साथ विवाह होने पर उसके 'नहान-चुन्न मूल्य' के रूप में दहेज में दिया था। इसी प्रश्न को लेकर मगध तथा कोशल में युद्ध आरंभ हो गया। अजातशत्रु ने तीन युद्धों में प्रसेनजित् को हराया, किन्तु चौथी बार वृद्ध प्रसेनजित् ने उसे पराजित करके कैद कर

लिया। किन्तु अजातशत्रु से साक्षात्कार करके प्रसेनजित् इतना प्रसन्न हुआ कि उसने उसके साथ अपनी कन्या वाजिरा का विवाह करके उसे छोड़ दिया और यौतुक में 'नहान-चुन्न मूल्य' के रूप में एक लाख वार्षिक आय का काशी का वह प्रदेश भी उसको वापिस दे दिया, जो उसने क्षेमा के विवाह के अवसर पर बिम्बसार को दिया था।

अजातशत्रु के गद्दी पर बैठने से कुछ ही समय पूर्व वत्सराज उदयन का विवाह अवन्तिराज चण्डप्रद्योत की पुत्री वासवदत्ता के साथ हुआ था, जिसका वर्णन पीछे किया जा चुका है। बिम्बसार के शासन के अन्तिम दिनों में चण्डप्रद्योत ने ईसापूर्व ५३० में मगध पर आक्रमण करने की तैयारी की। किन्तु इसके पांच वर्ष पश्चात् ईसा पूर्व ५२५ में प्रद्योत का स्वर्गवास हो जाने से मगध अवन्ति की ओर से निश्चित हो गया। प्रद्योत के बाद उज्जयिनी की गद्दी पर पालक बैठा। कहा जाता है कि जिस दिन यह गद्दी पर बैठा उसी दिन भगवान् महावीर स्वामी का पावापुर में निर्वाण हुआ। पालक ने २४ वर्ष राज्य किया।

भगवान् महावीर स्वामी का निर्वाण—अजातशत्रु के राज्य के छठे वर्ष ईसा पूर्व ५२६ या ५२७ में भगवान् महावीर स्वामी को मोक्ष हो गया। किन्तु कुछ लोग महावीर निर्वाण ईसा पूर्व ५४६ में मानते हैं। इस मत को मानने से इन सभी तिथियों में २० वर्ष और बढ़ाने पड़ेंगे।

भगवान् महावीर स्वामी ने अपने निर्वाण से पूर्व शूरसेन, दशार्ण देशों में होते हुए सिन्धु, सौवीर देश में भी विहार किया था। उन्होंने हेमांग देश की राजधानी राजपुर में भी जाकर उपदेश दिया था। राजपुर उन दिनों दण्डकारण्य के निकट था। वहां के राजा जीवंधर अत्यंत पराक्रमी थे। उन्होंने पल्लव आदि अनेक देशों को जीता था। राजा जीवंधर ने दक्षिण भारत के अनेक देशों का भ्रमण किया था। अंत में वह भगवान् महावीर स्वामी के निकट मुनि बन गए थे। बाद में उनके सम्बन्ध में 'छत्र-चूड़ामणि', 'जीवन्धर-चम्पू' आदि अनेक साहित्य ग्रन्थ लिखे गए।

पोदनपुर में राजा प्रसन्नचन्द्र भगवान् महावीर स्वामी का भक्त था। पोलासपुर का राजा भी उनका भक्त था। इस प्रकार भगवान् ने तीस वर्ष तक उपदेश देकर पावापुर नामक स्थान से कार्तिक वदि अमावस्या को निर्वाण

प्राप्त किया।

गौतम बुद्ध का निर्वाण—अजातशत्रु के राज्य के आठवें वर्ष और महावीर निर्वाण के दो वर्ष पश्चात् ईसा पूर्व ५२४ में कुशीनारा में महात्मा गौतम बुद्ध का निर्वाण हुआ।

श्रावस्ती के सम्राट् प्रसेनजित् का पुत्र विडूडभ जब श्रावस्ती का राजा बना तो उसने अपने मातृपक्ष के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिये शाक्यों पर आक्रमण करके उनका सर्वनाश कर डाला। भगवान् बुद्ध ने अपना पैंतालीसवां तथा अन्तिम चातुर्मास्य श्रावस्ती में व्यतीत करके राजगृह जाते हुए मार्ग में कपिलवस्तु के ध्वंसावशेषों को देखा था। उन दिनों वैशाली में आम्रपाली नामक एक वेश्या रहती थी। उसने एक बार भगवान् को संघ समेत भोजन के लिये निमंत्रित किया।

"क्यों आम्रपाली ! आज तुझको यह साहस, कि तू वैशाली के राजपुत्रों का उल्लंघन करके अपना रथ उनसे भी आगे निकाल रही है।"

"क्यों नहीं ? आज भगवान् तथागत ने मेरे यहां अपने संघ सहित भोजन करना जो स्वीकार कर लिया है।"

"ऐसी बात है ?"

"और क्या।"

"अच्छा आम्रपाली ! तू यह निमंत्रण हमारे हाथों बीस सहस्र स्वर्ण मुद्रा लेकर बेच दे।"

"नहीं, कभी नहीं।"

"पचास सहस्र स्वर्णमुद्रा ले ले।"

"कभी नहीं।"

"अच्छा एक लाख स्वर्णमुद्रा ले ले।"

"मैं वैशाली का सारा राज्य लेकर भी इस निमंत्रण को नहीं बेचूंगी। एक समय था जब आप लोगों को मैं अपने द्वार पर नहीं आने देती थी तो मैंने अपने को तथागत को अर्पण करना चाहा था, किंतु तथागत ने उस समय मेरे समस्त रूप-यौवन की उपेक्षा करते हुए केवल यही कहा था कि 'अभी नहीं।" बाद में मैं भयंकर रूप से बीमार पड़ी और मैंने आप लोगों को बुल-

आया, किंतु आप लोग तो मेरे रूप-यौवन के भूखे थे। मेरे रोग के समय मेरे पास क्यों आते? किंतु भगवान् तथागत मेरे रोग का समाचार पाकर बिना बुलाए ही मेरे पास आए और उन्होंने मेरी परिचर्या करके मुझे रोग के संकट से छुड़ा दिया। आज उन्होंने मेरे ऊपर दया करके जो मेरे घर संघ-सहित भोजन करना स्वीकार किया है, यह मेरे जीवन में सबसे बड़ा सम्मान है।

"आपकी वैशाली का यह नियम कि नगर की सब से सुन्दर कन्या को विवाह न करने देकर सब के उपभोग के लिये रखा जावे, अब भी मेरे हृदय में शूल के समान चुभ रहा है। कहां मैं वैशाली के प्रधान सेनापति की प्राणप्यारी पुत्री, कहां यह वार-वनिता का जीवन? आप लोगों ने मेरे स्त्रीत्व का अपमान किया है। किंतु मैं आप लोगों को दिखला दूंगी कि मैं आप लोगों से कहीं अधिक ऊंची बन चुकी हूँ।"

यह कहकर आम्रपाली अपने रथ को शीघ्रता से अपने भवन की ओर ले चली।

आम्रपाली ने घर आकर भगवान् तथागत की दावत का बड़ा भारी आयोजन किया। उसने अपने महलों तथा वाटिका की खुद सफाई कराई। फिर उसने भगवान् तथागत के भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों के लिये अनेक प्रकार के भोजन तैयार कराए।

भोजन का समय होने पर भगवान् तथागत अपने संघसहित उसके घर पधारे। आम्रपाली ने भगवान् के घर में पधारने पर उनका चरणोदक लेकर उनको साष्टांग दण्डवत किया। इसके पश्चात् उसने भगवान् और उनके शिष्यों को भोजन कराया। भोजन समाप्त होने पर आम्रपाली भगवान् को प्रसन्न मुद्रा में देखकर बोली—

"भगवन्! आपने मेरे घर अपनी जूठन डाल कर जो मुझे विशेष सम्मान दिया है, उसकी कृतज्ञता स्वरूप मैं आपसे एक निवेदन करना चाहती हूँ।"

"कहो आम्रपाली! तुम्हें जो कुछ कहना हो प्रसन्नता से कहो।"

"महाराज! मेरी यह इच्छा है कि मेरा यह भारी महल तथा बगीचा संघ के लिये संकल्प कर दिया जावे। मैं चाहती हूं कि आप मुझे ऐसा करने

की अनुमति दें ।"

"आम्रपाली ! जैसी तेरी इच्छा ।"

"भगवन् ! एक प्रार्थना और भी है और वह मेरे जीवन की सब से बड़ी अभिलाषा है ।"

"वह भी कह डालो ।"

"भगवन् ! मैं चाहती हूं कि अब घर, मकान तथा वाटिका सहित आप मुझे भी स्वीकार करें ।

"अच्छा ऐसा ही हो ।"

"बुद्धं सरणं गच्छामि । संघं सरणं गच्छामि । धम्मं सरणं गच्छामि ।"

आम्रपाली ने भिक्षुणी बन कर बौद्ध संघ में प्रवेश किया । उसके महल से बौद्ध-विहार का काम लिया जाने लगा ।

बुद्ध की आयु जब चालीस वर्ष की हुई तो उनका शरीर क्षीण हो गया । बौद्ध तथा जैन साधुओं के संघ का यह नियम होता है कि किन्हीं दो साधुओं का साथ लगातार नहीं रह सकता । किंतु बुद्ध की शारीरिक स्थिति निर्बल मानकर बौद्ध संघ ने सर्वसम्मति से यह निश्चय किया कि आनंद बुद्ध की सेवा के लिये सदा उनके साथ रहा करें । तब से आनंद अंतिम समय तक सदा ही बुद्ध के साथ बने रहे । उन्होंने अंत तक बड़ी लगन और प्रेम के साथ भगवान् की सेवा की । कुछ दिनों बाद आपको अपने प्रिय शिष्य सारिपुत्र और मौद्गलायन के निर्वाण का समाचार मिला, इसी वर्ष आपके शरीर में भी रोग हुआ ।

कुछ दिनों बाद भगवान् पावा पहुंचे । वहां चुन्द नामक किसी कर्मकार ने आपको संघ सहित भोजन का निमंत्रण दिया । भोजन करते समय जब भगवान् ने देखा कि चुन्द सुअर का मांस परोसने वाला है तो उन्होंने उससे कहा—

"हे चुन्द ! तुम मुझे छोड़ यह मांस और किसी को न देना, क्योंकि मनुष्य-लोक, देवलोक और ब्रह्मलोक को छोड़कर और कोई इस मांस को नहीं पचा सकता । जो मांस मेरे खाने से बच रहे उसे यहीं पर गढ़ा खोद कर गाड़ देना ।"

चुन्द ने भगवान् के बतलाए अनुसार ही सब कार्य किया । बुद्ध पहिले से ही अस्वस्थ थे, आयु भी इक्यासी वर्ष की हो चुकी थी, अतएव सुअर का

मांस खाने से उनको आंव और लोहू के दस्त आकर खूनी पेचिश हो गई। वह उसी दशा में कुशीनगर को चल दिये। मार्ग में रोग के करण कई स्थल पर विश्राम करते हुए वह हिरण्यवती नदी को पार करके कुशीनगर के समीप एक शालवन में ठहरे। वहां उनका रोग और भी बढ़ गया। उस समय सुभद्र नामक एक परिव्राजक भगवान् से कुछ प्रश्न पूछने को आया। आनन्द ने भगवान् का अंतिम समय जान उसे प्रश्न करने से रोका। किंतु यह बात तथागत के कान में पड़ गई और उन्होंने उसको अपने पास बुलाकर उसका समाधान किया। इसके पश्चात् उनका ८२ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हुआ। उन्होंने २५ वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन किया, २८ वर्ष की आयु में गृहत्याग किया, सात वर्ष तप करने के बाद उन्हें ३५ वर्ष की आयु में बोध हुआ और ४५ वर्ष तक संसार को ज्ञानामृत का पान कराकर उन्होंने ईसापूर्व ५२४ में निर्वाण प्राप्त किया। मल्लराज ने उनका दाह संस्कार कर उनकी अस्थियों पर स्तूप बनवाकर उन पर अधिकार करने की घोषणा की। इस समय मगधराज अजातशत्रु, वैशाली के लिच्छवियों, कपिलवस्तु के शाक्यों, अल्ल कल्प के बूलयों, रामग्राम के कोलियों और पावा के मल्लों ने कुशीनगर के महाराज के पास दूत भेज कर कहलाया कि---

"भगवान् क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं। इस नाते उनके शरीर पर हमारा भी अधिकार है।"

मल्लराज के इनकार करने पर सभी राजा अपने दल-बल समेत कुशीनगर पर चढ़ दौड़े। भगवान् का स्वर्गवास द्रोणाचार्य वंशोद्भव द्रोण नामक एक ब्राह्मण की कुटी के पास हुआ था। उसने उन पवित्र अस्थियों के आठ भाग करके उनको कुशीनगर, पावा, वैशाली, कपिलवस्तु, अल्लकल्प, राजगृह और वेठदीप वालों में बांट दिये। बाद में पिप्पलीय वन के मोरी क्षत्रिय भी उसका भाग लेने आए। द्रोणाचार्य ने उनको चिता की भस्म देकर विदा किया। जिस कुम्भ में अस्थियां रखी थी उसे सब से मांग कर उस पर द्रोणाचार्य ने स्वयं स्तूप बनवाया।

भगवान् बुद्ध के जन्म के समय भारत में वेदों के नाम पर विशाल परिमाण में जीव-हिंसा की जाती थी। उस समय भैंसों और बकरों की बहुत बड़ी

संख्या में बलि दी जाती थी। उस वैदिक हिंसा के विरुद्ध यद्यपि प्राचीन काल से ही आंदोलन किया जा रहा था, किंतु भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर ने इस आन्दोलन को नवीन दिशा देकर उसमें नवीन प्राण-प्रतिष्ठा की। भगवान् बुद्ध ने जिस जीवदया और अहिंसा-धर्म का उपदेश दिया था, उसका प्रचार उनके बाद उनके अनुयायी भिक्षुसंघ तथा बौद्ध नरेशों ने बहुत बड़े पैमाने पर किया। भगवान् बुद्ध के उपदेश से अनेक राजकुमारों तथा सुकुमार राजकुमारियों ने राजसुख छोड़ कर भिक्षु तथा भिक्षुणियों का जीवन स्वीकार किया। बुद्ध के बाद उन्होंने दूर-दूर के देशों में जाकर तथागत के ज्ञान का संदेश दिया।

अहिंसा प्रचारक चार विभूतियाँ—अहिंसा के प्रचारकों में संसार में सब से प्रमुख स्थान गौतम बुद्ध, भगवान् महावीर, ईसा मसीह तथा महात्मा गांधी का है। ईसा मसीह के अलावा शेष तीनों प्रचारक भारतीय थे। ईसा मसीह ने भी अहिंसा की शिक्षा भारत आकर बौद्ध विद्यालय में ही प्राप्त की थी, इस बात को अब इतिहास के विद्वान् मानने लगे हैं। बौद्ध धर्म के कारण भारत में तथा भारत के बाहिर भी भारतीय धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, साहित्य, कला तथा संस्कृति का अत्यन्त व्यापक रूप में प्रचार हुआ। चीन, जापान, कम्बोडिया, ब्रह्मा, स्याम, सुमात्रा, जावा, बाली, लंका आदि जिन देशों में आज बौद्ध धर्म का व्यापक रूप में प्रचार है उनको भारतीय इतिहास में 'बृहत्तर भारत' कहा जाता है। मूर्त्तियों तथा ग्रन्थों के रूप में भारतीय संस्कृति की बहुत बड़ी सामग्री अब भी 'बृहत्तर भारत' के इन देशों में मिलती है।

भगवान् बुद्ध की धारणा थी कि वह किसी नये धर्म का उपदेश न दे कर शाश्वत सनातन धर्म का ही उपदेश कर रहे हैं। उन्होंने मनुष्य को पशुता की ओर जाने से रोक कर मानवता का संदेश दिया।

उन्होंने जो वेदों के नाम पर होने वाली हिंसा के विरुद्ध आवाज उठाई उसका सनातनधर्मी नेताओं पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उन्होंने बुद्ध को विष्णु के दशावतारों में गिनना आरंभ किया। भागवत पुराण में जहां विष्णु के सभी अवतारों का चरित्र दिया गया है बुद्ध का चरित्र वर्णन करते हुए यह बतलाया गया है कि ब्रह्मा जी ने भगवान् बुद्ध से यह अनुरोध किया कि वह

पृथ्वी पर अवतार लेकर वेदों के नाम पर की जाने वाली नृशंस हिंसा को रोकें।

बौद्धों के वर्तमान तीर्थ स्थान—भारत में बुद्ध के जीवनसम्बन्धी चार प्रधान स्थान हैं—

एक कपिलवस्तु जहां भगवान् का जन्म हुआ, दूसरा गया जहाँ भगवान् को बोध हुआ, तीसरा सारनाथ जहाँ भगवान् ने प्रथम बार धर्मोपदेश देकर धर्मचक्र का प्रवर्तन किया तथा चौथा कुशीनगर जहाँ भगवान् ने निर्वाण प्राप्त किया। यद्यपि बौद्ध लोग इन चारों ही स्थानों की तीर्थ-या । बड़ी श्रद्धा से करते हैं, किंतु सनातनधर्मी लोग बुद्धावतार के सम्बन्ध से बुद्ध गया को ही अधिक मानते हैं। बुद्ध गया में भगवान् बुद्ध का एक उत्तम मंदिर है, जिसे बुद्ध का संसार भर में सर्वश्रेष्ठ मंदिर समझा जाता है। इस मंदिर के साथ बड़ी भारी विशाल सम्पत्ति लगी हुई है, जो सब की सब एक सनातनधर्मी महंत के अधिकार में है। बौद्ध लोग अनेक वर्षों से यह आन्दोलन कर रहे हैं कि यह मंदिर बौद्धों को दिया जाना चाहिये। भारत में अंग्रेजों के प्रभुत्व के समय द्वितीय महायुद्ध से पूर्व इस आन्दोलन को बौद्ध लोगों ने बड़े जोर-शोर से चलाया था, किंतु १९३९ में द्वितीय महायुद्ध आरंभ हो जाने पर यह आन्दोलन अपने आप ही समाप्त हो गया। अब भारत के स्वतंत्र हो जाने पर यद्यपि भारत में बौद्धों की संख्या बढ़ गई और महाबोधि सोसाइटी को भी अधिक बल मिल गया, किन्तु बुद्ध गया के मंदिर को बौद्धों को देने के सम्बन्ध में कहीं कोई आन्दोलन दिखलाई नहीं देता।

आज संसार तृतीय विश्व युद्ध के लिये तैयार जैसा दिखलाई देता है। उस की तृतीय विश्वयुद्ध से कोई रक्षा कर सकता है तो वह भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीर स्वामी का उपदेश ही है।

प्रसेनजित का पुत्र विड्डभ—प्रसेनजित का सेनापति बन्धुल मल्ल था। उसकी पत्नी को जब गर्भ रहा तो उसको यह दौहृद हुआ कि मैं वैशाली की मङ्गल पुष्करिणी में स्नान करूं। इस समय कोशल तथा मगध की संधि हो कर उनमें फिर गाढ़ मित्रता हो चुकी थी। बंधुल मल्ल के वृजि संघ पर चढ़ाई करने की अनुमति मांगने पर प्रसेनजित ने इस विषय में अजातशत्रु का मत जानने के लिये कुछ दूत राजगृह भेजे। इस समय तक अजातशत्रु की माता जैन

आर्यिका चेलना देवी का स्वर्गवास हो चुका था। अतः अजातशत्रु के मन में राजा चेटक के संबंध का मान अब नहीं रहा था। उसके विपरीत अजातशत्रु बौद्ध तथा राजा चेटक जैन था। इसलिये अजातशत्रु अपनी साम्राज्यविस्तार की भावना में वैशाली के गणतन्त्र को एक बाधा मानकर उसको नष्ट करने का विचार कर रहा था। प्रसेनजित का संवाद पाकर उसने उसको तुरन्त ही वैशाली पर चढ़ाई करने की अनुमति दे दी। वह समझता था कि इस युद्ध में यदि लिच्छवी लोग न भी हारे तो युद्ध के कारण वह निर्बल तो अवश्य हो जावेंगे। प्रसेनजित् ने बन्धुल मल्ल की पत्नी की इच्छापूर्ति के लिये यद्यपि बन्धुल को वैशाली पर व्यक्तिगत अभियान करने की अनुमति दे दी, किन्तु उसने उसे कोशल तथा वज्जिसंघ के युद्ध का रूप नहीं दिया। बन्धुल कुछ चुने हुए वीरों को साथ ले कर व्यापारियों के वेष में वैशाली पहुँचा। रात्रि के समय मंगल पुष्करिणी में अपनी पत्नी को स्नान कराकर वह एक हल्के युद्ध के बाद ही वैशाली से अपने साथियों सहित कुशलपूर्वक निकल आया।

राजा प्रसेनजित बन्धुल की उन्नति से ईर्ष्या करने लगा था। उसके इस कार्य ने उसकी ईर्ष्या में और भी घी का काम किया। उसने अवसर पाकर बन्धुल मल्ल को उसके सब पुत्रों सहित धोखे से मरवा दिया। इसके बाद उसने बन्धुल के भानजे दीघकारायण को अपना सेनापति बनाया।

किन्तु दीघकारायण भी प्रसेनजित् से मन ही मन जलता था। उसने प्रसेनजित् के उस विद्रोही पुत्र विडूडभ से गुप्त मैत्री कर ली, जिसको प्रसेनजित् ने शाक्य राजकुमारी के धोखे में शाक्य दासी में उत्पन्न किया था। विडूडभ अपनी उत्पत्ति का दोषी अपने पिता को मानता था। शाक्यों के गणतन्त्र की तो ईंट से ईंट बजा देने की वह प्रतिज्ञा कर चुका था। अजातशत्रु से वाजिरा का विवाह होने के तीन वर्ष बाद जब प्रसेनजित् शाक्यराष्ट्र की सीमा पर गया हुआ था, तो उसके सेनापति दीघकारायण ने उसके बेटे विडूडभ को कोशल का राजा बना दिया। प्रसेनजित अजातशत्रु से सहायता लेने राजगृह गया। किन्तु उसका राजगृह के बाहिर ही देहान्त हो गया। अजातशत्रु ने अपने श्वशुर प्रसेनजित की राज्योचित सम्मान के साथ अंत्येष्टि की।

यह बतला दिया गया है कि विडूडभ की माता दासी तथा महानामन नामक

शाक्य की पुत्री थी, जो उसने दासी में उत्पन्न की थी। शाक्यों ने युवराज अवस्था में उसका अपमान भी किया था। अतः विडूडभ नें कोशलराज बननें पर शाक्यों पर आक्रमण करके उनके राज्य को पूर्णतया नष्ट कर दिया। बाद में भगवान् बुद्ध ने विडूडभ द्वारा विध्वस्त कपिलवस्तु को भी देखा था।

अजातशत्रु द्वारा वज्जिसंघ की समाप्ति—यह पीछे बतला दिया गया है कि साम्राज्यकामी अजातशत्रु वज्जिगण संघ को नष्ट करना चाहता था। इस युद्ध की तैयारी के लिये अजातशत्रु के अमात्य सुनीध तथा वर्षकार ने राजगृह की किलेबन्दी को और भी मजबूत करवाया। महापरिनिब्बत्ति सुत्त में लिखा है कि बुद्ध जब अपने जीवन में अन्तिम बार राजगृह आए तो अजातशत्रु नें अपने मन्त्री वर्षकार को उनके पास भेज कर अपने वज्जिसंघ पर भावी अभियान के सम्बन्ध में बुद्ध के विचार जाननें का प्रयत्न किया। बुद्ध ने वृजियों के संबंध में सात प्रश्न पूछकर अपनी सम्मति दी। बुद्ध के कथन का सारांश यह था कि जब तक वृजि लोग अपनी परिषदों में नियम से एकत्रित होते हैं, जब तक वह एक साथ बैठते हैं, जब तक वह एक साथ उद्यम करते और एक साथ राष्ट्रीय कामों को करते हैं, जब तक वह नियम बनाए विना कोई आज्ञा जारी नहीं करते और बने हुए नियम का उल्लंघन नहीं करते, जब तक वह अपने राष्ट्रीय नियमों के अनुसार मिल कर आचरण करते हैं, जब तक वह अपने वृद्धों का आदर करते और उनकी सुनने योग्य बातें सुनते है, जब तक वह अपनी कुल-स्त्रियों तथा कुल-कुमारियों पर किसी प्रकार की जोर-जबर्दस्ती नहीं करते, जब तक वह अपने राष्ट्रीय मंदिरों का आदर करते और अपने त्यागी विद्वानों की रक्षा करते हैं, तब तक उनका अभ्युदय होता जावेगा और उनकी हानि नहीं की जा सकती।

महात्मा गौतम बुद्ध के इस उत्तर से अजातशत्रु नें समझ लिया कि वह अपने सैनिक बल से वृजि-संघ को नही जीत सकता। अतएव उसने अपने मंत्री वर्षकार की सम्मति के अनुसार उनमें फूट डालने का निश्चय किया।

इसके बाद अजातशत्रु ने भरी सभा में ब्राह्मण वर्षकार पर वज्जियों के साथ मिले होने का दोष लगाकर उसका भारी अपमान किया। वर्षकार राजगृह को छोड़कर वैशाली आया और वहां एक सम्मानित अतिथि के रूप में रहने लगा। वर्षकार बड़ी सुन्दर रीति से वैशाली में न्याय कार्य करता था। वैशाली

के राजकुमार उसके पास विद्याग्रहण करते थे।

धीरे-धीरे वर्षकार के त्याग तथा उसकी विद्वत्ता की वैशाली में अच्छी प्रतिष्ठा होने लगी। अब उसने लिच्छवियों में किसी से कुछ तथा किसी से कुछ कहकर उनमें फूट डालनी आरम्भ की। इस घटना के तीन वर्ष बाद वर्षकार ने लिच्छवि राजाओं में ऐसी फूट डाल दी कि दो लिच्छवि राजा एक मार्ग पर ही नहीं जाते थे। जब वर्षकार को लिच्छवियों की पारस्परिक फूट का पूर्ण विश्वास हो गया तो उसने अजातशत्रु को जल्दी आक्रमण करने को लिखा। इस पर अजातशत्रु रण-भेरी बजाकर युद्ध के लिए चल पड़ा।

• जैन आगम ग्रन्थों में मगध तथा लिच्छवियों के युद्ध का एक तात्कालिक कारण यह बतलाया गया है कि अजातशत्रु के चारों छोटे भाई उससे नाराज होकर वैशाली आकर अपने नाना चेटक के पास रहने लगे। अजातशत्रु ने राजा चेटक को लिखा कि वह उनके छोटे भाइयों को गिरफ्तार करके राजगृह भेज दे। किन्तु लिच्छवियों ने शरणागत को धोखा देने में अपना अपमान समझा। सारांश यह है कि मगध तथा लिच्छवियों में युद्ध आरम्भ हो गया।

बौद्ध ग्रन्थों में लिखा है कि जब लिच्छवियों ने अजातशत्रु का मुकाबला करने की रणभेरी बजवाई तो उस रणभेरी को सुनकर कोई भी नहीं आया। यह रणभेरी गंगा तट पर अजातशत्रु का मुकाबला करने के लिये बजवाई गई थी। जब अजातशत्रु वैशाली के द्वार तक आ गया तो दुबारा रणभेरी बजवाई गई कि अजातशत्रु को नगर में न घुसने दिया जावे और नगर द्वार बंद करके उसका मुकाबला किया जावे। किन्तु इस बार भी लोग नहीं आए और अजातशत्रु खुले द्वार से वैशाली में घुस कर उसको नष्ट करके चला गया।

किन्तु जैन आगम बौद्ध ग्रन्थों के इस वर्णन से सहमत नहीं हैं। उनके अनुसार वैशाली के गणपति राजा चेटक ने नव लिच्छवि-राजाओं तथा नव मल्ल-राजाओं को लेकर अजातशत्रु के साथ भारी युद्ध किया, जिसमें अजातशत्रु को विजय मिली और वज्जि संघ के साथ-साथ मल्ल जनपद तथा काशी जनपद को भी मगध साम्राज्य में मिला लिया गया। राजा चेटक ने अपने जीवते के हाथों ही युद्ध में वीर गति प्राप्त की। यह घटना अजातशत्रु के राज्य के बारहवें वर्ष तथा बुद्ध के निर्वाण के चार वर्ष बाद ईसा पूर्व ५२० की है। जैन ग्रन्थों में

लिखा है कि यह युद्ध इतना भयंकर था कि इसमें अजातशत्रु ने 'महाशिला-कण्टक' तथा 'रथमूसल' जैसे भयंकर अस्त्रों का भी प्रयोग किया था।

इसके बाद अजातशत्रु के बीस वर्ष के जीवन काल में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं मिलती। ३४ वर्ष तक राज्य करने के उपरान्त अजातशत्रु का स्वर्ग-वास ईसापूर्व ४९८ में हुआ।

दर्शक (ईसापूर्व ४९८ से ४६७ तक)—अजातशत्रु के उत्तराधिकारी के संबंध में जैन, बौद्ध तथा पुराण ग्रन्थों में कुछ मतभेद है। कुछ तो उसका बेटा दर्शक को तथा कुछ अज उदायी को मानते हैं। किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि दर्शक के समय कोई राजनीतिक घटना न होने से इतिहास शृङ्खला में उसके नाम की उपेक्षा की गई है। वैसे दर्शक ने ३१ वर्ष तक राज्य किया।

अज उदायी (ईसापूर्व ४६७ से ईसापूर्व ४४४ तक)—बौद्ध ग्रन्थ महावंश के अनुसार अज उदायी ने भी अपने पिता को मारकर सिंहासन प्राप्त किया था, किन्तु इस घटना का समर्थन किसी अन्य आधार से नहीं होता। अज उदायी के जीवन में दो बातें उल्लेखनीय थीं। इनमें प्रथम पाटली-पुत्र का निर्माण तथा दूसरी अवन्ति का पराभव थी। अज उदायी भी अजातशत्रु के समान विजेता था।

अजातशत्रु के समय मगध की राजधानी चम्पा तथा राजगृह थी। उसने कोशल को जीतकर अवन्ति का मुकाबला किया और वृजिसंघ के साथ-साथ मल्ल-जनपद तथा काशी जनपद को भी अपने राज्य में मिलाया। अन्त में अज उदायी ने अपने राज्य के द्वितीय वर्ष में अवन्ति को भी जीतकर उसे केन्द्रीय भारत की एकमात्र प्रमुख शक्ति बना दिया।

उदायी के समय तक मगध साम्राज्य इतना बड़ा हो गया था कि उसकी राजधानी चम्पा या राजगृह साम्राज्य के केन्द्र से बहुत दूर पड़ती थी। यद्यपि वज्जिसंघ पर अधिकार कर लिया गया था, किन्तु उसमें विद्रोही तत्वों की अब भी कमी नहीं थी। अतएव उसको भली प्रकार वश में रखने के लिये एक ऐसी राजधानी की आवश्यकता थी जो वज्जी जनपद से अधिक दूर न हो। इसलिये बहुत सोच-विचार के बाद पाटलीग्राम नामक स्थान पर पाटलीपुत्र नामक नई राजधानी बनाई गई। उसने २३ वर्ष तक राज्य किया।

उदायी अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी तथा वीर राजा था। पास-पड़ौस के सभी राजा उसके आए दिन के आक्रमणों से तंग थे। यद्यपि उसने अपने जीवन में अनेक युद्ध किये, किन्तु अवन्ति युद्ध के अतिरिक्त उनमें से किसी युद्ध का वर्णन नहीं मिलता। हेमचन्द्राचार्य ने अपने ग्रन्थ स्थविरावली चरित्र में लिखा है कि उदायी राजा जैन था और उसकी हत्या एक ऐसे पदच्युत राजकुमार ने सोते समय की थी, जिसने जैन साधु का वेष धारण करके उसके अन्त:पुर में निर्बाध प्रवेश करने का अधिकार प्राप्त कर लिया था।

शिशुनाग वंश का अन्त—उदायी के बाद उसके बेटे अनिरुद्ध अथवा नन्दिवर्द्धन ने ईसापूर्व ४४४ से ईसापूर्व ४०४ तक ४० वर्ष तक राज्य किया। उसने कलिंग (उड़ीसा) को भी जीत लिया था। नन्दिवर्द्धन के बाद उदायी के पोते मुण्ड अथवा महानन्दी ने लगभग ईसा पूर्व ४०४ से ३६६ ईसा पूर्व तक ३५ वर्ष राज्य किया। महानन्दी के बाद आठ वर्ष तक ३६६ से ३६१ ईसा पूर्व तक उसके दो बेटों ने राज्य किया, जिनका अभिभावक महापद्मनन्द था। उसने उन दोनों को मार कर मगध में नन्दवंश के शासन की स्थापना की और शिशुनागवंश के शासन को समाप्त कर दिया।

इस प्रकार शिशुनागवंश के मगध-सम्राटों ने अपने समय के सोलह महा-जनपदों में से अंग, काशी, वज्जि, मल्ल, वत्स और अवन्ति इन जनपदों को अपने आधीन कर लिया। महापद्मनन्द ने कोशल, पाञ्चाल, चेदि, शूरसेन, तथा कुरु—इन पांच जनपदों को भी जीत कर मगध साम्राज्य में मिला लिया। उसने गोदावरी प्रदेश में अश्मक पर भी अधिकार किया। बाद में चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य ने नन्दवंश को नष्ट कर मगध में मौर्यवंश की प्रतिष्ठा की और मगध साम्राज्य को भारतीय साम्राज्य का रूप देकर आर्य-पताका को मध्य एशिया तक फैलाया। भारत में इतना बड़ा साम्राज्य तबसे लगा कर आज तक भी नहीं बन पाया। उस समय भारतीय साम्राज्य की सीमा दक्षिण के कुछ थोड़े से भाग के अतिरिक्त मध्य एशिया तक फैली हुई थी, जिसमें आजकल के पख्तू-निस्तान, अफ़गानिस्तान, बलोचिस्तान, चीनी तुर्किस्तान, पूर्वी ईरान तथा सोवियत रूस के मध्य एशिया के कुछ जनतन्त्र सम्मिलित थे। किन्तु इतना निश्चय है कि चन्द्रगुप्त मौर्य इस विशाल साम्राज्य का मूल रूप में निर्माता

न होकर उत्तराधिकारी था। इस विशाल साम्राज्य के निर्माण-कार्य को सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार ने आरंभ किया था। बाद में अजातशत्रु, उदायी तथा महापद्मनन्द ने उस साम्राज्य को इतना अधिक बढ़ाया कि उसको नन्दवंश से उत्तराधिकार में प्राप्त करके चन्द्रगुप्त मौर्य उसको मध्य एशिया तक बढ़ाने में सफल हो गया। यह निश्चय है कि यदि चन्द्रगुप्त मौर्य को इस विशाल साम्राज्य का उत्तराधिकार न मिलता तो वह इतने बड़े साम्राज्य का निर्माण कभी न कर पाता।

जैन तथा बौद्धमत के पतन के कारण—इसमें संदेह नहीं कि शिशुनाग वंश से लेकर मौर्य वंश के समय तक जैन तथा बौद्ध धर्म उन्नति के चरम शिखर पर थे। उसके बाद उनमें न केवल अनेक सम्प्रदाय बन गए, वरन् उनका भौतिक पतन भी आरंभ हो गया। किन्तु दोनों के पतन के कारण भिन्न ही थे। बौद्ध धर्म की अवनति का कारण उसके भिक्षुकों के चरित्र का पतन था। बाद के बौद्ध भिक्षुओं ने न केवल मन्त्र-तन्त्रों को अपना लिया, वरन् वह अपने ब्रह्मचर्य व्रत को भी स्थिर न रख सके। बौद्ध साधु मांसभक्षी तो आरंभ से ही थे। अतः उनके खानपान में भी विलासिता आ गई। बौद्ध भिक्षुओं का नैतिक पतन बौद्ध धर्म के ह्रास का आन्तरिक कारण था। स्वामी शंकराचार्य के आक्रमण से उनको बाहिर से ऐसी चोट लगी कि वह उसको न संभाल सके। बाद में मुसलमानों के आक्रमण ने तो उनके अस्तित्व तक को भारतवर्ष से मिटा दिया।

किन्तु जैनियों की संख्या भारतवर्ष में कभी भी तेरह चौदह लाख से कम नहीं हुई। यह लोग सदा से ही धनिक रहे, भारतवर्ष के व्यापार में सदा से ही उनका प्रधान भाग रहा। किन्तु जैन धर्म आज उस उन्नत अवस्था में नहीं है। उसके पतन का कारण मुख्य रूप से उसका विभिन्न सम्प्रदायों मे बंट जाना तथा उसके आचरणों की कठोरता है। आचरणों की कठोरता के कारण ही जैन साधुओं के चरित्र में कभी निर्बलता नहीं आई। गौतम बुद्ध ने जहां अपने संघ में महिलाओं को हिचकते-हिचकते लिया, वहाँ जैन संघ में प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभ देव के समय से जैन साध्वियों का प्रधान स्थान रहा है।

राहुल सांकृत्यायन जैसे कुछ विद्वानों का तो सामूहिक ब्रह्मचर्य में विश्वास ही नहीं है। उनका कहना है कि साधु या साध्वियां पृथक्-पृथक् अथवा सम्मिलित रूप से ब्रह्मचर्य का पालन कर ही नहीं सकते। राहुल जी का इस सम्बन्ध में इतना पक्षपातपूर्ण मत है कि वह किसी ब्रह्मचारी समाज को देखकर उसकी चारित्रिक दुर्बलताओं को (यदि उनमें वह पा सकें) बतलाने को तैयार नहीं हैं।

राहुल जी का मत चाहे जो कुछ क्यों न हो, तथ्य यह है कि जैन साधुओं के नियम आरंभ से ही इस प्रकार के रखे गए हैं कि उनमें कंचन तथा कामिनी के संसर्ग को किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। प्रत्येक जैन साधु के लिये यह अनिवार्य है कि वह विपरीत लिंग वाले प्रत्येक प्राणी के स्पर्श तक से बचे। एक जैन साधु स्त्री तो क्या एक दिन की कन्या, गौ, भैंस, बकरी, मुर्गी, मोरनी अथवा किसी भी मादा पशु-पक्षी तक का स्पर्श नहीं कर सकता। उधर जैन साध्वी किसी भी पुरुष जाति के व्यक्ति का स्पर्श नहीं कर सकती, फिर भले ही वह एक दिन का लड़का, बैल, घोड़ा, बकरा, मुर्गा, मोर आदि कोई भी पशु-पक्षी क्यों न हो।

जैन आचार्यों को महिलाओं को दीक्षा देने का अधिकार है। किन्तु उन की महिला शिष्या अपने गुरु का चरण स्पर्श तो क्या, किसी प्रकार का भी स्पर्श नहीं कर सकती। जैन साधु तथा साध्वियां जब एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते हैं तो उनके बीच में एक दूसरे से पर्याप्त अन्तर होना चाहिये। जहां वह ठहरें वहां एक ही नगर में रहते हुए भी उन दोनों के निवास स्थान एक दूसरे से पर्याप्त दूर होने चाहियें। यद्यपि गुरुओं को साध्वियों को पढ़ाने का अधिकार है किन्तु वह अकेली साध्वी को नहीं पढ़ा सकते। फिर भी यह आवश्यक है कि साध्वियां पहर भर दिन रहते अपने निवास स्थान में पहुंच जावें और पहर भर दिन निकले पीछे वहां से निकलें।

इस प्रकार के कठोर चारित्रिक नियन्त्रणों के कारण जैन साधुओं का बौद्ध साधुओं के समान कभी भी चारित्रिक पतन नहीं हुआ। जैन साधु स्त्री के स्पर्श के अतिरिक्त धन का स्पर्श भी नहीं करते। वह पैदल ही चलते हैं। अतएव उनको मार्ग-व्यय की कभी आवश्यकता नहीं पड़ती। दिगम्बर साधु खड़े होकर हाथ में ही भोजन करते हैं और एक काठ के कमंडलु के अतिरिक्त और

कोई पात्र अपने पास नहीं रखते। इसलिये उनको बर्तन आदि किसी भी का के लिये द्रव्य की आवश्यकता नहीं पड़ती। श्वेताम्बर जैन साधु, स्थानिकवासी जैन साधु तथा तेरापंथी जैन साधु भिक्षा अपने स्थान पर लाकर काठ के पात्रों में भोजन करते है, जिन्हें वह गृहस्थों से मांग लाते हैं। अतएव कामिनी के समान कंचन का स्पर्श वह भी किसी प्रकार नहीं करते।

इस प्रकार कंचन तथा कामिनी दोनों का ही सम्पर्क जैन साधुओ में किसी प्रकार भी सिद्ध नहीं किया जा सकता। जैन साध्वियों का भी पुरुषों अथवा धन से किसी प्रकार का संपर्क सिद्ध नहीं किया जा सकता। भगवान् महावीर स्वामी के समय से लेकर आज तक जैन साधुओं ने इस विषय में सदा ही अपने चरित्र की रक्षा की है। किन्तु साधुओं के इतने उच्च आचरण होते हुए भी जैन धर्म का पतन हुआ है। जो कि निम्न लिखित तथ्यों से प्रकट है।

(१) जैन साधुओं की संख्या आज प्राचीन काल की अपेक्षा नगण्य है:—

(२) जैन धर्म का प्रचार रूप समाप्त हो चुका है और नये-नये व्यक्ति जैन धर्म को ग्रहण नही करते।

(३) जैनी लोग भगवान् महावीर के उपदेशों से क्रमशः दूर हटते जा रहे हैं और—

(४) उनके विभिन्न सम्प्रदायों में इतना अधिक मनोमालिन्य है कि वह एक दूसरे की उपस्थिति को भी सहन नहीं कर सकते।

यहां इन चारों के विषय में एक-एक करके विचार किया जाता है—

जैन धर्म संख्या का ह्रास—भगवान् महावीर के समय जैन मुनियों की संख्या लाखों में थी, जबकि आज दिगम्बर जैन मुनियों की संख्या कठिनता से समस्त भारत में दस-बारह तथा अन्य तीनों सम्प्रदायों के मुनियों की सम्मिलित संख्या लगभग दो सहस्र से अधिक नहीं है। इससे प्रकट है कि जैन धर्म आजकल पतन की ओर जा रहा है।

जैन धर्म के प्रचारक रूप की समाप्ति—जैन धर्म आरंभ से ही एक प्रचारक धर्म था। उसमें सदा से नये-नये व्यक्तियों को प्रविष्ट करके इसके क्षेत्र को व्यापक बनाया जाता रहा है। किन्तु आज वह अपने इस प्रचारक रूप को छोड़ कर प्रगतिहीन बन चुका है, जिससे जैनियों की संख्या प्रतिदिन

घटती ही जाती है। उसका कारण अगले शीर्षक में दिया जावेगा।

जैनी भगवान् महावीर के उपदेश से दूर हटते जा रहे हैं— वास्तव में जैन धर्म के वर्तमान पतन का यही कारण है। भगवान् महावीर के मूल उपदेश में जन्मना जाति का विरोध किया गया है। दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी तथा तेरापंथी किसी के सिद्धान्त भी जन्मना जाति को सिद्ध नहीं कर सकते। किन्तु एक ओर जहां जैनियों के प्रभाव के कारण प्राचीन सनातन धर्म ने अपने हिंसामय यज्ञ-यागों को छोड़ दिया वहां जैनियों पर भी उनका ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने सनातनधर्मियों के जन्मना जाति के सिद्धान्त को दांतों से जकड़ कर पकड़ लिया। इसी कारण नये-नये व्यक्तियों का जैन धर्म में प्रवेश रुक गया और जैन धर्म एक गतिहीन धर्म बन गया।

इसके अतिरिक्त जैन साधुओं की क्रियाएँ इतनी कठोर होती हैं कि उनका पालन करना अत्यन्त कठिन है। अतः न तो नये-नये व्यक्ति प्रायः मुनि-दीक्षा लेते हैं, और न गृहस्थ ही अपने नियमों का पालन ठीक-ठीक करते हैं।

फिर उनके देव, शास्त्र, गुरु की पूजा करने के सिद्धान्त के कारण वह अपने शास्त्रों को इतना अधिक पवित्र मानने लगे कि अन्य मतावलम्बियों से यह आशा करने लगे कि वह भी उनके शास्त्रों को शुद्ध वस्त्र पहिन कर तथा हाथ-पैर धोकर ही छुएं। जैनियों की इस भावना के कारण अजैनों को जैन ग्रन्थों का देना बन्द हो गया, जिससे अजैन लोग यह समझने लगे कि जैनी लोग ग्रन्थों को छिपाते हैं।

हिंसा के अर्थ के विषय में भी जैनी लोग भगवान् महावीर स्वामी की व्याख्या से हटते जा रहे हैं।

साम्प्रदायिक कलह—जैनियों के चारों सम्प्रदाय एक दूसरे से इतना द्वेष करते हैं कि वह किसी विषय में भी एकमत होकर कार्य नहीं कर सकते।

इस प्रकार जैनियों का आजकल बराबर पतन होता जाता है। किन्तु उधर गत शताब्दी से पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान संस्कृत, प्राकृत तथा पाली के अध्ययन की ओर कुछ अधिक आकर्षित हुआ है। इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने यूरोप तथा अमरीका जाकर भी जैनधर्म का प्रचार किया है, इससे जैनधर्म का प्रचार आजकल पाश्चात्य जगत् में कुछ बढ़ता जाता है। किंतु बौद्ध तथा वैदिक धर्म के प्रचार की अपेक्षा वह प्रचार आज भी नगण्य है।

इस ग्रन्थ के पात्र—इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर इस उपन्यास की रचना की गई है। यद्यपि इसके प्रायः पात्र वास्तविक हैं किन्तु महामात्य कल्पक और सेनापति भद्रसेन जैसे अनेक कल्पित व्यक्ति भी हैं। सेनापति जम्बूकुमार का नाम केवल जैन शास्त्रों में ही आता है। संभवतः अंग की विजय के अवसर पर जम्बूकुमार बहुत छोटा था, फिर भी हमने उसी के हाथों अंग का पतन दिखलाया है।

इस पृष्ठभूमि में जैन ग्रन्थों, बौद्ध ग्रन्थों तथा हिन्दू पुराणों के आधार पर राजा बिम्बसार के चरित्र को उपस्थित किया गया है। यद्यपि राजा बिम्बसार के घर में अनेक रानियां थीं, किन्तु वह विषयी नहीं था। उसके प्रायः विवाह राजनीतिक विवाह थे और उनके द्वारा उसने अपने परराष्ट्र-सम्बन्ध बढ़ाए थे। ऐसे व्यक्ति के चरित्र में जो कुछ लेखकों ने गुप्त व्यभिचार की घटनाएं मिला दी हैं, वह उचित नहीं है।

बिम्बसार के जीवन की अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं का सिलसिला ठीक-ठीक बिठलाने के लिये हमने इस ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि में शिशुनाग वंश का पूरा इतिहास दे दिया है। किन्तु यह अभी तक भी पता नहीं चला कि इस वंश का नाम शिशुनाग वंश क्यों पड़ा। संभवतः राजा भट्टिय उपश्रेणिक का ही एक नाम शिशुनाग भी था।

अंत में हमको अपने पाठकों से यह निवेदन करना है कि हमने अभी तक इतिहास, राजनीति, विज्ञान तथा दर्शन शास्त्र आदि के सम्बन्ध में ही ग्रन्थों की रचना की है, उपन्यास हमारे लिये सर्वथा नवीन क्षेत्र है। यद्यपि इससे पूर्व हमारी कुछ कहानियां प्रकाशित हो चुकी हैं, किन्तु उपन्यास हमारा अभी तक कोई भी प्रकाशित नहीं हुआ। संभव है कि इस उपन्यास में पाठकों को अन्य उपन्यासों के जैसा लालित्य न मिले। तो भी इस ग्रन्थ में जो हमने 'सोलह महाजन पद काल' के इतिहास को ठीक-ठीक उपस्थित करने का यत्न किया है, उससे पाठकों के मनोरंजन के अतिरिक्त उनकी ज्ञानवृद्धि भी होगी। आशा है पाठक हमारे अन्य कई दर्जन बृहदाकार ग्रन्थों के समान हमारे इस ग्रन्थ को भी प्रेमपूर्वक अपनावेंगे।

चन्द्रशेखर शास्त्री

४५६६, बाजार पहाड़गंज,
नई दिल्ली—१
४ अप्रैल १६५३ ई०

१

अश्व भेंट

लगभग डेढ़ पहर दिन चढ़ा होगा। गिरिव्रज का सभा-भवन आगत व्यक्तियों से ठसाठस भरा हुआ था। सभा में एक ओर बन्दिजन राजा का स्तुतिपाठ कर रहे थे तो दूसरी ओर व्यवहारिक जनता के व्यवहारों (मुकदमों) को सुन-सुन कर राजा भट्टिय उपश्रेणिक के सम्मुख उपस्थित करता जाता था। सभा-भवन में अनेक आसन बिछे थे, जिन पर राज्य के विविध पदाधिकारी अपने-अपने पद के अनुसार बैठे हुए थे। एक ओर विदेशी राजदूत भी बैठे हुए मगध की परराष्ट्र-नीति की एक घोषणा पर विचार कर रहे थे। बीच में एक सात हाथ का सोने का सिंहासन रखा हुआ था, जिस पर बढ़िया गद्दी-तकियों पर महाराज भट्टिय उपश्रेणिक बैठे हुए थे। उनकी बगल में उनसे एक नीचे सिंहासन पर मगध के प्रधान अमात्य ब्राह्मण कल्पक बैठे हुए थे कि सेनापति भद्रसेन ने कहा—"महाराज! हमारी कोशल तथा अवन्ति की सीमा पर उत्पात बढ़ते जाते हैं। कोशल के महाराज प्रसेनजित् तथा अवन्ति के महाराज चण्डप्रद्योत दोनों ही साम्राज्य कामना वाले हैं। सीमा पर सेनाएं कम हैं, यदि वहां अधिक सेनाएं भेज कर सीमा का प्रबन्ध न किया गया तो न जाने भविष्य में हमको अचानक किस देश की सेना से मगध की भूमि पर युद्ध करना पड़े।"

कल्पक—महाराज! सेनापति भद्रसेन का कहना यथार्थ है। मेरे चरों ने भी आकर मुझे दोनों सीमाओं पर विरोधी पक्ष की सेनाओं की टुकड़ियों के बढ़ने का समाचार दिया है। वैसे अभी तक हमारी कोशल तथा अवन्ति दोनों के साथ ही मित्रता की संधि है। किन्तु आक्रमण करने वाली सेनाएं संगठित सेनाएं न होकर सेना की टुकड़ियां हैं, जिनके विषय में हारने पर तो यह सुगमता से कहा जा सकता है कि सैनिक टुकड़ियां अपनी भूमि को न पहचानने के कारण

भूल से मगध सीमा में प्रवेश कर गई, किंतु यदि यह सैनिक टुकड़ियां मगध सैनिकों को हटा कर हमारी सीमा में दूर तक बढ़ आई तो उनके आक्रमक रूप को स्वीकार करने में भी विलम्ब न होगा।"

राजा—तब तो इन दोनों ही सीमाओं पर अधिक सेनाएं भेज देनी चाहियें और अवन्ति तथा कोशल के शासकों के पास इस विषय में विरोध पत्र भी भेज देना चाहिये।

कल्पक—ऐसा ही किया जावेगा महाराज।

कल्पक के अपना कथन समाप्त करते ही दौवारिक ने सभा में प्रवेश करके महाराज को प्रणाम करके उनसे निवेदन किया—

दौवारिक—महाराज की जय हो।

राजा—क्या है दौवारिक ?

दौवारिक—महाराज ! चन्द्रपुर के राजा सोमशर्मा का सामन्त विचित्र-वर्मा महाराज की सेवा में उपस्थित होना चाहता है। वह अपने साथ एक सर्वलक्षण सम्पन्न अश्व भी महाराज को भेंट करने लाया है।

राजा—उसे आदरपूर्वक अन्दर ले आओ।

राजा के यह कहते ही दौवारिक महाराज को प्रणाम करके बाहिर चला गया और थोड़ी देर में ही विचित्रवर्मा के साथ वापिस आया। विचित्र-वर्मा एक तीस वर्ष का युवक था। उसका शरीर लम्बा, सुडौल तथा भारी था। उसका चेहरा भरा हुआ और मूंछे चढ़ी हुई थी। रौब उसके चेहरे से फटा पड़ता था। उसके वस्त्र सामन्तों जैसे थे। उसके बाएं कन्धे पर एक धनुष पड़ा हुआ था और पीठ पर तरकश था, जिससे पता चलता था कि नागरिक जीवन की अपेक्षा यह वन्य जीवन ही अधिक व्यतीत करता था। उसने आते ही दोनों हाथ जोड़ कर महाराज को अभिवादन किया।

महाराज—कहो विचित्रवर्मा कुशल से तो हो ?

अश्व भेंट

विचित्रवर्मा—जिस पर महाराज की कृपा हो उसकी कुशलता में कौन बाधा दे सकता है अन्नदाता !

महाराज—कहो आज कैसे आना हुआ ?

विचित्रवर्मा—इन्हीं दिनों महाराज सोमशर्मा को एक सर्वलक्षण-सम्पन्न उत्तम अश्वरत्न की प्राप्ति हुई। उन्होंने मन में सोचा कि ऐसे उत्तम अश्व का स्थान केवल गिरिव्रज की राजकीय अश्वशाला ही है। अस्तु, मैं उसको उनकी ओर से लेकर महाराज की सेवा में उपस्थित हुआ हूँ।

महाराज—अश्व कहां है सामन्त !

विचित्रवर्मा—वह बाहिर खड़ा हुआ है महाराज !

महाराज—अच्छा, आप अश्व को लेकर कल प्रातःकाल नगर के बाहिर के मैदान में मिलें। उसकी परीक्षा उसी समय कर ली जावेगी।

"जैसी महाराज की आज्ञा" कहकर विचित्रवर्मा महाराज को पुनः अभिवादन करके चला गया।

इसी समय विश्राम का घंटा बजने पर महाराज सभाभवन से उठ कर राजमहल में चले गये।

२

अश्व-परीक्षा

प्रातःकाल का समय है। शीतल, मन्द पवन के झोंके चित्त को प्रसन्न कर रहे हैं। सूर्य अभी कठिनता से डेढ़ हाथ ऊपर चढ़ा है। गौएँ तथा भैंसें अपने-अपने घरों से चरने के लिए जंगल में जा चुकी हैं। किसान भी अपने-अपने हल-बैल लेकर खेतों में जा चुके हैं। गिरिव्रज नगर के उत्तर की ओर के मैदान में इस समय विशेष चहल-पहल दिखलाई दे रही है। यहां विशेष रूप से छिड़काव कराया गया है। क्रमशः मैदान में रक्षक सेनाएं आनी आरम्भ हो गईं। इन सेनाओं के सैनिकों को रक्षक के रूप में मैदान के चारों ओर नियत कर दिया गया। विचित्रवर्मा अपने विचित्र अश्व तथा कुछ रक्षकों सहित पहिले से ही मैदान में उपस्थित था। इतने में गिरिव्रज के उत्तरी द्वार पर तुरही का शब्द हुआ। तुरही के शब्द के साथ अन्य बाजे भी बजते हुए दिखलाई दिये। बाजों के पश्चात् महाराज भट्टिय उपश्रेणिक का घुड़सवार अंग रक्षक दल था। उनके बीच में महाराज उपश्रेणिक महामात्य कल्पक तथा अन्य पदाधिकारियों से घिरे हुए एक रथ में बैठे हुए जुलूस के रूप में चले आ रहे थे। इस जुलूस के मैदान में आने पर राजा के अतिरिक्त अन्य सभी अधिकारी अपने-अपने रथों से उतर पड़े। महाराज के सेनाओं का अभिवादन स्वीकार कर चुकने पर विचित्र-वर्मा ने आगे बढ़ कर उनसे निवेदन किया—

"महाराज! यही वह अश्व है, जिसके विषय में मैंने महाराज से कल निवेदन किया था।"

महाराज—अच्छा, यह अश्व है! अश्व तो वास्तव में बहुत सुन्दर है। कल्पक जी, हमारे अश्वाध्यक्ष को तो आपने इस अवसर पर उपस्थित रहने की आज्ञा दे ही रखी होगी!

तब तक अश्वाध्यक्ष ने स्वयं आगे बढ़कर महाराज को अभिवादन करके कहा—

"महाराज ! मैं सेवा में उपस्थित हूँ। आपके पधारने के पूर्व ही मैं इस अश्व की अश्वविद्याविशारदों द्वारा परीक्षा करा चुका हूँ। अश्व वास्तव में सर्वगुणसम्पन्न है। लक्षणों की दृष्टि से इसमें कोई त्रुटि नहीं है। केवल उसकी चाल की परीक्षा करना शेष है।

महाराज—अच्छा, चाल की परीक्षा भी कर ली जावे।

महाराज के यह कहने पर अश्वाध्यक्ष ने उस घोड़े की लगाम पकड़ कर उसे महाराज के सामने लाकर कहा—

"यदि महाराज उचित समझें तो इस पर स्वयं सवार हों।"

"नहीं, प्रथम इसकी चाल को तुम देखो, बाद में हम देखेंगे।"

महाराज के यह कहने पर अश्वाध्यक्ष उछल कर उस घोड़े की पीठ पर बैठ गया। उसने उसको उस मैदान में घुमाते हुए कदम, दुलकी तथा सरपट तीनों चालों से चला कर देखा। लगभग दो घड़ी तक उसको घुमाकर तथा फिर महाराज के सम्मुख लाकर तथा घोड़े से उतर कर अश्वाध्यक्ष ने कहा—

"महाराज, यह घोड़ा तो चाल में भी पास हो गया। क्या आप इस पर इसी समय सवारी करना पसंद करेंगे ?"

"अवश्य"

यह कहकर महाराज स्वयं उस घोड़े पर बैठ गए। उन्होंने भी उसको उस मैदान में सभी प्रकार से खूब चलाया। महाराज घोड़े की चाल से बहुत प्रसन्न हुए और विचित्रवर्मा को अपने पास बुलाकर बोले—

"सामन्त ! हम तुम्हारे महाराज की इस अश्व-भेंट से अत्यंत प्रसन्न होकर उसको स्वीकार करते हैं। तुम कोषाध्यक्ष से इसका मूल्य ले लो।"

विचित्रवर्मा—नहीं महाराज ! यह महाराज को उनकी ओर से भेंट है। अस्तु, मैं इसके मूल्य के बदले में केवल महाराज का प्रसाद ही चाहता हूँ।

महाराज—अच्छा सामंत, हम इस भेंट को स्वीकार करते हैं। कल्पक, सामंत को कल राजसभा में शिरोपाद-वस्त्र देकर सम्मानित किया जावे।

कल्पक—जैसी महाराज की आज्ञा।

महाराज—महामन्त्री जी, हमारा विचार इस अश्व पर बैठकर मृगया के लिये जाने का है। हमारी अंगरक्षक सेना मृगया में हमारे साथ रहेगी। आप सब नगर में जावें।

"बहुत अच्छा, महाराज!"

इसके पश्चात् महाराज भट्टिय उपश्रेणिक अपनी अंगरक्षक सेना को लेकर मृगया के लिये वन को चले और शेष राज-पुरुष नगर में लौट आये। देखते ही देखते वह सारा मैदान खाली हो गया।

3

दुगम वन में

महाराज उस अश्व पर बैठकर जंगल के मार्ग में अपनी अंगरक्षक सेना के साथ चले तो उनका मन बहुत प्रसन्न था। बहुत देर तक वह अंगरक्षक सेना के साथ चलते रहे। क्रमशः गहन वन आ गया। इसी समय उनको एक मृग दिखलाई दिया। राजा ने जो अश्व को मृग के पीछे दौड़ाया तो वह चक्कर काट कर वहां से भाग गया। राजा ने भी अपने अश्व को उसके पीछे इस प्रकार डाला कि मृग उनकी दृष्टि से ओझल न हो सका। अंगरक्षकों ने राजा का साथ करने का बहुत यत्न किया, किन्तु वह उस अश्व को किसी प्रकार भी न पा सके। अस्तु, वह राजा को न पाकर उनको ढूंढते हुए वन में भटकने लगे।

राजा ने जो अश्व को मृग के पीछे डाला तो उसने दो तीन कोस तक मृग का पीछा करने के बाद उनको मृग के पास पहुंचा दिया। अब तो राजा ने एक ही बाण से मृग को मार डाला। किन्तु मृग को मारकर ज्योंही उन्होंने अश्व को रोकने के लिये उसकी लगाम को खेंचा तो अश्व ने लगाम को मानने से इंकार कर दिया। राजा ने अपनी पूरी शक्ति लगाकर लगाम को खेंचना आरम्भ किया, किन्तु अश्व ने उनके शासन को मानने से साफ इंकार कर दिया। लगाम के वेग से अश्व का मुख लहू-लुहान हो गया, किन्तु उस की सरपट चाल में लेशमात्र भी अन्तर न आया। अश्व अपनी एक उसी चाल से सरपट भागते हुए राजा को कई कोस तक दूर ले जाकर ऐसे जंगल में ले गया जहां किसी प्रकार का भी मार्ग नहीं था और सारी भूमि कंटकाकीर्ण तथा ऊबड़-खाबड़ थी। अश्व वहां से आगे बढ़ने का मार्ग न पाकर वहीं पर इस प्रकार चक्कर काटने लगा कि वह प्रथम दस-बीस कदम आगे बढ़ जाता था और कभी भारी

झटके के साथ एकदम दस-बीस कदम पीछे को दूर हट जाता था। उसने इस प्रकार झटकों से राजा को बेहद परेशान कर दिया। उनका बदन थकावट के कारण एकदम चूरचूर हो गया और उनमें घोड़े की रास संभालने की शक्ति भी न रही। अन्त में उसने एक कांटों से भरे हुए भारी तथा दुर्गम गड्ढे के किनारे पर जाकर महाराज को ऐसा भारी झटका दिया कि वह उसकी पीठ पर से लुढ़क कर उसी गड्ढे में गिर पड़े। घोड़ा उनको गिरा कर जंगल में अज्ञात दिशा की ओर भाग गया।

गड्ढे में गिरते ही महाराज का सारा शरीर कांटों से बिध गया। गिरने के कारण उनको ऐसी भारी चोट लगी कि वह गिरते ही बेहोश हो गए।

महाराज बहुत देर तक उस गड्ढे में अचेत पड़े रहे। जिस समय उनको कुछ होश हुआ तो उनके शरीर में भारी वेदना हो रही थी। कांटों के कारण वह करवट तक लेने में असमर्थ थे। उनके न केवल वस्त्र ही फट गए थे वरन् शरीर भी लहू-लुहान हो गया था। उस समय वह असहाय के समान मन ही मन परमात्मा का स्मरण कर उससे यह प्रार्थना कर रहे थे कि उनका किसी प्रकार इस विपत्ति से उद्धार हो।

तभी अचानक एक जंगली उधर आया। वस्त्र के नाम उसके शरीर पर कटिवस्त्र के अतिरिक्त और कुछ भी न था। किन्तु उसके सिर के बाल कुछ विशेष शैली से बंधे हुए थे और उनके ऊपर कुछ पक्षियों के पंख लगे हुए थे। उसके गले में शंख तथा कौड़ियों के हार पड़े हुए थे तथा भुजाओं में सोने के बाजूबन्द थे, जो उसके अञ्जन के समान काले शरीर पर एक विचित्र आभा डाल रहे थे। राजा को उस गड्ढे में पड़ा देखकर उसने कहा—

"अरे! महाराज यहां और ऐसी असहाय अवस्था में!"

यह कहकर वह तुरन्त उस गड्ढे में उतर गया। यद्यपि वह गड्ढा कांटों से पूर्णतया भरा हुआ था, किन्तु उसके नंगे पैर इतने कठोर थे कि कांटे उनके स्पर्श से ही टूट जाते थे। वह उस गड्ढे में इस प्रकार उतर गया, जिस प्रकार कोई मैदान के गड्ढे में उतर जाता है। गड्ढे में उतर कर उसने उन सब कांटों

को हाथ से ही मसल डाला, जो राजा के वस्त्रों में चुभ गए थे। राजा के वस्त्रों के सब कांटों को निकाल कर उसने उनको इस प्रकार ऊपर उठा लिया, जिस प्रकार कोई बालक खिलौने को उठा कर अपने कन्धे पर रख लेता है। उसने राजा को उठा कर अपने कन्धे पर बिठलाया और गड्ढे से निकाल कर बाहिर खड़ा किया। बाहिर आने पर राजा बोले—

"भाई तुम कौन हो? तुमने तो इस गाढ़े समय में आकर मेरे प्राणों को बचा लिया।"

"महाराज! मैं भीलों की पल्ली का स्वामी उनका सरदार हूँ और आपकी एक तुच्छ प्रजा हूँ। मेरा नाम यमदण्ड है। यदि यह तुच्छ शरीर आपकी कुछ सेवा कर सका तो इसे मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ। इस समय दिन छिप रहा है और गिरिव्रज यहा से लगभग दो योजन है। अतएव आप अपनी राजधानी में आज किसी प्रकार भी नहीं पहुँच सकते। अस्तु, यदि आपकी अनुमति हो तो मै आज रात आपके आतिथ्य का प्रबन्ध कर दूं।"

"फिर तो ठहरने के अतिरिक्त और कोई उपाय भी नहीं है।"

"तो महाराज, मेरे कन्धे पर बैठ जावें। इस कंटकाकीर्ण मार्ग में आप पैदल नहीं चल सकेंगे।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा" कहकर महाराज उस भील सरदार यमदण्ड के कन्धे पर बैठकर उसके निवास स्थान की ओर चले।

४

भील कन्या से प्रणय

भील सरदार महाराज को लिये चला जाता था और मन में कुछ सोचता सा जाता था। कुछ दूर चलने पर उसने महाराज से कहा—

"महाराज ! हम अपावन वस्तुओं को खानेवाले आपका आतिथ्य किस प्रकार करेंगे यह समझ में नहीं आ रहा। मेरे पास एक क्षत्रिय बालिका है, जो हम लोगों को लूट में मिली थी। मैंने तथा मेरी रानी विद्युन्मती ने उसका अपनी पुत्री के समान पालन किया है। उसका नाम तिलकवती है। वह महाराज की सब प्रकार से सेवा करेगी और महाराज को भोजन बनाकर भी खिला देगी। यदि महाराज की अनुमति हो तो मैं आपको उसी के महल में पहुंचा दूं।

"संभवतः यही अधिक उचित होगा।"

महाराज के यह कहने पर भील सरदार के मन में और भी उत्साह हो आया। अब वह लम्बी-लम्बी डग भरकर चलने लगा। महाराज ने दूर से भीलों की एक छोटी सी बस्ती-पल्ली-को देखा, जिसमें छोटे-छोटे बच्चे दूर से ही खेलते दिखलाई दे रहे थे। पल्ली में भीलों के लगभग पचास घर थे। उनके ठीक बीचों-बीच दो-तीन पक्के मकान थे। सरदार ने महाराज से कहा—

"महाराज ! वह जो पक्के मकान दिखलाई दे रहे हैं वह अपने ही हैं।"

"अच्छा हम निवासस्थान पर आ पहुंचे ! अब तुम मुझको नीचे उतार दो। यहां से हम तुम्हारे घर तक पैदल ही चलेंगे।"

महाराज के यह कहने पर भील सरदार ने उनको अपने कन्धे से उतार दिया। सरदार को एक अपरिचित के साथ आते देखकर भील बालक तो प्रथम ही एकत्रित हो गए थे, अब कुछ युवक भी आ गए। उनको देखकर सरदार ने अपनी भाषा में जोर से कुछ कह कर डाँटने जैसी मुद्रा प्रकट की कि सभी

युवक तथा बालक वहां से चले गए। सरदार राजा को लेकर एक मकान के अन्दर 'तिलकवती, तिलकवती' आवाज लगाता हुआ घुस गया। तिलकवती उसका शब्द सुनते ही आगे बढ़कर आई। वह एक सोलह वर्ष की सुन्दरी बाला थी। उसका रंग चम्पे के पुष्प के समान हल्का पीलापन लिये हुए गौर था। उसका भरा हुआ मुख, गोल चेहरा तथा चंचल सुन्दर आंखें उसके उच्चवंशीय होने का प्रमाण दे रही थीं। सौन्दर्य तथा यौवन उसके सारे बदन से फूटे पड़ते थे। राजा उसके रूप की छटा को देखकर चौंधिया से गये। सरदार ने उसको देखकर कहा—

"तिलके ! यह अपने महाराजा भट्रिय उपश्रेणिक है। आज यह तेरे अतिथि हैं। इनकी सेवा मन लगा कर करना।"

"अच्छा पिता जी"

यह कह कर तिलकवती फिर अन्दर चली गई और एक लोटे में जल भर लाते हुए बोली—

"महाराज ! यह जल है। आप प्रथम मुंह-हाथ धोकर मार्ग के श्रम को दूर करें। भोजन भी तैयार ही है। मैं अभी महाराज के भोजन का प्रबन्ध करती हूं।"

सरदार महाराज को तिलकवती के महल में एक बिछे हुए बिस्तर पर बिठला कर चला गया। उसके चले जाने के बाद राजा ने तिलकवती के दिये हुए जल से हाथ-पैर धाकर मुंह धोया। इसके पश्चात् वे चारपाई पर लेटकर विश्राम करने लगे। उनका शरीर तो बुरी तरह थका हुआ था ही, चारपाई पर लेटने के कुछ क्षणों के बाद ही उनको निद्रा आ गई। तिलकवती ने जो उनको सोते हुए देखा तो भोजन में अन्य भी अनेक प्रकार की वस्तुएँ बनाने लगी। लगभग डेढ़ घंटे में राजा की नींद खुली तो उनके शरीर की थकावट बहुत कुछ दूर हो चुकी थी। तिलकवती उनको जगा हुआ देखकर उनके पास आकर बोली—

"महाराज ! भोजन तैयार है। आप पटरे पर बैठकर चौके में भोजन करेंगे या यहीं ले आऊँ ?"

"नहीं सुन्दरी ! मैं चौके में ही पटरे पर बैठकर भोजन करूँगा। अब मैं बहुत कुछ ठीक हूँ।"

"तो महाराज पधारें, भोजन का सब सामान ठीक है।"

"बहुत अच्छा" कहकर महाराज चारपाई से उठ खड़े हुए और तिलकवती के साथ चौके में जाकर पटरे पर बैठ गए। तिलकवती ने उत्तम पकवानों से भरा हुआ थाल उनके सामने लाकर रख दिया और स्वयं हाथ में पंखा लेकर उनके सामने बैठ गई। राजा भोजन करते जाते थे और उसके रूपसुधारस का पान भी करते जाते थे। भोजन कर चुकने पर तिलकवती ने उनके हाथ धुला कर उनको कुल्ला कराया और खाने को इलायची दी। इसके पश्चात् महाराज फिर चारपाई पर आकर लेट गए और तिलकवती स्वयं भोजन करने लगी।

कहने को तो राजा लेट गए, किन्तु उनको रह-रहकर तिलकवती का ध्यान ही आ रहा था। उसका गोल-गोल तथा सुन्दर मुख उनके मन में बस गया था। उसके चम्पक के समान गौर वर्ण मुख को वारवार देखते रहने की उनकी इच्छा बराबर बढ़ती जाती थी। अन्त में वह इस प्रकार विचार करने लगे—

"यह अज्ञातकुलशीलवाली कन्या निश्चय मे किसी उच्च वंश में उत्पन्न हुई है। इसका सारा शरीर इसके उच्चवंशीय होने का प्रमाण दे रहा है। इसकी आयु भी विवाह के योग्य हो चुकी है। यद्यपि इसने अपनी प्रथम दृष्टि में ही मेरे हृदय पर अधिकार कर लिया है, किन्तु मैं इस सूने घर में इस कन्या से प्रणय-सम्भाषण करके मर्यादा का अतिक्रमण नहीं करूँगा। किन्तु क्या सरदार से उसको मांगना उचित होगा ? अनुचित तो नहीं जान पड़ता। उसको तो इसका विवाह कहीं करना ही है। अच्छा, सरदार आवे तो उससे उसके सम्बन्ध में बातचीत की जावे।"

राजा इस प्रकार अपने मन ही मन ऊहापोह कर रहे थे कि सरदार ने ड्योढ़ी में प्रवेश करके तिलकवती को आवाज दी। तिलकवती इस समय तक भोजन कर चुकी थी। वह उसका शब्द सुन कर बोली—

"आइये पिताजी, कहिये क्या आज्ञा है।"

"क्या तेरे अतिथि सो गए, बेटी ?"

इस पर राजा ने अपने कमरे के अंदर से उत्तर दिया—

"नहीं सरदार ! मैं अभी नहीं सोया । तुम यहां आओ !"

सरदार महाराज का शब्द सुनकर कमरे में चला गया और उनकी चारपाई पर पैताने बैठ कर उनके चरण दबाने लगा । तिलकवती अपने कमरे में चली गई । सरदार के बैठ जाने पर राजा बोले—

"सरदार ! तुमने मुझ पर कितना उपकार किया है इस बात को सोचकर मैं अत्यन्त संकोच में पड़ जाता हूं ।"

"नहीं महाराज ! इसमें संकोच की क्या बात है । हमारा धर्म है कि हम आपकी सब प्रकार से सेवा करें । अब यदि कोई और सेवा हो तो वह भी बतलावें । इसीलिये मैं सोने से पूर्व आपके पास उपस्थित हुआ हूँ ।"

"क्यों नहीं सरदार, सेवा तुमसे नहीं लेंगे तो और किससे लेंगे । परन्तु तिलकवती भोजन बहुत अच्छा बनाती है । क्या तुमने अभी तक उसके लिय कोई वर ठीक किया ?"

"नहीं महाराज ! वर तो कई मिलते रहे, किन्तु अपनी एक प्रतिज्ञा के कारण मैं उसका अभी तक भी विवाह नहीं कर सका ।"

"आपकी वह प्रतिज्ञा क्या है सरदार ?"

"महाराज ! मैंने प्रतिज्ञा की है कि तिलकवती का विवाह किसी सामान्य व्यक्ति के साथ न कर किसी ऐसे राजा के साथ करूँगा, जो उसकी सन्तान को राज्य देने की प्रतिज्ञा करे ।"

"तिलकवती के रूप को देखते हुए आपकी प्रतिज्ञा अनुचित तो दिखलाई नहीं देती । क्या तुम उसे मगध की महारानी बनाने के प्रश्न पर विचार कर सकते हो ?"

"यह तो महाराज मेरा तथा तिलकवती दोनों का सौभाग्य होता । किन्तु महाराज आपके अनेक तेजस्वी पुत्र हैं । इतने पुत्रों के रहते हुए आप तिलकवती के भावी पुत्र को मगध का युवराज बनाने की प्रतिज्ञा किस प्रकार कर सकते हैं ?"

"किस प्रकार कर सकूंगा, यह तो तुम मुझ पर छोड़ दो सरदार ! तुम्हारे

लिये तो इतना ही पर्याप्त है कि मैं उसके भावी पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बना कर मगध का राज्य देने की प्रतिज्ञा करता हूं।"

"तब तो महाराज मेरी आपत्ति के लिये कोई स्थान ही नहीं रहता। आप मुझे अनुमति दें कि मैं तिलकवती का हाथ इसी क्षण आपके हाथ में दे दूं।"

"मैं भी यही चाहता हूं सरदार।"

यह सुनकर सरदार ने 'तिलकवती' 'तिलकवती' कहकर आवाज दी। तिलकवती के आने पर सरदार ने उससे कहा—

'बेटी, ये मगध नरेश इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि वे तुझसे विवाह करके तेरे भावी पुत्र को ही अपना उत्तराधिकारी मगध-सम्राट् बनावेंगे। अस्तु, अब मेरी प्रतिज्ञा पूरी हो गई। ला, मैं तेरा हाथ इनके हाथ में सौंप दूं।"

यह कहकर सरदार तिलकवती का हाथ पकड़ कर महाराज भट्टिय उपश्रेणिक की ओर को चला। उन दोनों को अपनी ओर आते देखकर महाराज उपश्रेणिक भी चारपाई से उतर कर नीचे खड़े हो गए। तब सरदार ने तिलकवती का हाथ उनके हाथ में देते हुए कहा—

"महाराज, मैं भीलों का सरदार यमदण्ड अपनी इस पालिता पुत्री तिलकवती को आपको पत्नी-रूप में दान करता हूँ। आप इसके साथ धर्मपूर्वक गृहस्थ का सुख भोगते हुए राज्य करें और उसके भावी पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनावें।"

इस पर महाराज भट्टिय उपश्रेणिक ने तिलकवती का हाथ अपने हाथ में लेकर उत्तर दिया—

"मैं मगध-सम्राट् भट्टिय उपश्रेणिक आपकी इस पुत्री तिलकवती को पत्नी-रूप में ग्रहण करता हूँ और इस बात की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसके गर्भ से होनेवाली सन्तान को ही अपना उत्तराधिकारी बनाकर मगध का राज्य दूँगा।"

इस पर सरदार ने तिलकवती को इन शब्दों में आशीर्वाद दिया—

"बेटी, तुम सुखी रहो और सदा अपने पति को सुख देती रहो।"

यह कहकर सरदार बाहिर चला गया और तिलकवती राजा के चरणों में गिर पड़ी। उन्होंने उसे हाथों से उठाकर छाती से लगा लिया।

५

युवराज की खोज

महाराज के मृग के पीछे घोड़ा दौड़ाने पर यद्यपि उनके अंगरक्षकों ने भी उनके पीछे अपने अपने घोड़े दौड़ाए, किन्तु वे महाराज का किसी प्रकार भी पीछा न कर सके और हताश होकर लौट आए। महाराज के दोपहर तक भी न लौटने पर उन्होंने वन में सब ओर फैलकर उनको खोजना आरम्भ किया। वन के आरम्भ में महाराज का पता न लगने पर उन्होंने गहन वन में घुस कर महाराज को ढूँढना आरम्भ किया। रात्रि का अन्त होने पर वे भीलों की पल्ली में उस सरदार के मकान पर पहुँच ही गए, जहां महाराज ने तिलकवती का पाणिग्रहण किया था। महाराज की अंगरक्षक सेना के आ जाने से सारी भील बस्ती में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई। उनके आजाने पर भील सरदार यमदंड ने तिलकवती को महाराज के साथ बिदा कर दिया। यौतुक में उसने अपनी सामर्थ्य भर तिलकवती को बहुत कुछ दिया। तिलकवती की डोली के बाहिर आने पर महाराज की अंगरक्षक सेना ने अपने महाराज तथा नई महारानी का सैनिक ढंग से अभिवादन किया। महाराज महारानी तिलकवती को बड़े आदर-सम्मान के साथ गिरिव्रज ले आए।

महारानी तिलकवती ने इस घटना के ठीक एक वर्ष पश्चात् एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम चिलाती रखा गया। जब तक तिलकवती के पुत्र नहीं हुआ था महाराज निश्चिंत थे, किन्तु उसके पुत्र उत्पन्न हो जाने पर उनको अपने उत्तराधिकार के सम्बन्ध में विशेष चिन्ता उत्पन्न हो गई। उनकी चिन्ता का विशेष कारण यह था कि उनके पाँच सौ पुत्रों में सभी एक से एक पराक्रमी थे। उनके पुत्रों में एक ज्येष्ठ पुत्र श्रेणिक बिम्बसार तो इतना तेजस्वी था कि उसके सम्मुख सामान्य व्यक्ति बात तक नहीं कर सकते थे। वह उनकी पटरानी इन्द्राणी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। राजकुमार श्रेणिक बाल्यावस्था में ही अपने पास

पांच सौ सैनिकों की एक अंगरक्षक सेना भी रखते थे, जिनका वेतन वह अपनी जेब से दिया करते थे। राजकुमार चिलाती की आयु बढ़ने के साथ-साथ महाराज की चिन्ता भी अधिकाधिक बढ़ती जाती थी, क्योंकि अपने सभी पुत्रों के विरोध का सामना करने का उनको साहस नहीं था। अन्त में एक दिन उन्होंने महामात्य कल्पक को बुलाकर उससे कहा—

"कल्पक! मुझे अपने उत्तराधिकार के सम्बन्ध में बड़ी भारी चिन्ता है। उसको दूर करने का कुछ तो उपाय निकालो।"

"उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कैसी चिन्ता! क्या आप श्रेणिक बिम्बसार को अपने उत्तराधिकार के योग्य नहीं मानते। वह आपकी पटरानी इन्द्राणी देवी के गर्भ से उत्पन्न हुआ है।"

"श्रेणिक की योग्यता में तो कोई सन्देह नहीं। किन्तु मैं वचनबद्ध होने के कारण उसे राज्य पद नहीं दे सकता।"

"कैसा वचन महाराज! मुझे थोड़ा समझाकर कहें तो सम्भवतः मैं कुछ सहायता कर सकूं।"

"बात यह है कि तिलकवती के साथ विवाह करते समय मैंने यह प्रतिज्ञा की थी कि उसके गर्भ से उत्पन्न होने वाला बालक ही मेरे बाद राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा। प्रतिज्ञा करते समय मैं समझता था कि मैं अब वृद्ध हो गया हूँ, शायद तिलकवती के सन्तान ही न हो और यदि उसके सन्तान हुई भी तो सम्भव है कि वह कन्या ही हो, किन्तु उसके तो विवाह के एक वर्ष बाद ही पुत्र उत्पन्न हो गया। अब मैं विषयों से उपरत हो चुका हूँ। मेरी इच्छा है कि तिलकवती के पुत्र को किसी प्रकार राज्यपद देकर स्वयं वन में जाकर अपना शेष जीवन तपस्या करने में व्यतीत करूँ। अतएव अब तुम यह बतलाओ कि मेरी प्रतिज्ञा की पूर्ति किस प्रकार हो सकती है; क्योंकि उसको राज्य दे देने से मेरे सभी पुत्र विद्रोही बन सकते हैं। तुम कोई ऐसी युक्ति निकालो कि बिना झगड़े-झंझट के मैं चिलाती को मगध का राज्य दे सकूं।"

कल्पक—मेरे विचार में तो महाराज, आपको सब पुत्रों की अपेक्षा अपने केवल एक पुत्र का ही विरोध सहन करना पड़ेगा। यदि आपको किसी प्रकार

यह पता लग जावे कि आपका वास्तविक उत्तराधिकारी कौन पुत्र होगा तो आप उसी पुत्र को राजद्रोह का आरोप लगा कर देश निर्वासित कर दें और उसके चले जाने के बाद राज्य चिलाती को देकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करें। आपका उत्तरदायित्व पूर्ण होने पर यदि चिलाती योग्य हुआ तब तो वह मगध सम्राट् बना रहेगा अन्यथा उसके हाथ से राज्य चले जाने का दोष आपके सिर न आवेगा।

राजा—किन्तु यह कैसे पता लगे कि राज्य का उत्तराधिकारी वास्तव में कौन बनेगा ?

कल्पक—वह तो मैं पता लगा चुका हूँ। अभी-अभी नगर में एक उत्तम निमित्तज्ञानी आए थे। मैंने उनसे पूछा था कि राजा के पांच सौ एक पुत्रों में से राज्य का उत्तराधिकारी कौन होगा ?

राजा—तो उन्होंने क्या उत्तर दिया ?

कल्पक—उन्होंने तीन परीक्षाएँ बतलाकर यह कहा कि जो राजकुमार इन सभी परीक्षाओं में उत्तीर्ण होगा वही भावी मगध-नरेश होगा।

राजा—वह तीन परीक्षाएँ कौन २ सी हैं ?

कल्पक—सब राजकुमारों को एक साथ भोजनशाला में बिठला कर उनको खीर का भोजन परोस दिया जावे। बाद में एक शिकारी कुत्ते को उनके ऊपर छोड़ दिया जावे। जो राजकुमार थाली बिना छोड़े पेट भर भोजन करके उठे वह आपके राज्य का उत्तराधिकारी होगा। इसके पश्चात् प्रत्येक राजकुमार को मिट्टी का एक-एक कोरा घड़ा देकर उनसे उसको ओस से भर कर लाने को कहा जावे। जो राजकुमार उस घड़े को ओस से भर कर उठवाकर लावेगा वह राज्य का अधिकारी होगा। तत्पश्चात् राजमहल में आग लगवा दी जावे। जो राजकुमार छत्र, चँवर, सिंहासन आदि राज्य-चिन्हों को आग में से बचाकर ले आवेगा वह राज्य का अधिकारी होगा।

राजा—यह बात ठीक है। मैं कल से इन तीनों परीक्षाओं का प्रबन्ध करूँगा।

६

युवराजपद की प्रथम परीक्षा

मध्याह्न का समय है। महाराज भट्टिय उपश्रेणिक राजसभा से भोजन के लिये उठ चुके है। आज उनकी पाकशाला में विशेष चहल-पहल दिखलाई दे रही है। रसोइये जल्दी इधर-उधर आ-जा रहे है। उनकी रसोई के कई भाग हैं, जिनमें कुछ में तो कई-कई सहस्र व्यक्तियों को एक साथ बिठला कर भोजन कराया जा सकता हैं। राजकुमारों के भोजन करने का एक दालान पृथक् है। उससे लगा हुआ एक कमरा महाराज तथा महारानियो के भोजन करने के लिये नियत है। महाराज के भोजन पर बैठ जाने के साथ उनके पांच सौ एक राजकुमारों को भी एक साथ ही भोजन के लिये बिठलाया गया। राजकुमारों के सामने सुन्दर सोने के थालों में खीर का भोजन परोसा गया।

भोजन परोसा जाने पर राजकुमारों ने भोजन आरम्भ किया ही था कि उनको एक अत्यन्त भयंकर कुत्ता जोर से गुर्राता हुआ अपनी ओर आता दिखलाई दिया। कुत्ता भेड़िये के जितना ऊंचा था। उसने अपने कानो तथा पूंछ को खड़ा किया हुआ था। उसके खुले हुए मुख के अन्दर उसके पैने तथा नुकीले दांत उसकी भयंकरता को और भी प्रकट कर रहे थे।

राजकुमारों ने जो इस शिकारी कुत्ते को अपनी ओर आते देखा तो वे भय से चीख मार-मार कर वहां से भागने लगे। क्रमशः वहा से एक के अतिरिक्त सभी राजकुमार भाग गए। न भागने वाला राजकुमार बिम्बसार था। उसकी आयु चौदह वर्ष की थी। उसका उन्नत ललाट, तेजस्वी आँखें तथा बड़े-बड़े भुजदण्ड उसके महापुरुष होने का प्रमाण दे रहे थे। उसने कुत्ते को अपनी ओर आते हुए देखकर सोचा कि कुत्ता सदा ही शिकार से प्रथम भोजन लेना पसन्द करता है। अतएव निश्चय ही वह रसोई में आकर प्रथम थाली

में मुँह डालेगा। हुआ भी वास्तव में ऐसा ही। कुत्ते ने राजकुमारों के भोजन-गृह में प्रवेश करके सबसे आगे वाली थाली में से खीर खानी आरम्भ की। बिम्बसार उसको निश्चितता से देखते जाते थे और स्वयं भोजन करते जाते थे। कुत्ता एक थाली की खीर खाकर अगली थाली पर बढ़ गया। बिम्बसार भी दालान के आरम्भ में ही बैठे होने के कारण कुत्ते के अत्यंत समीप थे। कुत्ता जब दूसरी थाली की खीर खा रहा था तो बिम्बसार ने अन्य थालियों को खींच कर अपने पास एकत्रित कर लिया। दूसरी थाली की खीर खा चुकने पर बिम्बसार ने उसकी ओर को एक थाली और फेंक दी। कुत्ते ने उसको भी खाना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार कुत्ते की एक-एक थाली समाप्त हो जाने पर बिम्बसार उसकी ओर दूसरी-दूसरी थाली फेंकते जाते थे। क्रमशः बिम्बसार तथा कुत्ता दोनों अपना-अपना भोजन समाप्त कर चुके। राजा भट्टिय को यह देखकर अत्यत आश्चर्य हुआ कि जिस समय राजकुमार बिम्बसार भोजनशाला से बाहिर निकला तो वह शिकारी कुत्ता पूँछ हिलाता हुआ उसके पीछे-पीछे जा रहा था। राजा ने उस समय महामात्य कल्पक से कहा :

"कल्पक ! मेरे सारे पुत्रों में यह बिम्बसार ही सब से अधिक तेजस्वी है। आज की घटना से मझे विश्वास हो गया कि वास्तव में मेरे सब पुत्रों की अपेक्षा मेरा उत्तराधिकारी यही होगा। खैर, अभी तो दो परीक्षाएँ और शेष है।"

७

युवराजपद की द्वितीय परीक्षा

प्रातःकाल का समय है। पौष मास होने के कारण अभी आकाश में कुहरा छाया हुआ है। राजकुमारों को रात्रि के समय ही यह आज्ञा दे दी गई थी कि वे प्रातःकाल होते ही सूर्योदय से पूर्व राजा के सम्मुख उपस्थित हों। अस्तु, अरुणोदय होते ही सब के सब राजकुमार राजा के पास पहुँच गए। उस समय राजा के पास पाच सौ कोरे घड़ों का ढेर पड़ा हुआ था। उन्होंने राजकुमारों के एकत्रित हो जाने पर उनसे कहा :

"राजकुमारो ! आप जानते हैं कि हमारी वृद्धावस्था समीप है और हम अब राज्यकार्य से उपराम होकर वन में जाकर तपस्या करने का विचार कर रहे हैं। ऐसे अवसर पर आप लोगों को भिन्न-भिन्न कार्य देने की दृष्टि से आप लोगों की योग्यता की परीक्षा करना आवश्यक है। अस्तु, आप लोग इस ढेर म से एक-एक कोरा घड़ा उठा कर लेते जावें और उसे ओस से भर कर यहां शीघ्र से शीघ्र ले आवें।"

राजा भट्टिय उपश्रेणिक राजकुमारों को यह आज्ञा देकर राजमहल म चले गए और राजकुमार भी एक-एक घड़ा उठा कर चलते बने। सब राजकुमारों के चले जाने पर बिम्बसार ने अपने एक सेवक को घड़ा उठाने की आज्ञा दी। वह उसके ऊपर घड़ा रखवा कर शीघ्र ही नगर के बाहिर एक ऐसे मैदान में आ गए जहां अन्य कोई राजकुमार नहीं था।

शेष राजकुमार भी नगर के बाहिर घास के अन्य मैदानों में ही गए। वह घास के ऊपर से ओस की एक-एक बूंद को उठाते और फिर उसको घड़े में डालते थे, किन्तु उनके ऐसा करते ही ओस की वह बूंद घड़े के अन्दर जाकर सूख जाती थी। राजकुमार इसी प्रकार कई घंटों तक बराबर ओस की

बूंदें उठाते रहे यहां तक कि सूर्य के ऊपर चढ़ आने से ओस के कण सूख गए। किन्तु उनके घड़े पहिले के समान ही खाली के खाली रहे। अंत में उन्होंने लज्जित होकर अपने-अपने खाली घड़े राजा को जाकर वापिस कर दिये।

किन्तु राजकुमार बिम्बसार एक प्रतिभाशाली युवक था। वह धीर, वीर एवं साहसी था। आपत्तियों से घबराना उसने सीखा ही नहीं था। घड़े को उठाकर प्रथम तो उसको उसने पानी में डालकर खूब भिगोया, जिससे ओस की बूंदें उसमें पड़ते ही सूख न जावें। इसके पश्चात् उसने अपने सेवक की सहायता से एक चादर को घास के ऊपर बिछाया। दो-चार बार घास पर बिछाने से चादर ऐसी भीग गई, जैसे उसे पानी में ही भिगो दिया गया हो। अब तो बिम्बसार ने उस चादर को घड़े में निचोड़ना आरम्भ किया। वह चादर को पृथक्-पृथक् स्थानों में बिछाकर गीली करके बाद में उसे घड़े में निचोड़ दिया करते थे। थोड़े परिश्रम के बाद ही उनका घड़ा ओस से भर गया। अब वह उसको अपने सेवक के सिर पर रखवा कर पिता के पास ले गए।

राजा ने जो बिम्बसार को ओस से भरा हुआ घड़ा लिवा कर लाते हुए देखा तो प्रसन्न होकर बोले—

"क्यों बिम्बसार, तुम ओस का घड़ा भर कर ले आए?"

बिम्बसार—हां पिता जी, ले तो आया।

राजा—तुमने उसे किस प्रकार भरा?

बिम्बसार—मैं अपने साथ एक चादर ले गया था। वह चादर घास के ऊपर बिछाते ही भीग जाती थी, फिर मैं उसे घड़े में निचोड़ देता था। तीस-चालीस बार इस प्रकार करने से घड़ा ओस से भर गया।

कल्पक—तुम्हारी इस बुद्धि के लिए तुमको मैं बधाई देता हूँ राजकुमार। अच्छा अब तुम जा सकते हो।

बिम्बसार के चले जाने पर राजा ने कल्पक से कहा—

"तुमने देखा कल्पक, इस परीक्षा में भी बिम्बसार ही उत्तीर्ण हुआ। तुम देख लेना कि अंतिम परीक्षा में भी यही उत्तीर्ण होगा।"

८

युवराजपद की तृतीय परीक्षा

लगभग डेढ़ पहर दिन चढ़ा होगा। गिरिव्रज के सभी निवासी अपने-अपने काम-काज में लग गए थे। राजा भट्टिय उपश्रेणिक भी अपने राजमहल से निकल कर सभा भवन को जा रहे थे कि अचानक राजमहल में से अग्नि की लपटें निकलती दिखलाई दीं। राजमहल से आग की लपटों को निकलता देख कर सारा नगर राजमहल की ओर को आग बुझाने दौड़ पड़ा। किन्तु राजमहल पर आग बुझाने वालों का पर्याप्त प्रबन्ध था। अतएव सैनिकों ने नगरनिवासियों को उनकी निश्चित सीमा से आगे नहीं बढ़ने दिया। आग बुझाने वाले सैनिक दल ने राजमहल का घेरा डालकर लम्बी-लम्बी सीढ़ियों तथा पानी के लम्बे-लम्बे नलों की सहायता से आग बुझाने का कार्य तुरन्त आरम्भ कर दिया। किन्तु अग्नि कुछ इस प्रकार से लगी थी कि बुझने का नाम ही न लेती थी। एक बार तो ऐसा दिखलाई दिया कि जल अग्नि में पड़ कर घी का कार्य कर रहा है।

किन्तु सैनिक दस्ते भी कम मुस्तैद नहीं थे। ज्यों-ज्यों अग्नि बढ़ती जाती थी वह दुगने उत्साह के साथ उसके साथ युद्ध करते जाते थे। अन्त में एक पहर भर युद्ध करने के उपरान्त उन्होंने अग्नि पर अधिकार करके उसे बुझा ही दिया।

राजमहल की अग्नि के बुझ जाने पर जब जले हुए सामान की पड़ताल की गई तो राजा तथा महामात्य को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि राजकुमार बिम्बसार ने न जाने कब अत्यन्त कौशलपूर्वक छत्र, चमर, सिंहासन आदि राज्य-चिन्हों को जलते हुए राजमहल से अत्यन्त सुरक्षित रूप में निकाल लिया था, जिनकी वे इस समय अत्यन्त सावधानी से रक्षा कर रहे थे। महामात्य कल्पक ने उनको देखकर कहा—

"राजकुमार बिम्बसार, तुमने इस समय सचमुच एक युवराज के योग्य ही

कार्य किया है। मैं इस कर्तव्यपरायणता के लिये तुमको बधाई देता हूँ। तुमको अपने इस सत्कर्म का यदि शीघ्र नहीं तो कुछ विलम्ब से अवश्य ही उत्तम फल मिलेगा।"

राजकुमार कल्पक के इन गूढ़ शब्दों पर देर तक विचार करते हुए अपने आवास की ओर चले गए।

अग्नि के बुझ जाने पर राजा ने महल का फिर संस्कार करवाया। आग के कारण काली पड़ी हुई दीवारों पर रंग कराया गया। अधजली वस्तुओं को फेंक कर उनके स्थान पर नवीन वस्तुएँ बनवा कर रख दी गईं। जो वस्तुएँ पूर्णतया जल गई थीं उनके स्थान पर भी नई वस्तुएँ मंगवा कर रखी गईं।

आग बुझाने में राजसेवकों, दासों तथा दासियों की जो हानि हुई थी उसकी भी राज्य-कोष से पूर्ति कर दी गई। इस बात का पूर्णतया ध्यान रखा गया कि प्रत्येक वस्तु पहिले के स्थान पर ही रखी जावे। इस प्रकार अग्निध्वस्त उस राजमहल को पहिले की अपेक्षा भी अधिक सजा दिया गया।

६

देश-निष्कासन

"कहो कल्पक ! अब क्या किया जावे। तुम्हारी बतलाई हुई तीनों ही परीक्षाएँ बिम्बसार पास कर चुका है। अब उसको चिलाती के मार्ग से किस प्रकार हटाया जावे।"

"हटाना क्या महाराज ! आपने उसे बुलवाया तो है ही। आते ही देश-निष्कासन की आज्ञा सुना दीजिये।"

"आखिर देश-निष्कासन की आज्ञा का कुछ कारण भी तो उसे बतलाना पड़ेगा। वह तो उसके आने के पूर्व ही सोच रखना चाहिये।"

"वह भी तो मैंने आपको बतलाया था महाराज ! क्या अभी से भूल गए?"

"हाँ, मेरे तो चित्त से उतर गया। तनिक दुबारा बतलाओ।"

"मैंने कहा था महाराज कि वह जो गुप्त रूप से पांच सौ सैनिक अपने पास रखता है उसी के आधार पर राज-विद्रोह का दोष लगाया जा सकता है।"

"हाँ हाँ ! अब मुझे याद आया। अच्छा वह बिम्बसार आ रहा है। अब ऐसे योग्य पुत्र से कठोर मुद्रा में ही वार्तालाप करना पड़ेगा।"

बिम्बसार उस समय अत्यन्त प्रसन्न था। वह समझता था कि खीर के भोजन में, ओस का घड़ा भरने में तथा राज्यचिन्हों की रक्षा करने में उसके द्वारा एसे भारी कार्य किये गए है, जिनके लिये उसे कोई सार्वजनिक सम्मान प्रदान किया जावेगा। उसको क्या पता था कि परीक्षा उत्तीर्ण करना भले ही अन्य व्यक्तियों के लिये पुरस्कार का कारण हो, किन्तु उसके लिये तो वह अभिशाप ही सिद्ध होगा। उसने अत्यन्त प्रसन्नता की मुद्रा में आकर ज्यों ही पिता के चरण छूने के लिये हाथ बढ़ाया कि वह पिता की कठोर मुद्रा देखकर सहम गया। राजा उपश्रेणिक बिम्बसार को देखकर कठोर स्वर में बोले—

राजा—बिम्बसार ! हम को पता चला है कि तुम राज्य-विद्रोह के लिये गुप्त रूप से तैयारी कर रहे हो और इसीलिये तुमने बहुत समय से अपने पास गुप्त रूप से पांच सौ सैनिक रखे हुए हैं।

बिम्बसार— (कानों पर हाथ धर कर) शान्तं पापं, शान्तं पापं पिता जी !

आपको किसी गुप्तचर ने धोखा दिया है। मेरे जैसे पितृभक्त पुत्र के द्वारा भला क्या ऐसी बात सम्भव है ?

राजा—फिर तुम गुप्त रूप से पांच सौ सैनिक अपन पास क्यों रखते हो ?

बिम्बसार—मैं गुप्त रूप से तो नहीं रखता ! उनको तो मैं प्रकट रूप से रखता हूँ और अपने खर्च से ही उनको वेतन भी देता हूँ। यदि आपको मेरे पास उनकी उपस्थिति पसन्द नहीं है तो मैं उनको अभी सेवा-निवृत्त कर सकता हूँ।

राजा—किन्तु इससे तुम्हारी सदाशयता का समर्थन तो नहीं होता। तुम को उसके लिये राज्यदण्ड लेना होगा।

बिम्बसार—पिता जी, आपका दिया हुआ राज्यदण्ड तो मैं निरपराध होने पर भी प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य करूँगा।

राजा—तुमको इस राज्य-द्रोह के अपराध में देश-निष्कासन का दण्ड दिया जाता है। जाओ, गिरिव्रज को छोड़कर अभी निकल जाओ।

इन वज्र से भी कठोर शब्दों को सुनकर बिम्बसार को अपने पैरों के नीचे से पृथ्वी निकलती हुई सी प्रतीत होने लगी। किन्तु वह स्वभाव से ही अत्यन्त धीर था। उसने केवल यही कहा—

"पिता जी ! जब मर्यादा पुरुषोत्तम राम पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये वन जा सकते थे तो क्या आपका यह अधम पुत्र आपकी देशनिष्कासन की आज्ञा का पालन न करेगा। मुझे मातृभूमि के छूटने का इतना दुःख नहीं, जितना दुःख मुझे आपके चरणों की सेवा से वंचित होने का है। अच्छा पिताजी, मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिये। मैं जाता हूँ।"

यह कहते-कहते राजकुमार बिम्बसार का गला भर आया और वह अपने पिता के चरण छूकर वहाँ से चले गए। उस समय राजा उपश्रेणिक का भी गला भर आया था, किन्तु वह बिम्बसार के सामने गम्भीर ही बने रहे। बिम्बसार के चले जाने पर उनके नेत्रों से आंसू ढुलकने लगे, जिनको उन्होंने बड़ी कठिनता से पोंछा। तब कल्पक ने कहा—

"आखिर महाराज ! आपका भी पिता का हृदय है। निरपराध पुत्र को दण्ड देते समय आपके मन में वेदना होना स्वाभाविक है।"

१०

राज्य-संन्यास

आज गिरिव्रज में अपूर्व आनन्द का स्रोत उमड़ रहा है। सारे नगर को नए सिरे से सजाया गया है। प्रत्येक घर पर बन्दनवारों तथा झंडियों के अतिरिक्त नवीन ध्वजाएँ लगाई गई हैं। सड़कों में विशेष रूप से छिड़काव किया गया है। उनकी सफाई इतनी सावधानी से की गई है कि एक दाना भी गिर जावे तो उसका सुगमता से पता लगाया जा सकता है। लोगों के झुण्ड के झुण्ड अपने-अपने घरों से निकल-निकल कर राज्य-सभा की ओर जा रहे हैं। वह आपस में अनेक प्रकार की बातें भी करते जाते हैं। उनमें से एक बोला—

"भाई, इसमें सन्देह नहीं कि महाराज भट्रिय उपश्रेणिक ने जन्म भर सैकड़ों विवाह करके भी जो इस समय संन्यास लेकर वन जाने की घोषणा की है उससे उन्होंने अपने जीवन के सारे अनाचारों को धो दिया।"

तब तक दूसरा बोला—

"भाई, यह बात तो तुम्हारी ठीक है। किन्तु राजा संन्यास लेकर कितने ही ऊँचे महात्मा बन जावें उन्होंने जो निरपराध बिम्बसार को देश-निर्वासन का दण्ड दिया है, इस कलंक को वह सात जन्म लेकर भी नहीं धो सकेंगे।"

इस पर तीसरा बोला—

"तो क्या आप समझते हैं कि बिम्बसार अब लौट कर गिरिव्रज नहीं आवेंगे। यह निश्चय है कि यह बालक चिलाती किसी प्रकार भी राज्य की बागडोर नहीं संभाल सकेगा। ऐसी अवस्था में हम और तुम ही चाहे कहीं से भी बिम्बसार को ढूंढकर लावेंगे।"

तब चौथा बोला—

"यह तुमने ठीक कहा। मैं भी यही समझता हूँ कि साल दो साल के अन्दर ही गिरिव्रज में बिम्बसार का शासन स्थापित हो जावेगा।"

इस पर पांचवें ने कहा—

"अरे भाई, अब तो इस आलोचना-प्रत्यालोचना को जाने दो। अब तो राज-दरबार सामने दिखलाई दे रहा है। यदि कहीं किसी राज-पुरुष ने हमारी इन बातों को सुन लिया तो लेने के देने पड़ जावेंगे।"

उसके ऐसा कहने पर सब लोग चुपके-चुपके चलने लगे। राजसभा की आज की सजावट तो और भी देखने योग्य थी। सारी राजसभा में एक से एक उत्तम दरियां तथा कालीन बिछा कर उनके ऊपर गद्दे तकियों को लगाया गया था। राजपुरुषों के लिये कुर्सी के आकार के आसन बिछाए गए थे। महामात्य कल्पक तथा प्रधान सेनापति भद्रसेन के आसन भी आज विशेष रूप से नये दिखलाई दे रहे थे। पुराने राजसिंहासन की बगल में एक नया राजसिंहासन रखा हुआ था। वे दोनों आसन सोने-चांदी के बने हुए थे। उनमें बीच-बीच में रत्नों की प्रभा से अपूर्व ज्योति निकल रही थी।

क्रमशः लोगों का आना-जाना आरम्भ हुआ। आज सभी पौर-जानपदों को राजसभा में आने के लिये निमन्त्रित किया गया था। जनता को भी आज राजसभा में आने की पूरी छूट दे दी गई थी। अस्तु सबसे प्रथम राजसभा में दर्शकों का ही आगमन आरम्भ हुआ। बाद में पौर तथा जानपद लोग आए। उनके बाद राज्याधिकारियों ने आकर अपने-अपने स्थान पर बैठना आरम्भ किया। नागरिकों, पौर-जानपदों तथा राज्याधिकारियों के आने के बाद सेनापति भद्रसेन इस अवसर के योग्य उपयुक्त उत्तम वस्त्र पहिने राजसभा में आकर अपने आसन पर बैठ गए। उनके बाद महामात्य कल्पक भी आकर अपने आसन पर बैठ गए। राजकुमारों के बैठने के लिये नीचे सभा में एक ओर पृथक् व्यवस्था की गई थी। इस प्रकार सारी राजसभा के भर जाने पर लोग उत्सुकता से राजा तथा राजकुमार चिलाती के आने की प्रतीक्षा करने लगे। तब तक राजमहल से तुरही के बजने का शब्द आया। इसके साथ ही साथ अनेक राज्याधिकारियों से घिरे हुए महाराज भट्टिय उपश्रेणिक तथा राजकुमार चिलाती भड़कीले वस्त्र पहिने आते हुए दिखलाई दिये। उनको देखते ही

जनता ने "महाराज उपश्रेणिक की जय", "राजकुमार चिलाती की जय" के शब्दों से सारी राजसभा को भर दिया।

राजा उपश्रेणिक आकर अपने सिंहासन पर बैठ गए। राजकुमार चिलाती उनके पास एक दूसरे उत्तम आसन पर बैठे। सबके बैठ जाने पर महाराज ने इस प्रकार कहना आरम्भ किया :

"सभासदों, पौर जानपदों, राज्याधिकारियों तथा सामंत वर्ग! हमको राज्य करते हुए अब वृद्धावस्था आ गई है। राज्य-सिंहासन पर बैठ कर कर्तव्य-भावना के कारण राजा को अनेक ऐसे कार्य करने पड़ते है, जिनका फल उसके लिये इस जन्म अथवा अगले जन्म में बुरा हो सकता है। अतएव राजा का कर्तव्य है कि वह पचास वर्ष की आयु के पश्चात् राज्य कार्य से अपना हाथ खींच कर वन में जाकर वानप्रस्थ आश्रम का सेवन करे। हमने महारानी तिलकवती देवी से विवाह करते समय यह प्रतिज्ञा की थी कि उसके भावी औरस पुत्र को हम अपना उत्तराधिकारी मगध-सम्राट् बनावेंगे। अस्तु आज हम आप सबके सामने उसके पुत्र 'राजकुमार चिलाती' का राज्याभिषेक करके उसे मगध-सम्राट् बनाना चाहते है। आशा है आप सब हमारे इस कार्य का समर्थन करेंगे।"

राजा के यह कहते ही जनता ने फिर जोर की आवाज में "सम्राट् उपश्रेणिक की जय"

"राजकुमार चिलाती की जय" बोल कर अपनी सहमति प्रकट की।

इसके पश्चात् वेद मन्त्रों से राजकुमार चिलाती का राज्याभिषेक किया जाकर महाराज भट्टिय उपश्रेणिक ने अपने हाथ से उसके सिर पर राज-मुकुट रखा। उस समय फिर जोर से "सम्राट् चिलाती की जय" का घोष किया गया। सम्राट् चिलाती के राज्यसिंहासन पर बैठ जाने पर महामात्य कल्पक ने उठकर तलवार हाथ मे लेकर कहा—

"मैं कल्पक ब्राह्मण इस बात की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं सम्राट् चिलाती की सदा ही भक्तिपूर्वक सेवा करता हुआ उनकी आज्ञा का पालन करता रहूँगा।"

महामात्य कल्पक के बाद प्रधान सेनापति भद्रसेन तथा अन्य सभी राज्या-

धिकारियों ने सम्राट् चिलाती के प्रति भक्ति की शपथ ली।

इस शपथ-ग्रहण समारोह के बीच यह किसी ने भी ध्यान नहीं दिया कि महाराज भट्टिय उपश्रेणिक न जाने कब सभा से उठ कर पास के एक कमरे में चले गए और वहां ही सम्पूर्ण राज्य-चिन्हों का त्याग कर तथा भगवे वस्त्र पहिन कर बाहिर राजसभा में आए। शपथ-ग्रहण कार्यवाही के हो चुकने पर उन्होंने खड़े होकर फिर कहा—

"सभासदो तथा नागरिको!

मुझे प्रसन्नता है कि आज मैं अपने गृहस्थ कार्यों को समाप्त कर चुका। आज मैंने अपने सब से अन्तिम कर्तव्य उत्तराधिकार-समर्पण के कार्य को भी कर डाला। अब मैं गृहस्थ का त्याग कर भगवे वस्त्र पहिन कर वन जा रहा हूं। मेरी उस परम पिता परमात्मा से प्रार्थना है कि वह आप सब का कल्याण करे।"

उनके यह कहते ही जनता ने

"राजर्षि उपश्रेणिक की जय।"

के शब्द से उनका अभिवादन किया। राजा उपश्रेणिक के जाते समय सम्राट् चिलाती ने सिंहासन से उठ कर उनके चरण छुए। उसके पश्चात् वह सारी सभा के देखते-देखते नंगे पैरों वन को चले गए। जनता उनको गिरिव्रज के प्राकार तक पहुँचा कर फिर वापिस लौट आई।

११

नन्दिग्राम में

राजकुमार बिम्बसार जिस समय गिरिव्रज से चले तो लगभग डेढ़ पहर दिन चढ़ा था। वह भोजन भी नही कर पाए थे कि उनको देशनिर्वासन की आज्ञा सुना दी गई। अस्तु वह बिना भोजन किये ही नगर से निकल चले। जाते समय उन्होंने अपने पांच सौ सेवको को भी यह कह कर बिदा कर दिया कि उन्हें अच्छे दिन वापिस आने पर आवश्यकता के समय फिर बुला लिया जावेगा।

बिम्बसार गिरिव्रज से निकल कर प्रथम पश्चिम की ओर को पैदल ही चले। इस समय वह अपने राजसी वेष में तो थे, किन्तु उस वेष के उपयुक्त उनके पास वाहन या अन्य सामग्री कुछ भी नही थी। मार्ग में जाते हुए उन्हें एक सेठ जी भी मिल गए, जिनका नाम सेठ इन्द्रदत्त था। वह भी कही और से आकर पश्चिम को जाने वाले मार्ग पर चले जा रहे थे। उनको देखकर राजकुमार बोले—

"मामा, प्रणाम! अब तो हम मार्ग में एक से दो हो गए।"

सेठ जी ने मन में तो राजकुमार के 'मामा' कहने पर कुछ बुरा सा माना, किन्तु प्रकट में यह उत्तर दिया—

"हां, मार्ग में एक की अपेक्षा दो सदा ही अच्छे रहते हैं।"

किन्तु सेठ जी कुछ कम बोलने वाले थे। बिम्बसार को पैदल चलने का अभ्यास नहीं था। अतएव उसको मार्ग का श्रम अखर रहा था। उसने सेठ जी से कहा—

"मामा! ऐसे किस प्रकार मार्ग तय होगा। जिह्वारथ पर चढ़कर चलें।"

सेठ जी उसके इस शब्द को सुनकर भी चुप ही रहे। वह मन में सोचने लगे कि कैसा विचित्र युवक है। जिह्वा तो मुख में है, भला उसका रथ किस

प्रकार बनाया जा सकता है।

इस समय चलते-चलते दोपहर हो चुका था। बिम्बसार को भूख जोर से सता रही थी। सेठ जी के मुख से भी भूख तथा प्यास के लक्षण स्पष्ट प्रकट हो रहे थे। अतएव राजकुमार ने उनसे कहा—

"मामा! जान पड़ता है कि पाथेय आप भी नहीं लाए।"

"नहीं राजकुमार, मैं एक गांव में वसूली के लिये गया था। वहां मार्ग के लिये पाथेय कौन बनाकर देता। अब तो घर चल कर ही भोजन मिलेगा।"

"नहीं मामा, यह सामने नन्दिग्राम है। इसमें राज्य की ओर से सभी परदेसियों को भोजन दिये जाने की व्यवस्था है। चलो, वहीं जाकर भोजन करेंगे।"

"अच्छा चलो, वहीं चलें।

नन्दिग्राम एक अच्छा कस्बा था। उसमें लगभग एक सहस्र घर थे, जिनमें ब्राह्मणों की संख्या अधिक थी। वही वहां के जमींदार भी थे। नन्दिनाथ नामक एक ब्राह्मण गांव का जमींदार था। नन्दिग्राम में आगन्तुकों के रहने तथा ठहरने के लिये एक बड़ी सुन्दर धर्मशाला थी, जिसमें भोजन भी निःशुल्क दिया जाता था। जिस समय राजकुमार बिम्बसार धर्मशाला में सेठ जी के साथ पहुँचे तो वहां अतिथियों को भोजन कराया जा रहा था। उन्होंने नन्दिनाथ के पास जाकर उससे वार्तालाप किया।

"महोदय! यहां के मुख्य प्रबन्धक आप ही हैं?"

"क्यों! कहिये, आपको क्या काम है?"

"बात यह है कि हम गिरिव्रज से आ रहे हैं और राज्य-कर्मचारी हैं। हम यहां भोजन करना चाहते हैं।"

"किन्तु राज्य-कर्मचारियों को तो हम जल तक भी नहीं पिलाया करते, फिर भोजन देना तो किस प्रकार सम्भव हो सकता है।"

इस प्रकार टका-सा उत्तर पाकर राजकुमार बिम्बसार तथा सेठ जी दोनों ही वहां से भूखे-प्यासे वापिस चल आए।

१२

मूर्खता अथवा चातुर्य

नन्दिग्राम से बाहिर आने पर बिम्बसार ने सेठ जी से नन्दिग्राम की ओर संकेत करके पूछा—

"मामा! यह गाव बसा हुआ है अथवा ऊजड़?"

सेठ जी राजकुमार के इस प्रश्न को सुनकर आश्चर्य में पड़ गए। वह सोचने लगे कि राजकुमार कैसी मूर्खता की बात कर रहा है, जो इसे यह भी दिखलाई नहीं देता कि यह गांव बसा हुआ है अथवा ऊजड़।

अब ये दोनों फिर अपने मार्ग पर आगे चल पड़े। थोड़ी दूर जाने पर उनको एक और छोटा गांव मिला। इस गांव में सभी झोपड़ियां थी, जिनसे पता चलता था कि उस गांव में धनिक कोई नही है। यह लोग गांव के समीप पहुंचे तो इनको एक स्त्री के धाड़ें मार-मार कर रोने तथा एक पुरुष के कर्कश स्वर में चिल्लाने का शब्द सुनाई दिया। आगे बढ़ने पर उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति अपनी स्त्री को मार रहा है। स्त्री धाड़े मार-मार कर रोती जाती थी और पुरुष कर्कश स्वर मे उसको डांटता जाता था। यह दोनों लाचार होकर इस दृश्य को देखते हुए आगे निकल गए। गांव के दूसरे किनारे पर आ जाने पर भी उनके कान में उस स्त्री के रोने का शब्द आ रहा था। तब उसको सहने में असमर्थ होकर राजकुमार ने सेठ जी से पूछा—

"मामा! यह अपनी बंधी हुई स्त्री को मार रहा है अथवा खुली हुई को?"

सेठ जी राजकुमार के इस प्रश्न को भी सुनकर चुप हो गए। वह सोचने लगे कि यह युवक कैसा विचित्र है कि इसको यह भी दिखलाई नहीं देता कि पिटनेवाली स्त्री बंधी हुई है अथवा खुली हुई।

इस गांव से आगे बढ़कर यह दोनों गांव के बाहिरखेतों में पहुंच गए।

खेत उस समय खाली थे और एक खेत में एक किसान हल चला रहा था। राजकुमार उस किसान को बहुत समय तक देखता रहा। बाद में वह सेठ जी से बोला—

"मामा ! यह किसान अपने खेत की उपज को खा चुका है अथवा आगे खावेगा ?"

सेठ जी राजकुमार के इस प्रश्न पर भी चुप हो गए। वह सोचने लगे कि यह कैसा विचित्र युवक है कि इसे यह भी दिखलाई नहीं देता कि जुतनेवाले खेत की उपज को किसान पहिले से किस प्रकार खा सकता है। यह लोग खेतों को पार करते हुए जब सड़क पर आए तो मार्ग में बालू अधिक थी, जिस पर जूते पहिन कर जाना कठिन था। अतएव राजकुमार ने अपने जूते उतार कर हाथों में ले लिये। बालू पार करने पर इन लोगों को एक नदी मिली। इसी नदी के पार सेठ जी का अपना ग्राम भी था। सेठ जी ने बालू में जूते नहीं उतारे थे। नदी पार करने के लिये उन्होंने जूते उतार कर अपने हाथ में ले लिये, किन्तु राजकुमार ने—जो अभी तक अपने जूतों को हाथों में लिये हुए था—नदी पार करने के लिये जूतों को पहिन लिया। राजकुमार को पानी में जूते पहिनते देखकर सेठ जी को कुछ हँसी आ गई। वह सोचने लगे कि अब इसमें सन्देह नहीं रहा कि यह नवयुवक मूर्ख है। इसने बालू में तो जूते उतार दिये और नदी में जहां जूते उतारने चाहिएँ थे, जूते पहिन लिये।

नदी में जल अधिक नहीं था। अतएव उसको दोनों ने सुगमता से पार कर लिया। नदी पार करके दोनों एक छोटे से बगीचे में पहुँचे। सेठ जी एक बड़े वृक्ष की ओर संकेत कर राजकुमार से बोले—

"राजकुमार ! यह वेणपद्म नगर है। मैं इसी में रहता हूँ। तुम तनिक देर इस आम के वृक्ष के नीचे सुस्ताओ। मैं घर जाकर तुमको अभी बुलवा लूंगा।"

'बहुत अच्छा' कह कर राजकुमार बिम्बसार उस वृक्ष के नीचे चले गए। वहां जाने पर वह अपना छाता खोलकर और उसे अपने ऊपर तान कर बैठ गए।

सेठ जी वृक्ष के नीचे उनको छाता खोलते देखकर फिर हँसे। वह मन में कहने लगे "यह नवयुवक वास्तव में ही मूर्ख है, अन्यथा वृक्ष के नीचे छाता खोलकर क्यों बैठता।"

सेठ जी राजकुमार को वहीं बैठा हुआ छोड़कर गांव की ओर चले गए। उनका गांव कोई बड़ा गांव नहीं था। उसमें दो-चार के अतिरिक्त सभी घर छप्परों के थे। जो दो-चार घर पक्के कहे जाते थे वह भी चूने-ईंट के न होकर मिट्टी की दीवारों के ही थे। सेठ जी का नाम सेठ इन्द्रदत्त था, उनका घर भी उनमें अपवाद न था। सेठ जी की पत्नी बहुत समय पूर्व मर चुकी थीं। सन्तान के नाम पर उनके केवल एक कन्या ही थी, जिसका नाम नन्दिश्री था। उसकी आयु भी लगभग चौदह वर्ष की थी। सेठ जी के घर गृहस्थी के सारे काम-काज को नन्दिश्री ही किया करती थी। वह पढ़ी-लिखी तो थी ही, स्त्रियोचित सभी ललित कलाओं में भी प्रवीण थी। उसने घर के काम-काज में सहायता देने के लिये घर में एक दासी को भी रखा हुआ था। पिता जी को आते देख कर नन्दिश्री ने आगे बढ़ कर उनकी अभ्यर्थना की और उनसे पूछा—

"पिता जी, अकेले आए अथवा और भी कोई आपके साथ आया है?"

"बेटी, अकेला तो मै नहीं आया। मेरे साथ एक ऐसा नवयुवक भी आया है, जो अपने वस्त्रों तथा मुख के तेज से तो ऐसा दिखलाई देता है कि जैसे सारे संसार पर राज्य करने के लिये ही विधाता ने उसकी रचना की हो, किंतु उसने मार्ग में अनेक ऐसी बातें कीं कि शायद संसार भर में उससे अधिक मूर्ख कोई भी न हो।"

नन्दिश्री—उसने मूर्खता की ऐसी क्या-क्या बातें कीं?

सेठ जी—उसने प्रथम तो मुझ अपरिचित को मामा बतलाया। फिर नन्दिग्राम में भोजन न मिलने पर बाहिर आकर पूछने लगा कि वह गांव बसा हुआ था अथवा ऊजड़। इसके पश्चात् जब हम एक गाव से होकर निकले तो वहां एक व्यक्ति अपनी स्त्री को पीट रहा था। उसको देखकर राजकुमार ने पूछा कि वह अपनी बंधी हुई स्त्री को मार रहा था अथवा खुली हुई को। वहां से चलकर जब हम एक खेत में आए तो वह खेत जोतनेवाले एक किसान को

देखकर पूछने लगा कि वह अपने खेत की उपज को खा चुका अथवा आगे चल कर खायेगा। फिर उसने नदी में जूते पहिन लिये और जब मैंने उससे अपने गांव के पास वाले उस आम के पेड़ के नीचे बैठने को कहा तो वह अपना छाता खोल कर उसके नीचे बैठ गया। मैं उससे कह आया हूँ कि उसे घर पहुँच कर शीघ्र ही बुलवा लूंगा।

नन्दिश्री—पिता जी, आपने उसे ठीक नहीं समझा। वह तो संसार के सबसे अधिक बुद्धिमान् व्यक्तियों में से है।

सेठ जी—यह तूने किस प्रकार समझा बेटी ?

नन्दिश्री—देखिये पिता जी ! मामा-भानजे से अधिक निःस्वार्थ सम्बन्ध संसार भर में दूसरा नहीं होता। अतएव आपके साथ निःस्वार्थ प्रीति-सम्बन्ध स्थापित करने के लिये उसने आपको मामा कहा। फिर नन्दिग्राम में जब आप लोगों को भोजन नहीं मिला तो वह ग्राम कैसा ही बड़ा होने पर भी आप लोगों के लिये तो ऊजड़ ही था। वह गाव वाला जो अपनी स्त्री को मार रहा था सो विवाहित स्त्री को बंधी हुई तथा (बिना विवाह के घर में बिठलाई हुई स्त्री को बिना बंधी हुई कहा जाता है।) उसका अभिप्राय यह था कि यदि वह पुरुष अपनी बंधी हुई स्त्री को मार रहा है तो वह पिट कर भी घर में ही बनी रहेगी अथवा यदि वह करी हुई स्त्री को मार रहा है तो वह पिट-छित कर भाग जावेगी। उसने जो किसान के विषय में पूछा कि वह अपनी उपज को खा चुका अथवा आगे खायेगा तो उसका यह अभिप्राय था कि यदि उस पर ऋण है तो वह अपनी उपज को बोने के पूर्व ही खा चुका, क्योंकि ऋण की दशा में महाजन उसकी सारी उपज को उससे अपने ऋण के बदले में छीन लेगा। किन्तु यदि उसके ऊपर ऋण नहीं है तो वह अपनी उपज को बाद में पूरे वर्ष भर मजे में बैठ कर खावेगा। उसने जो नदी में जूते पहिने तथा वृक्ष के नीचे छाता लगाया अपने इन कार्यों से उसने यह प्रकट किया कि वह एक उच्च राजवंश में उत्पन्न हुआ है। क्योंकि राजा लोग नदी में कंकर आदि से पैरों की रक्षा के लिये जूते पहिनते हैं और पक्षियों की बींट आदि से अपने वस्त्रों की रक्षा करने के लिये वृक्ष के नीचे छाता लगाते हैं। अच्छा, मैं उसे अभी घर बुलवाती हूँ।

१३

प्रणय परीक्षा

नन्दिश्री की दासी का नाम लम्बनखी था। वास्तव में उसे अपने नाखून बढ़ाकर रखने का व्यसन था। इसीसे उसे सब लम्बनखी कहा करते थे। नन्दिश्री ने उसको अपने पास बुलाकर कहा—

"लम्बनखी! तू जरा अपने नाखून में तेल भर कर गांव के बाहिर नदी किनारे चली जा। वहा आम के नीचे एक नवयुवक बैठा हुआ है। तू उससे कहना कि आपको नन्दिश्री ने बुलाया है और स्नान करने के लिये यह तेल भेजा है। आते समय उसको तू घर का पता न बतलाकर केवल कान दिखला कर चली आना।"

लम्बनखी ने नन्दिश्री के कहे अनुसार ही सारा कार्य किया। प्रथम उसने अपने हाथों के दसों नखों में तेल भरा। फिर उनको ऊपर किये हुए वह नदी किनारे आम के वृक्ष के नीचे बैठे हुए राजकुमार बिम्बसार के पास आकर बोली—

"राजकुमार! आपको नन्दिश्री ने बुलाया है और स्नान करने के लिये यह तेल भेजा है।"

बिम्बसार—नन्दिश्री क्या उन्ही सेठ इन्द्रदत्त जी की पुत्री है, जिनके साथ हमारा यहा तक आना हुआ है।

लम्बनखी—जी हाँ, यही बात है।

इस पर राजकुमार ने वहीं बैठे २ पैर से भूमि में एक गड्ढा खोद दिया। नदी किनारा होने के कारण उसमें तुरन्त जल भर आया। तब राजकुमार ने लम्बनखी से कहा—

"तू अपने नखों के तेल को इस जल में डाल कर घर जा। मैं भी स्नान कर पीछे से आता हूँ।"

लम्बनखी अपने नखों का तेल उस गड्ढे में डाल कर राजकुमार को संकेत से कान दिखा कर घर चली गई।

लम्बनखी के जाने के बाद राजकुमार ने देखा कि उस गड्ढे का सारे का सारा जल तेल के कारण चिकना हो गया। उन्होंने उसको अपने बदन में मल कर प्रथम अच्छी तरह स्नान किया। फिर वह वस्त्र पहिन कर जाने के लिय तैयार हुए। वह सोचने लगे कि दासी जाते समय कान दिखला गई है। कान का अर्थ होता है ताड़ का वृक्ष। सो उसके मकान के सामने ताड़ का वृक्ष होना चाहिये। कान में कीचड़ भी होता है सो उसके मकान के सामने कीचड़ भी होना चाहिये।

इस प्रकार राजकुमार बिम्बसार वहाँ से स्नान कर गांव में घुसे। वह गांव में आगे चलते जाते और ऐसे मकान को खोजते जाते थे, जिसके सामने ताड़ का पेड़ हो। अन्त में आगे बढ़ते-बढ़ते उनको एक ऐसा मकान मिल ही गया। उसके सामने बड़ा भारी कीचड़ था और उस के अन्दर से घर में जान के लिये एक-एक कदम के अन्तर पर कुछ पत्थर रखे हुए थे। राजकुमार उन पत्थरों पर से न जाकर कीचड़ के अन्दर पैर धँसा कर चलने लगे। इससे उनके पेर घुटनों तक कीचड़ में सन गए। वह उन सने हुए पैरों से ही नन्दिश्री के आंगन में जा पहुँचे। नन्दिश्री ने उनको देखकर एक आधा गिलास जल देते हुए कहा—

"राजकुमार आप प्रथम इस जल से अपने पैर साफ कर लें।"

राजकुमार ने जो घुटनों तक सने हुए अपने पैरों के लिये कुल आधा गिलास जल देखा तो तुरन्त समझ गये कि उनकी बुद्धि की परीक्षा की जा रही है। अस्तु, वह जल लेकर नाली के पास जा बैठे। यहां उन्होंने प्रथम एक खप्पच से अपने पैरों के सारे कीचड़ को छुड़ाया और फिर थोड़े जल से उनको धोकर अपने पैरों को पूर्णतया साफ करके भी थोड़ा जल बचा कर नन्दिश्री को दे दिया।

नन्दिश्री राजकुमार के रूप, यौवन, तेज तथा बुद्धिचातुर्य को देखकर न केवल प्रभावित हुई वरन् उन पर आसक्त हो गई। राजकुमार का मुख उसके

हृदय में बस गया और वह यही सोचने लगी कि किस प्रकार मैं प्रत्येक समय उसी को देखती रहूँ। वह जानती थी कि पिता उसकी बात को नहीं टालते और उसके इच्छा करने से ही वह उसका विवाह किसी भी सत्पात्र के साथ कर देंगे। किन्तु वह स्वयं भी कम बुद्धिमती नहीं थी। वह विवाह का निश्चय करने से पूर्व अपने भावी पति की पात्रता के सम्बन्ध में सब प्रकार से छानबीन कर लेना चाहती थी। अपने पिता के अनुभव, स्नान-परीक्षा तथा पैर धुलवा कर वह यह देख चुकी थी कि राजकुमार असाधारण रूप से बुद्धिमान् हैं। किन्तु राजकुमार अपना वंश-परिचय नही दे रहे थे। अतएव उसने उनके उच्च कुल का परिचय पाने के लिये उनकी एक अन्य परीक्षा लेने का निश्चय किया। वह सोचने लगी की मोती पिरोने का कार्य केवल उच्चवंशीय व्यक्ति ही कर सकते हैं। अतएव उसने एक टेढ़ा-मेढ़ा मोती हाथ में लेकर राजकुमार से कहा—

"राजकुमार यह मोती मुझ से नही पिरोया जा सका। क्या आप इसमें डोरा डाल कर इसे पिरो सकेंगे?"

"क्यों नही।"

यह कह कर राजकुमार ने उसके हाथ से मोती तथा डोरा लेकर उसे अल्प परिश्रम से ही पिरो दिया। फिर उसने उसमें तनिक गुड़ लगा कर उसे चीटियों के बिल के पास रख दिया, जिससे चीटियां उसे लेकर बिल में घुस गई। किन्तु नन्दिश्री ने उसे अत्यन्त सावधानी से चीटियों के बिल में से इस प्रकार निकाल लिया कि उससे एक भी चीटी नही मरी।

राजकुमार नन्दिश्री के हाव-भाव से यह समझ गये कि वह उनको प्रेम की दृष्टि से देखने लगी है। इधर नन्दिश्री भी कुछ कम सुन्दरी नहीं थी। अतएव उसकी दृष्टि से आकर्षित होकर राजकुमार भी उसकी परीक्षा करने लगे थे। इसीलिये उन्होंने चीटियों के बिलों द्वारा उसकी परीक्षा की थी।

इस समय भोजन के लिये अतिकाल हो चुका था। अतएव नन्दिश्री ने राजकुमार से कहा—

नन्दिश्री—राजकुमार ! मैं आपके लिये क्या भोजन बनाऊँ।

राजकुमार—मैं किसी के यहां भोजन नहीं किया करता। मेरे पास गांठ में बत्तीस चावल बंधे हुए हैं। यदि तुम इन्हीं चावलों का भोजन बना सको तो मैं तुम्हारे यहां आनन्द से भोजन करूँगा।

नन्दिश्री—आप मुझे अपने बत्तीस चावल दीजिये तो ! मैं उन्हीं से आपको छत्तीस प्रकार के व्यंजन बना कर खिलाऊँगी।

नन्दिश्री के यह कहने पर राजकुमार ने अपनी गांठ खोलकर उसको चावल दे दिये। नन्दिश्री ने चावलों को लेकर प्रथम उनको भिगोया। फिर उनको पानी में पीस कर उनके छोटे-छोटे चार-पांच गुलगुले बनाए। वे गुलगुले उसने लम्बनखी को देकर कहा—

"लम्बनखी ! यह जादू के गुलगुले हैं। तू इनको ले जाकर मंडी में बेच आ। खरीदार से कहना कि यह वशीकरण गुलगुले हैं। इनको जिस स्त्री को अपने हाथ से खिलाया जावेगा वह खिलाने वाले के वश में हो जावेगी।"

लम्बनखी जो उन गुलगुलों को लेकर बाजार में गई तो उसको जाते ही उनके सौ रुपये मिल गए। वह प्रसन्न होती हुई वापिस आई और सौ रुपये उसने नन्दिश्री के हाथ पर रख दिये। अब तो नन्दिश्री ने उन रुपयों की सब वस्तुएँ मोल मँगवा कर राजकुमार बिम्बसार को छत्तीस प्रकार के व्यंजन बना कर खिलाये। राजकुमार उसके हाथ का भोजन करके अत्यन्त प्रसन्न हुए।

इस प्रकार नन्दिश्री ने राजकुमार की तथा राजकुमार ने नन्दिश्री की प्रच्छन्न रूप से प्रणय परीक्षा कर डाली, जिसमें दोनों ने ही दोनों को शत-प्रतिशत नम्बर दिये। इस परीक्षा की यह विशेषता थी कि सेठ जी को इस का लेशमात्र भी पता नहीं लगा और वह दोनों एक दूसरे पर पूर्णतया आसक्त हो गए।

१४

गृह-जामाता

पहर भर रात्रि जा चुकी है। राजकुमार बिम्बसार एक पृथक् कमरे में जाकर लेट चुके हैं। नन्दिश्री तथा उसके पिता सेठ इन्द्रदत्त एक दूसरे कमरे में लेटे हुए हैं कि सेठ जी ने मौन भंग करते हुए कहा—

"बेटी ! बात तो तेरी ठीक थी। राजकुमार वास्तव में अत्यत तेजस्वी, बुद्धिमान् और पराक्रमी है। जब से मेरा इसका साथ हुआ, मैं सदा ही गुप्त रूप से इसका पीछा करके इसकी गतिविधि का समाचार लेता रहा हूँ। परिचय के विषय में जब कभी भी उससे पूछा गया वह सदा ही कुछ न कुछ बहाना कर टालता रहा है। किन्तु आज पन्द्रह दिन तक प्रयत्न करने के बाद में इसका यथार्थ परिचय जान पाया हूँ। यह महातेजस्वी व्यक्ति मगध का राजकुमार बिम्बसार है।

नन्दिश्री—अच्छा पिता जी ! यह वही तेजस्वी राजकुमार है, जिसकी वीरता तथा बुद्धिमत्ता की कहानियां देश-देशान्तरों तक फैली हुई है !

सेठ जी—हां बेटी, यह वही है। यह हमारे अत्यधिक भाग्य हैं जो यह आजकल हमारे यहां ठहरा हुआ है।

नन्दिश्री—किंतु पिता जी, आपने इसका परिचय किस प्रकार पाया ?

सेठ जी—जिस दिन राजकुमार को मैं यहां लाया उससे अगले ही दिन तीन-चार अपरिचित व्यक्ति गांव में आये। किस प्रकार उन्होंने बिम्बसार के यहां होने का पता लगाया और किस प्रकार अपने आने की सूचना उन्होंने बिम्बसार को दी यह तो एक रहस्य है, किंतु बिम्बसार को मैंने नदी तट के आम् वन में उनसे घुलघुल कर बातें करते अचानक देख लिया। तब से मैं गुप्त रहता हुआ छाया के समान उसका पीछा करता रहा हूँ। तब से राजकुमार से कुछ लोग हर तीसरे-चौथे दिन मिलने आते हैं। आज तो मैंने बिल्कुल

समीप से उनकी बातें सुनीं। उसी वार्तालाप से मुझे यह पता चला कि यह व्यक्ति मगध का भूतपूर्व युवराज बिम्बसार है।

नन्दिश्री—क्यों, भूतपूर्व युवराज क्यों ?

सेठ जी—बात यह है कि इनके पिता महाराज भट्टिय उपश्रेणिक ने तिलकवती नाम की एक भील-कन्या से यह प्रतिज्ञा करके विवाह किया था कि उसके औरस पुत्र को ही वे अपना उत्तराधिकारी बनावेंगे। बिम्बसार गुप्त रूप से सदा ही अपने पास पांच सौ सैनिक रखा करते थे। राजा ने उन सैनिकों के बहाने ही इन पर राजद्रोह का आरोप लगा कर इन्हें देशनिर्वासित कर दिया। जो लोग इनके पास यहां आकर छिप-छिप कर मिलते हैं वह उनके उन्हीं पांच सौ सैनिकों में से हैं। वह इन्हें मगध राज्य के समाचार नियमित रूप से देते रहते हैं।

नन्दिश्री—अच्छा ! इनके सुन्दर मुख के पीछे कभी-कभी दिखलाई देने-वाली चिंतित मुद्रा का अर्थ मेरी समझ में अब आया।

सेठ जी—किंतु बेटी ! यदि इस समय यह तेरे साथ विवाह कर ले तो मैं कृतकृत्य हो जाऊँ।

नन्दिश्री—(लजा कर) कुछ अनुचित तो नहीं है।

सेठ जी—तू उसके स्वभाव से परिचित तो हो गई है न ? इस सम्बन्ध का कुछ बुरा परिणाम तो नहीं निकलेगा ?

नन्दिश्री—नहीं, पिता जी, ऐसी आशंका तो मुझे नहीं है।

सेठ जी—अच्छा में इस सम्बन्ध में राजकुमार के विचार जानने को उनके कमरे में अभी जाता हूँ।

इतना कह कर सेठ जी ने राजकुमार के कमरे के बाहिर जाकर धीरे से आवाज दी।

सेठ जी—क्या राजकुमार सो गए ?

राजकुमार—नहीं, अभी तो जग रहा हूँ। आइये।

सेठ जी राजकुमार के बुलाने पर अंदर चले गए और उनकी चारपाई के

पास बिछे एक मूढ़े पर बैठकर उनके साथ बातें करने लगे।

सेठ जी--राजकुमार ! यद्यपि आपने अब तक मुझ से अपना परिचय छिपाया, किंतु मुझे आज आपका वास्तविक परिचय मिल गया। मुझे यह जान कर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि आप मगध के निर्वासित राजकुमार बिम्बसार हैं।

राजकुमार--अच्छा, आपको मेरा असली परिचय मिल गया ! तब तो मुझे शीघ्र ही यहां से आगे चल देना चाहिये, क्योंकि मेरा परिचय आप पर प्रकट हुआ है तो औरों पर भी यहां प्रकट हो जावेगा।

सेठ जी--नहीं राजकुमार, मुझ से इस परिचय का दूसरे को पता नहीं चल सकता। आप यहां निश्चिन्त होकर रहें। मैं आपके कार्य में सब प्रकार से सहायता दूंगा। अच्छा, क्या मैं आपसे आपके परिवार के सम्बंध में कुछ और प्रश्न कर सकता हूँ ?

राजकुमार--हां, अब तो आपके प्रश्नों का उत्तर देने में मुझे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

सेठ जी--मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या आपका अभी तक कोई विवाह भी हुआ है।

राजकुमार--मेरा विवाह तो अभी तक नहीं हुआ किन्तु देश-निर्वासित होने से पूर्व मेरा वाग्दान कोशल देश की राजकुमारी महाकोशल की कन्या कोशलदेवी के साथ हो चुका है। किन्तु राजाओं तथा राजकुमारों को तो कई-कई बार राजनीतिक विवाह भी अपनी इच्छा के विरुद्ध करने पड़ते हे।

सेठ जी--वह किस प्रकार राजकुमार !

राजकुमार--मान लो किसी देश के साथ हमारा युद्ध होने की सम्भावना है और दोनों पक्ष में से किसी के पास उसकी अपनी कुमारी पुत्री है तो संधि होने पर दूसरे पक्ष को उस राजकुमारी के साथ विवाह करके संधि की प्रायः गारंटी देनी होती है।

सेठ जी--तब तो राजकुमारों को अनिवार्य रूप से अनेक विवाह करने पड़ते हैं।

राजकुमार--मेरा यही अभिप्राय है।

सेठ जी—किन्तु मैं तो आपका विवाह नन्दिश्री के साथ करना चाहता था।

राजकुमार—आपकी पुत्री कन्या रत्न है। वह विदुषी है, बुद्धिमती है, सुन्दरी है और गृहकार्य में निपुण है। अस्तु, यदि उसकी भी इसमें सहमति हो तो मैं इस प्रस्ताव पर सहानभूतिपूर्वक विचार करूँगा।

सेठ जी—उसकी अनुमति लेकर ही तो मैंने आपसे यह प्रस्ताव किया है।

राजकुमार—उसकी सहमति है तो पिता जी, मैं भी इस प्रस्ताव को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करता हूँ। किन्तु इसमें मेरी एक शर्त होगी।

सेठ जी—कहिये आपकी वह शर्त क्या है ?

राजकुमार—मेरी शर्त यह है कि विवाह बिल्कुल बिना आडम्बर के किया जावे, जिससे इस वेणपद्म नगर के बाहिर उसका समाचार न जावे और न विवाह के अवसर पर मेरा यथार्थ परिचय ही दिया जावे।

सेठ जी—मुझे आपकी यह शर्त पूर्णतया स्वीकार है। किन्तु उसके साथ एक शर्त मेरी भी है।

राजकुमार—वह क्या पिता जी ?

सेठ जी—वह यह कि विवाह के बाद आप मेरे यहाँ से तब तक घर छोड़ कर न जावें, जब तक आपके मगध की राजगद्दी पर बैठने की स्पष्ट सम्भावना न हो।

राजकुमार—तो इसका यह अर्थ हुआ कि तब तक मुझको गृह-जामाता बन कर रहना होगा ?

सेठ जी—तो इसमें बुराई ही क्या है ? हम सब लोग आपकी सब प्रकार तन, मन, धन से सहायता करेंगे। आपको तो अपने भावी संगठन के लिये एक केन्द्र बनाना ही होगा। फिर वह मेरा ही घर क्यों न हो ?

राजकुमार—अच्छा, आपका यह विचार है ?

सेठ जी—निश्चय से।

राजकुमार—अच्छा, मुझे आपकी सब बातें स्वीकार हैं। आप विवाह की तयारी करें।

१५

पुत्र लाभ

नन्दिश्री के साथ विवाह कर राजकुमार बिम्बसार उसी के घर सुख से रहने लगे। नन्दिश्री अपने पिता की एकमात्र सन्तान थी। अतएव राजकुमार को सेठ जी पुत्र से भी अधिक प्यार करते थे। इस विवाह का एक परिणाम यह हुआ कि विवाह से पूर्व जहां राजकुमार अपने राजगृह के सेवकों से नगर के बाहिर गुप्त रूप से मिला करते थे, वहां अब वह उनसे अपने घर में ही स्वच्छन्दतापूर्वक मिलने लगे। वह मगध के युवराज थे और अपने सभी भाइयों में सभी से सब प्रकार से अधिक योग्य थे, फिर भी जो उनका अधिकार छीन कर उन्हें देशनिर्वासित किया गया था, उसका उनके मन में ऐसा भारी शोक था कि वह उसे एक क्षण के लिये भी नहीं भूलते थे। यद्यपि आजकल उनका समय नन्दिश्री के साथ आनन्दपूर्वक व्यतीत होता था, किन्तु सुख भोगते हुए भी एक अज्ञात वेदना कभी-कभी उनके मुख पर प्रकट हो जाया करती थी। इन्ही दिनों नन्दिश्री का गर्भ रहा। इस शुभ समाचार से सेठ जी फूले न समाये, किन्तु राजकुमार को इस समाचार से भी अधिक प्रसन्नता न हुई। अन्त में एक दिन नन्दिश्री ने अवसर देखकर उनसे कहा—

"आर्य पुत्र! मैं प्रायः आपके अन्दर एक अज्ञात वेदना-सी देखती रहती हूँ, जो आपके हृदय में इतनी गहराई तक बैठी हुई है कि बड़े से बड़े सुख-भोग भी उसको भुलाने में अभी तक असमर्थ रहे हैं।

बिम्बसार—प्रिये, तुम उसकी कोई चिन्ता न करो। मैं बिल्कुल ठीक हूँ। मेरा स्वभाव ही ऐसा है कि आनन्दोपभोग करते-करते भी कुछ न कुछ सोचने लग जाया करता हूँ।

नन्दिश्री—प्राणनाथ, मै आपकी अर्धाङ्गिनी हूँ। आप मुझे इस प्रकार की बातों से नहीं टाल सकते। मैं जानती हूँ कि आपको अपना राज्य छिनने

का दुःख है, किन्तु उसको पुनः प्राप्त करने का उपाय करना चाहिये। उसके लिये चिन्ता करके शरीर को क्यों क्लेश पहुँचाया जावे।

बिम्बसार—तुम सत्य कहती हो प्राणप्रिये ! मेरे हृदय में चिन्ता नहीं, वरन् वेदना है, जिसको में किसी समय भी अपने हृदय से नहीं भुला सकता।

नन्दिश्री—तो उसको मुझे भी बतलाइये प्राणनाथ ! यह नियम है कि हृदय के दुःख को प्रकाशित कर देने से उसका वेग कुछ हल्का हो जाता है। फिर मैं तो आपकी अर्धाङ्गिनी हूँ। आपके सुख-दुःख को आधा बांट लेना मेरा अधिकार एवं धर्म है।

बिम्बसार—मैं तुमसे छिपाना नही चाहता, केवल यही सोचता हूँ कि मैं तो दुःखी हूँ ही, फिर उसको सुनाकर तुमको भी क्यों दुःखी करूँ।

नन्दिश्री—तो इसका यह अभिप्राय हुआ स्वामी, कि आप मुझे मेरे अधिकार से वंचित करते है।

बिम्बसार—नही प्रिये, ऐसा तुम्हें नहीं समझना चाहिये।

नन्दिश्री—ऐसा तभी तो नहीं समझूंगी जब आप अपना हृदय खोल कर मेरे सामने रखेंगे।

बिम्बसार—अच्छा, तुम्हें आग्रह है तो लो सुनो।

नन्दिश्री—हां, भगवन् सुनाइये। मैं उसे सुनने को अत्यधिक उत्सुक हूँ।

बिम्बसार—बात यह है प्रिये ! कि मुझे मेरे पिता ने पहिले से ही युवराज बना दिया था। इससे न केवल मुझे राज्य मिलने की पूर्ण आशा हो गई थी, वरन् मेरे सभी भाइयों और नगरनिवासियों तक की उसमें पूर्ण सहमति थी। किन्तु एक भील-कन्या तिलकवती से विवाह करते समय पिता यह वचन दे बैठे कि राज्य उसी के औरस पुत्र को दिया जावेगा। यदि पिता मुझ से यह स्पष्ट कह देते तब तो मैं तिलकवती के पुत्र के पक्ष में अपने राज्याधिकार का उसी प्रकार त्याग कर देता, जिस प्रकार राजा शंतनु के पुत्र देवव्रत (भीष्म पितामह) ने किया था, किन्तु उन्होंने यह न कह कर मुझे झूठा आरोप लगा कर घर से निकाल दिया।

नन्दिश्री—झूठा आरोप क्यों लगाया गया प्राणनाथ !

बिम्बसार—जब पिता ने देखा कि अब राज्य-परिवर्तन करना ही पड़ेगा तो उन्होंने हम पांच सौ भाइयों की राज्य-प्राप्ति के लिये तीन परीक्षाएँ नियत कीं। यद्यपि मैं युवराज था, अतएव राज्य प्राप्ति के लिये किसी और परीक्षा की आवश्यकता नहीं थी, फिर भी मैंने उन परीक्षाओं में गम्भीरता से भाग लिया। उन तीनों ही परीक्षाओं में मैं सर्वप्रथम आया।

नन्दिश्री—वह परीक्षाएँ क्या थीं भगवन् ?

बिम्बसार—प्रथम परीक्षा में हम सब राजकुमारों को एक बड़े भारी दालान में एक साथ भोजन करने के लिये बिठला कर हम को खीर का भोजन परोसा गया। फिर हमारे ऊपर एक भयंकर शिकारी कुत्ता छोड़ा गया। वह देखना चाहते थे कि ऐसी विषम परिस्थिति में कौन सा राजकुमार असीम धैर्य का परिचय देकर पेट भर कर भोजन करके उठे।

नन्दिश्री—तो उस कुत्ते को देखकर तो सभी राजकुमारों में भग्गी पड़ गई होगी !

बिम्बसार—अजी कुछ न पूछो। वह दृश्य देखने ही योग्य था। रसोई के प्रधान द्वार से कुत्ता भौं भौं करता हुआ आ रहा था। उधर से तो भागना संभव न था। अतएव जिस राजकुमार को जो मार्ग मिला वह उसी से भाग खड़ा हुआ। कुछ तो खिड़कियों के मार्ग से भागे। उस समय का दृश्य वास्तव में देखने ही योग्य था। उनके चेहरे पर भय के लक्षण थे। घबराहट के मारे उनके वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये थे। कई एक के तो खिड़की से कूदने में चोट भी लग गई।

नन्दिश्री—क्या आप उस समय बिल्कुल नहीं घबराए ?

बिम्बसार—मैं क्यों घबराता। मैंने मनुष्य, पक्षी तथा पशुओं सभी के स्वभाव का अध्ययन जो किया है। मैं जानता था कि कुत्ता कितना ही भयंकर होने पर भी भोजन पर प्राण देता है और वह निश्चय से अपने मार्ग में पड़ने-वाली प्रथम थाली में मुंह मार कर उसकी खीर को खाना आरम्भ कर देगा। मैं उनके भागने के दृश्य का आनन्द लेता हुआ बिल्कुल शान्ति से बैठा हुआ भोजन करता रहा। कुत्ते ने आते ही प्रथम थाली की खीर को खाना

आरम्भ किया। जब तक उस थाली की खीर को उसने पूर्णतया समाप्त न कर लिया, उसने दूसरी थाली की ओर को मुख भी नहीं किया। प्रथम थाली को समाप्त कर वह दूसरी थाली की ओर बढ़ा, दूसरी थाली समाप्त होने पर एक तीसरी थाली मैंने उसके सामने फेंक दी। यह देख कर उसने कृतज्ञता-स्वरूप मुझे देखकर अपनी पूंछ हिला दी। फिर मैंने दो-तीन थालियां उसकी ओर और भी फेंकी। यहां तक कि वह और मैं दोनों ही पेट भर कर रसोई घर से साथ-साथ निकले। वह पूंछ हिलाता हुआ मेरे पीछे-पीछे आ रहा था।

नन्दिश्री—दूसरी परीक्षा क्या थी ?

बिम्बसार—वह बुद्धि की सबसे कठिन परीक्षा थी। पिता जी ने हम सब भाइयों को एक-एक कोरा घड़ा देकर उसे ओस से भर कर लाने को कहा।

नन्दिश्री—अरे, कहीं ओस से भी घड़े भरा करते हैं ?

बिम्बसार—यही तो तमाशा था। सभी राजकुमार अपने-अपने घड़ों को लेकर जंगल में पहुँचे और ओस की एक-एक बूंद को घास से उठा कर घड़े में डालते, किन्तु वह बूंद घड़े में जाते ही सूख जाती।

नन्दिश्री—वह तो सूख ही जाती। इससे तो वह घड़े को वैसे ही लाकर वापिस कर देते तो अच्छा था। आपने उस अवसर पर क्या किया ?

बिम्बसार—मैंने उस घड़े को अपने एक सेवक से उठवा कर प्रथम तो उसको जल में कुछ देर डुबोये रखा, जिससे कोरेपन के कारण जितना जल उसे अपने अन्दर सोखना हो उतना सोख ले। घड़े के साथ जंगल में मैं एक सूती चादर भी ले गया था। उस सूती चादर को घास पर बिछाने से वह ऐसी भीग जाती थी जैसे उसे जल में भिगोया गया हो। फिर मैं उस चादर को अपने घड़े मे निचुड़वा लेता था। चालीस-पचास बार इस प्रकार करने पर मैंने उस घड़े को ओस से भर लिया।

नन्दिश्री—यह तो वास्तव में ही बुद्धि का चमत्कार था। आपकी तीसरी परीक्षा क्या थी ?

बिम्बसार—राजमहल में आग लगा कर यह देखना था कि कौन सा राजकुमार छत्र, चमर, सिंहासन आदि राज्य-चिन्हों को बिना बतलाए हुए

आग में से बचा लाता है। सो उनको भी मैंने बचाया। मैं अपने दो सेवकों को लेकर आग में घुस गया और इन वस्तुओं को बाहिर सुरक्षित निकाल लाया।

नन्दिश्री—किन्तु आपको यह बात सूझी किस प्रकार कि इन्हीं वस्तुओं को आग से निकालना चाहिये ?

बिम्बसार—उसके दो कारण थे। एक तो यह कि मैं जानता था कि राजा मुझी को बनना है, दूसरे, राज्य-चिन्हों की रक्षा करना सबसे बड़ी राज-भक्ति है।

नन्दिश्री—तो इन तीनों परीक्षाओं में सर्वप्रथम आने का आपको क्या पारितोषिक मिला ?

बिम्बसार—यही तो मेरे दुःख का वास्तविक कारण है। किसी को तो परीक्षा पास करने का पुरस्कार मिलता है, किन्तु मुझे परीक्षा पास करने का दण्ड ग्रहण करना पड़ा।

नन्दिश्री—वह किस प्रकार ?

बिम्बसार—पिता ने मुझ पर यह कह कर राजद्रोह करने का दोष लगाया कि मैं अपने पास पाँच सौ सैनिक गुप्त रूप से रखता हूं। यद्यपि मेरे वह पाच सौ सैनिक गुप्त नही थे, फिर भी यह दोष लगा कर मुझे देशनिकाला दे दिया गया।

नन्दिश्री—अच्छा तो आपके हृदय मे यह वेदना है कि आपको बिना अपराध अधिकार-वचित करके दण्ड क्यों दिया गया।

बिम्बसार—हा, अब तुम मेरे हृदय की बात समझीं। राज्य तो में ले ही लूंगा, किन्तु इस दुःख का ध्यान मुझे बराबर बना रहता है।

नन्दिश्री—राज्य आप किस प्रकार ले लेंगे ?

बिम्बसार—मेरा भाई चिलाती स्वभाव का क्रूर है। वह प्रजा पर बहुत अत्याचार कर रहा है। इधर मेरे गुप्तचर तथा मित्र प्रजा में उसके दुर्गुणों तथा मेरे गुणों का बराबर प्रचार कर रहे हैं। वह समय दूर नहीं है जब मैं गिरिव्रज पर सैनिक अभियान करके राजसिंहासन पर अधिकार कर लूंगा।

नन्दिश्री—तो उसके लिये तो सेना चाहिये।

बिम्बसार—सेना तथा सेनापति लोग भी उसके विरोधी हो रहे हैं। मैं ऐसा प्रबन्ध कर रहा हूँ कि राज्य-क्रांति के समय वह सब मेरी सहायता करें; अन्यथा मगध की अनन्त सैनिक संख्या का मुकाबला सैनिक बल से कौन कर सकता है? उनको तो नीति द्वारा ही वश में किया जा सकता है।

नन्दिश्री इस प्रकार वार्तालाप कर ही रही थी कि उसके पेट में जोर से दर्द उठा। तब बिम्बसार बोला—

"प्रिये! यह तो प्रसव वेदना जान पड़ती है?"

नन्दिश्री ने लजा कर सम्मतिसूचक सिर हिलाया। बिम्बसार यह जानकर कमरे से बाहिर चले गये। उनके कमरे से निकलते ही लम्बनखी ने नन्दिश्री की दशा को देखा तो वह सब कुछ समझ गई। उसने तुरन्त दाई को बुला कर नन्दिश्री को सौरिगृह में पहुँचा दिया। थोड़ी देर में ही सारा घर एक सुन्दर बालक के रुदन के उल्लास से भर गया।

सेठ जी दौहित्र के जन्म का समाचार पाकर फूले न समाये। उन्होंने अपने कुल पुरोहित को बुलाकर तुरन्त ही बालक का जातकर्म संस्कार किया। उन्होंने इस प्रसन्नता में अपना खजाना खोल दिया और जी भर दान किया।

ग्यारहवें दिन बालक का नामकरण संस्कार करके उसका नाम अभयकुमार रखा गया। अब वह बालक द्वितीया के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन बढ़ने लगा। यह शीघ्र ही पता चल गया कि बालक असाधारण प्रतिभावाला है। नन्दिश्री स्वयं शिक्षिता तथा संस्कारी महिला थी। उसने पालने में ही अभयकुमार को उत्तम संस्कार देने आरम्भ किये। अभयकुमार जब तीन वर्ष का हुआ तो उसके बालसुलभ आग्रह पर उसको अक्षरारंभ कराया गया। समझा तो यह गया था कि उसका अक्षराभ्यास केवल एक बालक्रीड़ा है और वह समय पाकर आप छूट जावेगा, किंतु उसने तो उसे आरम्भ करके छोड़ने का नाम ही नहीं लिया। क्रमश: वह भली प्रकार लिखना-पढ़ना सीख गया।

अब बिम्बसार उसको शस्त्र-संचालन तथा नीति-शास्त्र की शिक्षा भी देने लगे। सात वर्ष की आयु में अभयकुमार शस्त्र तथा शास्त्र संबन्धी सभी विद्याओं में कुशल बन गया।

१६

चिलाती के अत्याचार

"क्यों शालिभद्र ! आज इतने उदास क्यों हो ?"

"क्या कल के राज्यसभा के दृश्य को देखकर भी तुम प्रश्न करते हो, गुणभद्र !"

शालिभद्र—भाई सम्राट् सम्राट् हैं। उनके गुण-दोषों की आलोचना करना अपना कार्य नहीं है।

गुण—तुम भी शालिभद्र निरे बुद्धू ही रहे। क्या तुम अपने गुरु जी आचार्य कल्पक के अपमान को इस प्रकार सहन कर सकते हो ?

शालिभद्र—गुरु जी का अपमान करनेवाले का तो मैं तुरन्त ही गला काट लूंगा, किन्तु सम्राट् का तो हम कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।

गुणभद्र—यह सोचना भी तुम्हारी भूल है। एक छोटी सी चींटी अपने से सहस्रों गुने हाथी को जान से मार देती है। धूल पर जब पैर रखा जाता है तो वह भी एक बार उड़कर पैर रखने वाले के सिर पर सवार हो जाती है। संसार में छोटे, बड़े सब परिस्थितिवश ही बने हुए हैं। परिस्थिति बदलने पर छोटा बड़ा हो सकता है और बडा छोटा हो सकता है। जो राजा अपने गुरु-तुल्य महामात्य का भरी राजसभा में अपमान कर सकता है वह निश्चय से विनाश के पथ पर अग्रसर हो रहा है। अब तुम सम्राट् चिलाती के राज्य की समाप्ति ही समझो।

शालिभद्र—क्या गुरु जी के भी वही विचार होंगे जो तुम्हारे हैं।

तभी वहां पर एक तीसरे युवक ने आकर कहा—

"उनके विचार यदि ऐसे नहीं होंगे तो उनको अपने विचार बदलने को विवश होना पड़ेगा और यदि वे अपने यह विचार नहीं बदलेंगे तो भी उनका यह पुत्र वर्षकार अपने पिता का इस प्रकार भरी सभा में अपमान सहन करने को तैयार नहीं है। चिलाती के अत्याचार अब सीमा को अतिक्रमण कर चुके हैं। वह बड़ों का मान नहीं करता और उनसे अपमानपूर्ण व्यवहार करता है।

गुणभद्र—इतना ही नहीं, उसके आचरण भी अत्यन्त निन्दित हैं। किसी

सुन्दरी कन्या को देखकर उसको जबर्दस्ती अपने महल में बुलवा लना उसके लिये सामान्य बात है। न्यायासन पर बैठ कर भी वह केवल स्वार्थ बुद्धि से न्याय करता है। उसके पास कंचन तथा कामिनी की घूंस पहुँचाना कुछ अधिक कठिन नहीं है।

शालिभद्र—अरे हां, तुमने अच्छी याद दिलाई। एक दिन जो मैं राजमाता तिलकवती के यहां नित्य पाठ कर रहा था तो राज्यमाता सम्राट् से अपने आचरण सुधारने का अनुरोध कर रही थीं, किन्तु उन्होंने अपनी माता की भी अवज्ञा की थी।

वर्षकार—उसकी अविनय यहां तक बढ़ जावेगी इसका मुझे पता नहीं था। आप लोग मेरे घनिष्ठ मित्र हैं, इसीसे मैं आपको अपनी योजना में सम्मिलित करने को तैयार हूँ। बोलो, आप दोनों मेरा सब प्रकार से साथ दोगे या नहीं?

गुणभद्र—मैं तो भाई आज्ञा पालन में अपने प्राणों का भी उत्सर्ग कर दूंगा।

शालिभद्र—मेरी तो इन बातों से आँखें खुल गईं। मैं भी तुम्हारा सब प्रकार से साथ देने को तथा तुम्हारी आज्ञा पालन करने को तैयार हूँ, फिर भले ही इस कार्य में प्राणों का संकट क्यों न हो।

वर्षकार—अपने निश्चय का साक्षी हम जल तथा अग्नि को बनावें।

इस पर शालिभद्र तथा गुणभद्र ने हाथ में जल लेकर तथा हवनकुण्ड का अग्नि की साक्षी करके यह शपथ ली—

"हम (शालिभद्र तथा गुणभद्र) दोनों इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि मगध की राज्य-क्रान्ति के लिये वयस्य वर्षकार की आज्ञा का सब प्रकार से पालन करेंगे, भले ही उसमें प्राणों का भी संकट क्यों न हो और उनकी प्रत्येक बात को गुप्त रखेंगे।"

इसके पश्चात् उन तीनों ने एक दूसरे का आलिंगन किया। तब वर्षकार बोला,—"अच्छा मित्रो, तो अब मैं आप दोनों को अपनी राज्य-क्रान्ति की योजना बतलाता हूँ जिसके अनुसार आप दोनों को कार्य करना है।"

दोनों—हम सुनने को सहर्ष प्रस्तुत हैं।

वर्षकार—उसके लिये मैंने तीन चार निश्चय किये हैं। प्रथम तुमको उन

पर विचार करना है।

प्रथम, आचार्य कल्पक के इस गिरिव्रज विश्व-विद्यालय को मगध की भावी राज्यक्रान्ति का गुप्त केन्द्र बनाया जावे।

द्वितीय, यह कि चिलाती को पदच्युत किया जावे और

तृतीय, यह कि उसके वास्तविक अधिकारी श्रेणिक बिम्बसार को बुला कर उसे मगध के शासन की बागडोर सौंप दी जावे। क्या आप दोनों को यह प्रस्ताव स्वीकार है?

दोनों—इससे अच्छा दूसरा निश्चय नहीं किया जा सकता।

वर्षकार—तो मित्रो, हम तीनों को अपने-अपने कार्य का विभाजन कर लना चाहिये।

गुणभद्र—यही मेरी भी इच्छा है।

वर्षकार—तुम मित्र, सेनाओं में प्रचार का कार्य अपने ऊपर लो। प्रत्यक सैनिक के मन में चिलाती के अत्याचार का नक्शा जम जाना चाहिये। सैनिक अधिकारियों के मन में भी यह धारणा घर कर जानी चाहिये कि वह अन्याय का पोषण करने के लिये नौकरी कर रहे हैं। किन्तु इस बात का ध्यान रखना कि इस सारे प्रचार में तुम्हारे नाम का किसी को पता न लग।

गुणभद्र—इस बात से आप निश्चित रहें मित्र!

वर्षकार—और तुमको शालिभद्र मैं राजमहल के प्रचार का कार्य देता हूँ। तुम वहां पूजा-पाठ करने दैनिक जाते हो। अतएव तुम अन्तःपुर के प्रत्येक व्यक्ति से सुगमता से मिल सकते हो। तुम को भी स्वयं अलग रहते हुए इसी प्रकार का प्रचार अन्तःपुर में करना है।

शालिभद्र—मैं इस कार्य को सुगमता से कर सकूंगा मित्र।

वर्षकार—यदि आप दोनो इन कार्यो को संभाल लेंगे तो शेष राज्याधिकारियो के मन पर मैं सुगमता से अधिकार कर लूंगा। इस बात का ध्यान रहे कि पिता जी के कान में अपनी योजना की भनक भी न पड़ने पावे। उन से तो मैं समय पर पूर्ण कार्य स्वयं ही सहमत कर के लूंगा।

गुणभद्र—अच्छा, वह गुरु जी आ रहे हैं। इस वार्तालाप को अभी यहीं समाप्त कर दिया जावे।

१७

गिरिव्रज की पुकार

इस प्रकार चिलाती के अत्याचार ज्यों-ज्यों उग्र से उग्रतर होते जाते थे त्यों-त्यों गिरिव्रज निवासियों का असन्तोष भी अधिकाधिक बढ़ता जाता था। सेना में प्रत्येक व्यक्ति चिलाती से घृणा करने लगा। सैनिक तथा सेनाधिकारी सब यह मना रहे थे कि कब श्रेणिक बिम्बसार आवें और वह उसे अपना सम्राट् स्वीकार करें। इस निश्चय के लिये वह सामूहिक रूप से गुणभद्र तथा वर्षकार के सम्मुख शपथबद्ध हो चुके थे।

राजमहल में भी चिलाती के लिये कोमल भावनाओं का अभाव था। वहां कोई रानी ऐसी नहीं थी, जिसे उसके हाथों अपमानित न होना पड़ा हो। अतएव वहां भी सब की इच्छा यही थी कि यह आफत उनके सिर से किसी प्रकार टले। किन्तु राजमहल में श्रेणिक बिम्बसार के पक्ष में कुछ भी प्रचार नहीं किया गया, क्योंकि वहां चिलाती की माता से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वह अपने पुत्र को गद्दी से उतारने में किसी प्रकार का सहयोग देगी।

नगर-निवासियों में इस आन्दोलन का निश्चय ही सेना से भी अधिक प्रचार हुआ। उन पर तो चिलाती के अत्याचार सीमा को लांघ चुके थे। नगर के बड़े-बड़े श्रेष्ठी चिलाती को सिंहासन-च्युत करने के लिये बड़ी-बड़ी धन-राशि भी खर्चने को तैयार थे।

इस प्रकार सब ओर से आन्दोलन को सफलता प्राप्त होने पर आन्दोलकों की एक बैठक गिरिव्रज विश्व-विद्यालय में की गई। उसमें निश्चित किया गया कि पांच व्यक्तियों का एक प्रतिनिधि मण्डल वेणपद्म नगर जाकर राजकुमार श्रेणिक बिम्बसार को गिरिव्रज आने का निमन्त्रण दे और उनके आने पर उनको साम्राज्य का शासन सौंप दिया जावे। महामात्य कल्पक तथा सेनापति

भद्रसेन भी चिलाती के विरुद्ध हो चुके थे। अतएव इस बैठक में उन्होंने भी भाग लिया। बिम्बसार के पास भेजने के लिये निम्नलिखित पांच व्यक्तियों का इस बैठक में निर्वाचन किया गया—

१. महामात्य कल्पक,
२. सेनापति भद्रसेन,
३. ब्रह्मचारी वर्षकार,
४. नगरसेठ धनञ्जय तथा
५. नगराध्यक्ष कुसुमकान्त।

ये पांचों व्यक्ति अपने-अपने रथों पर बैठकर भिन्न-भिन्न मार्ग से एक ही दिन गिरिव्रज से निकले। आगे चल कर नन्दिग्राम के बाद वे पांचो एक साथ हो गए। उन्होंने नदी को पार करके वेणपद्म नगर में प्रवेश किया।

उधर इस सारे आन्दोलन का रत्ती-रत्ती भर समाचार राजकुमार को भी मिलता रहता था। वे जानते थे कि उनको गिरिव्रज पर निकट भविष्य में ही चढ़ाई करनी होगी। अतएव उन्होंने अपने गुप्तचरों द्वारा अपने अंग-रक्षक पांच सौ सैनिको को अपने पास बुलवा लिया था। गिरिव्रज के प्रतिनिधि-मण्डल ने नन्दिश्री के द्वार को सैनिक प्रहरियों से रक्षित पाकर रक्षकों से अनुरोध किया कि वह गिरिव्रज से एक प्रतिनिधि-मण्डल के आने का समाचार राजकुमार के पास पहुँचा दें।

राजकुमार ने जो उनके आने का समाचार सुना तो उनको बड़े आदर से अन्दर बुलवाया। मार्ग तो लम्बा था ही, अतएव सेठ जी ने उनका अतिथिसत्कार भी किया। उनके रथों को भी यथास्थान ठहरा दिया। मार्गश्रम दूर होने पर राजकुमार ने उन पांचों व्यक्तियों के साथ अपने कमरे में भेंट की।

राजकुमार का अभिवादन करने के बाद उनमें इस प्रकार वार्तालाप हुआ ?

सेठ धनञ्जय—राजकुमार ! आपके आने के बाद मगध राज्य अनाथ हो गया। चिलाती उस पर इतनी क्रूरता से शासन कर रहा है कि नगर में कोई व्यक्ति अपने सम्मान, धन तथा जीवन को सुरक्षित नहीं समझता। अब आपकी सहायता के बिना हमारा काम नहीं चल सकता।

राजकुमार—तो आप मुझे आज्ञा दें कि मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

कल्पक—राजकुमार ! नगर का पूर्णतया संगठन कर लिया गया है। आप अविलम्ब गिरिव्रज पर चढ़ाई करके वहां के शासन को हस्तगत कर लीजिये।

राजकुमार—किन्तु मेरे पास तो पांच सौ सैनिक ही हैं। इतने थोड़े सैनिकों को लेकर मैं चिलाती पर किस प्रकार चढ़ाई कर दूं ?

भद्रसेन—सेना की चिन्ता आप न करें, राजकुमार !

राजकुमार—उसकी चिन्ता क्यों न की जावे ?

भद्रसेन—सेना का एक-एक व्यक्ति यह शपथ ले चुका है कि वह राजकुमार बिम्बसार के विरुद्ध शस्त्र उठाना तो दूर, उनके आते ही उनकी आधीनता स्वीकार कर लेगा।

कुसुमकान्त—नागरिक तथा शासन-अधिकारी भी इसी प्रकार की सपथ ले चुके है।

वर्षकार—राजकुमार ! आपके पास तो पांच सौ सैनिक हैं। यदि आपके पास इतने सैनिक भी न होते तब भी आपको गिरिव्रज का शासन हस्तगत करने में किसी कठिनाई का सामना करना न पड़ता। आप तो केवल यह 'हां' भर कर लें कि आप वहां आक्रामक के रूप में आकर शासनभार ग्रहण करने के लिये तैयार हैं। आप यह निश्चय रखें कि आपको रक्त की एक बूंद बहाए बिना ही मगध का राज-सिहासन मिल जावेगा।

राजकुमार—आप लोग स्वयं ही सोच लीजिये। वैसे मगध का समस्त राजकुल नाम को तो आपका शासक है, किन्तु व्यवहार में आपका सेवक है। मुझे आपकी सेवा करने में कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु आप मेरी अल्पशक्ति, अपनी संगठन-कुशलता तथा चिलाती की सामर्थ्य तीनों की तुलना करके यह देख लें कि क्या चढ़ाई करने का यही सबसे अधिक उपयुक्त समय है।

वर्षकार—निश्चय से राजकुमार ! चढ़ाई करने के लिये इससे अधिक उपयुक्त अवसर आपको नहीं मिल सकता।

राजकुमार—यदि आप सबकी ऐसी ही इच्छा है तो मुझे भी आपकी बात स्वीकार है।

इस पर सबके सब हर्ष से एक साथ बोल पड़े —

'सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय !'

तब वर्षकार बोला—

"अच्छा, अब हम जाते हैं और जाकर आपके उपयुक्त स्वागत का प्रबन्ध करते हैं। आप अपने सैनिकों को लेकर आज रात को ही गिरिव्रज के लिये इस प्रकार प्रस्थान कर दें कि दिन निकलने से पूर्व गिरिव्रज में प्रवेश करें। आपको नगर के सभी द्वार खुले मिलेंगे। आप जाते ही नगर, राजसभा तथा राजमहल पर अधिकार कर लें। चिलाती आपके आते ही भागने का यत्न कर सकता है। वह यदि भागे तो उसे गिरफ्तार करने का यत्न न किया जावे। क्योंकि हमारी योजना उसके भागने पर और भी अच्छी तरह सफल होगी।"

राजकुमार—मेरा विचार भी चिलाती को गिरफ्तार करने का नहीं है। उसको तो तभी गिरफ्तार करना चाहिये जब उसका नाना उसको मगध के विरुद्ध सहायता देता हुआ पाया जावे।

भद्रसेन—जी हां, हम सबका भी ऐसा ही विचार है।

कल्पक—अच्छा, अब हमको गिरिव्रज जाने की अनुमति दी जावे।

राजकुमार—तो आप लोग मेरा अभिवादन स्वीकार करें।

सब—सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय हो !

इसके पश्चात् वे पांचों अपने-अपने रथों पर बैठकर गिरिव्रज को चले गए।

१८

गिरिव्रज पर आक्रमण

गिरिव्रज के प्रतिनिधि-मण्डल के चले जाने के बाद राजकुमार ने अपनी अंग-रक्षक सेना को आज्ञा दी कि चलने की तैयारी इस प्रकार की जावे कि पहर भर रात बीतने पर गिरिव्रज को प्रस्थान कर दिया जावे। अभयकुमार इस समय सात वर्ष का हो चुका था। उन्होंने उसको यह आदेश दिया कि वह माता सहित अभी वहीं ठहरे और कुछ दिन बाद गिरिव्रज आवे।

इस प्रकार पूर्ण प्रबन्ध करके राजकुमार ने पहर भर रात बीतने पर अपने पांच सौ सैनिकों को लेकर गिरिव्रज के लिये प्रस्थान किया। उनके सैनिकों में इस समय बड़ा भारी उत्साह था। उन्होंने राजकुमार के निर्वासन काल भर बड़ा कष्ट उठाया था। उनको आशा थी कि गिरिव्रज पर अधिकार होने पर उनको अच्छे से अच्छा जीवन व्यतीत करने का अवसर मिलेगा। यद्यपि राजकुमार जानते थे कि गिरिव्रज पर अधिकार करते समय उनको विशेष कठिनाई न होगी, किन्तु उनके सैनिक यह निश्चय किए हुए थे कि वह अपने से दसगुनी सेना का मुकाबला करने में भी पीछे नहीं हटेंगे।

वह लोग नदी, खेतों तथा नन्दिग्राम का पीछे छोड़ते हुए पहर भर रात रहते गिरिव्रज के द्वार पर जा पहुँचे। वहां उन्होंने द्वारपाल से द्वार खोलने को कहा, तो उसने पूर्व निश्चय के अनुसार तुरन्त फाटक खोल दिया। राजकुमार ने नगर में प्रवेश करके सर्वप्रथम राज्यसभा तथा राजमहल पर अधिकार किया। नगर के सब फाटकों पर उनके अपने विश्वासी रक्षक रखे गए। दिन निकलने से पूर्व उनका रक्त की एक भी बूंद बहाए बिना सारे नगर पर अधिकार हो गया।

इस गड़बड़ में चिलाती की आंख खुली तो उसने महल की सारी व्यवस्था को बदली हुई पाया। उसने तुरन्त एक दासी को बुलाकर उससे पूछा—

"यह गोलमाल कैसा हो रहा है ?"

"महाराज ! राजकुमार बिम्बसार ने आक्रमण करके सारे नगर पर अधिकार कर लिया।"

"उसने अधिकार भी कर लिया और मै सोता ही रह गया।"

"ऐसा ही है महाराज !"

"राजमहल के प्रधान रक्षक को बुला।"

"राजमहल तथा राज्यसभा पर भी उनका अधिकार हो गया है। अभी कुछ सैनिक आपको गिरफ्तार करने के सम्बन्ध में आपस में परामर्श कर रहे हैं।"

"सेना ने उनका मुकाबला नहीं किया।"

"राज्य की सारी सेना ने राजकुमार बिम्बसार की आधीनता स्वीकार कर ली, सम्राट् !"

"अरी, तो फिर मै सम्राट् कैसा ? तब तो यहां से तुरन्त भागना चाहिये, अन्यथा गिरफ्तार होकर कुत्तों की मौत मरना होगा।"

तब तक द्वार पर कुछ लोगों के आने का शब्द हुआ। वे लोग जोर-जोर से चिल्ला रहे थे—'चिलाती को पकड़ कर फांसी पर लटका दो' इत्यादि-इत्यादि।

चिलाती ने जो यह सुना तो उसने शीघ्रता से भाग कर अपने वस्त्र लेकर गुप्त द्वार में प्रवेश किया। वहां जाकर उसने प्रथम तो उस द्वार को अन्दर से बन्द किया और फिर अपने वस्त्र पहिन तथा शस्त्र लगा कर उसी गुप्त मार्ग से गिरिव्रज के बाहिर चला गया।

इस समय प्रकाश अच्छी तरह फैल गया था और नगर-निवासी बाहिर नित्य-कर्म के लिये जा रहे थे। चार युवकों की एक टोली भी उस समय शस्त्र बांधे नगर से बाहिर टहलने को जा रही थी। उनमें से एक बोला—

"यार, यह तो बड़े आश्चर्य की बात रही। रात-रात में नगर में एक ऐसी जबर्दस्त राज्य-क्रान्ति हो गई कि राज्य-परिवर्तन हो गया और हम नागरिकों को पता तक भी न चला।"

दूसरा—आश्चर्य तो यह है कि हम चिलाती के राज्य में सोये थे और

बिम्बसार के राज्य में सोकर उठे।

तीसरा—किन्तु यह पता नहीं चला कि चिलाती का क्या हुआ? वह मेरे सम्बन्धी की एक विधवा देवी का सतीत्व भंग कर चुका है। मुझे यदि वह कहीं मिल जावे तो मैं तो उसके शरीर की बोटी-बोटी काट दूँ।

चौथा—अरे भाई, नगर में ऐसा कौन है, जिसको उसके हाथों कष्ट उठाना नहीं पड़ा। उससे तो सभी बदला लेने पर तुले हुए हैं।

पहला—भाई, चिलाती अभी तक पकड़ा तो गया नहीं। यदि वह पकड़ा जाता तो नगर में शोर मच जाता। निश्चय ही वह गुप्त मार्ग के द्वारा गिरिव्रज से भागेगा।

तीसरा—तब तो भाई उसे तलाश करना चाहिये। क्या तुममें से किसी को किसी गुप्त मार्ग का पता है?

दूसरा—अरे, पता तो नहीं, किन्तु यह सुना है कि एक गुप्त मार्ग कहीं यहीं मैदान में आकर खुलता है।

चौथा—(एक ओर संकेत करके) अरे वह देखो, वह एक आदमी धीरे-धीरे जमीन में से निकल रहा है। कहीं वही तो चिलाती नहीं है?

पहला—हां, भाई वही है। चलो, उसे पकड़कर उसका काम तमाम कर दें।

उसके यह कहते ही वे चारो उसकी ओर को दौड़ पड़े। उनमें से एक ने जाते ही तलवार का ऐसा हाथ मारा कि चिलाती का सिर धड़ से अलग हो गया। उसकी लाश को वहीं छोड़कर वे चारों अपने खून के धब्बे साफ करके वहां से नगर में लौट आए। यहां आने पर उन्होंने यह समाचार नगर में फैला दिया कि चिलाती का मृत शरीर नगर के बाहिर मैदान में पड़ा हुआ है। महामात्य कल्पक ने इस संवाद को सुनकर उसकी लाश को मँगवाकर उसे सार्वजनिक प्रदर्शन के लिये नगर के मुख्य द्वार पर रखवा दिया। इस प्रकार मगध में कुछ ही घंटों में एक ऐसी क्रान्ति हो गई, जैसी इतिहास में बहुत कम सुनने में आती है।

१६

राज्यारोहण

गिरिव्रज की राज्यक्रांति के पूर्णतया सफल होने पर श्रेणिक बिम्बसार का राज्याभिषेक उसी दिन करने का निश्चय किया गया। इस कार्य के लिये राज्य-महल तथा राज्यसभा सभी को आनन-फानन में सजाया गया। उसमें सभी योग्य आसनों के लग जाने पर मगध के गिरिव्रज स्थित अनुगत राजा, क्षत्रप, माण्डलिक, गणपति, निगम, श्रेष्ठी, गृहपति, सामन्त, जानपद और पौर सभी एकत्रित हो गए। राज्यसभा का विशाल प्रांगण ठसाठस भर गया और वहां तिल धरने को भी स्थान शेष न रहा।

अचानक रनवास की ओर का फाटक खुला और राजकुमार श्रेणिक-बिम्बसार राज्यसभा के योग्य भड़कीले वस्त्र पहिने वहां से आते हुए दिखलाई दिये। उनके दाहिनी ओर महामात्य कल्पक, बाईं ओर प्रधान सेनापति भद्रसेन तथा पीछे ब्रह्मचारी वर्षकार, शालिभद्र तथा गुणभद्र चल रहे थे। राजकुमार के आते ही जनता ने उच्चस्वर से

"राजकुमार श्रेणिक बिम्बसार की जय"

बोल कर सारे सभा-भवन को अपने शब्द से गुंजा दिया। इन लोगों के बैठ जाने पर महामात्य कल्पक ने खड़े होकर कहा—

"राज-सभासद, राज्याधिकारी, ब्राह्मण, पौर तथा जानपद मेरे निवेदन को ध्यान पूर्वक सुनें। यह राजकुमार श्रेणिक बिम्बसार आज हमारे सौभाग्य-वश यहां उपस्थित हैं। चिलाती के अत्याचारों से जब सारा राज्य त्राहि-त्राहि कर रहा था तब आपके प्रतिनिधियों ने राजकुमार की सेवा में उपस्थित होकर प्रार्थना की कि वे चिलाती से मगध के राज्य-सिंहासन को छीन लें। आप जानते हैं कि राज्य-सिंहासन पर वास्तव में इनका ही अधिकार होना चाहिये था। महाराज भट्टिय उपश्रेणिक ने प्रथम तो इनके अधिकार को मान-

कर इन्हें युवराज बनाया, किन्तु बाद में चिलाती की माता से वचनबद्ध होने के कारण इनको देश-निकाला दे दिया। इन महानुभाव का हृदय इतना विशाल है कि इन्होंने मगध के पिछले अपराध पर फिर भी ध्यान न देकर उसकी आर्त पुकार पर तुरन्त ध्यान दिया। इनकी संगठन-शक्ति तथा प्रजा-पालन में तत्परता का यह ज्वलंत प्रमाण है कि इन्होंने रक्त की एक भी बूंद बहाए बिना रातोंरात मगध के शासन-तन्त्र पर अधिकार कर लिया। इन्होंने यह पहिले ही निश्चय कर लिया था कि चिलाती को न तो जान से मारा जावे और न गिरफ्तार किया जावे, वरन् उसे भाग जाने का पूरा अवसर दिया जावे। किन्तु उसने अपने अत्याचारों से अपने अनेक शत्रु बना लिये थे। इसी-लिये जब चोर दरवाजे से निकल कर वह नगर के बाहिर मैदान में पहुँचा तो किसी ने उसकी गर्दन काट दी। इस समय उसका भी अन्त्येष्टि संस्कार किया जा रहा है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राजकुमार श्रेणिक बिम्बसार से अधिक योग्य मगध को दूसरा शासक नही मिल सकता। अस्तु, यदि आपकी सहमति हो तो इनको मगध का राजमुकुट पहिनाया जावे।"

महामात्य के इस कथन पर सब ओर से

"राजकुमार श्रेणिक बिम्बसार की जय' का गगनभेदी शब्द हुआ। इस पर महामात्य कल्पक ने खड़े होकर प्रश्न किया—

"यदि मेरे इस प्रस्ताव का कोई विरोधी हो तो वह अपना हाथ खड़ा कर दे।"

एक भी हाथ विरोध में खड़ा न होने पर महामात्य ने उठकर फिर कहा—

"इस का अभिप्राय यह है कि आप सब सर्व-सम्मति से राजकुमार श्रेणिक को मगध सम्राट् बनाना चाहते हैं। अतएव मैं महर्षि मेधातिथि गौतम से प्रार्थना करता हूँ कि वे राज्याभिषेक की विधि को आरम्भ करें।"

महर्षि गौतम एक अत्यन्त वृद्ध तपस्वी थे। उनकी आयु कई सौ वर्ष की कही जाती थी। लोग कई पीढ़ियों से उनको इसी आकार में देखते आते थे। वह खड़े होकर बोले—

"हे विश्वदेव आप सुनें ! हे ब्राह्मणो आप सुनें ! हे मनुष्यो आप सुनें ! हम देव श्रेणिक बिम्बसार का राज्याभिषेक करते हैं।"

उस समय बहुत से शंख एक साथ बज उठे। साथ ही वेदपाठ होने लगा। मगध के कई आधीन राजा श्वेत छत्र हाथ में लेकर सम्राट् के पीछे खड़े हुए। कई एक आधीन सामंत उन पर चँवर डुलाने लगे। फिर शंखों में जल भर-भर कर उससे सम्राट् का अभिषेक किया गया।

प्रथम भागीरथी के जल से, फिर सोन नदी के जल से, फिर समुद्र के जल से, फिर गिरिव्रज के बाईसों ठंडे तथा उष्ण जल के स्रोतों के जल से, फिर कुएँ के जल से, फिर मगध राज्य के विभिन्न तीर्थों के जल से पृथक्-पृथक् मन्त्रों का पाठ करके सम्राट् का अभिषेक किया गया।

इसके पश्चात् अग्न्याधान करके अग्निहोत्र किया गया। इसके पश्चात् सम्राट् की बाहु पकड़ कर उन्हें अग्नि की प्रदक्षिणा कराई गई। इसके पश्चात् सोने का राजमुकुट उनके सिर पर रखा गया। गौतम ऋषि ने सम्राट् से कहा—

"तू ओज है, अमृत है और विजय है।"

इसके पश्चात् सम्राट् को सिंहासन पर बिठलाया गया। उस समय अनेक शंख फिर जोर से बजाए गए और अभिषेक-क्रिया समाप्त हुई।

राज्याभिषेक हो चुकने पर महामात्य कल्पक ने खड़े होकर निवेदन किया—

"मगध सम्राट् तथा सारी सभा मेरे निवेदन को सुने। आप जानते हैं कि मैं अत्यधिक वृद्धावस्था के कारण बहुत समय से अपने महामात्य पद से उपराम होने की सम्राट् से प्रार्थना करता आ रहा था। अब मेरा सुयोग्य पुत्र वर्षकार इस योग्य हो गया है कि वह इस सेवा का सम्पादन करे। मेरा प्रस्ताव है कि मुझे इस पद से मुक्त करके मेरे पुत्र वर्षकार को इस पद पर नियुक्त किया जावे।"

तब सम्राट् बोले—

"इसमें सन्देह नहीं कि मित्र वर्षकार इस पद के सर्वथा योग्य हैं। किंतु हम आर्य कल्पक के सत्परामर्श से भी वंचित नहीं होना चाहते। आर्य कल्पक यदि साम्राज्य के लिये सदा उपलब्ध होने का वचन दें और पौर-जानपदों

की यह सभा आर्य वर्षकार की नियुक्ति को स्वीकार करे तो मुझे उनको कार्य-मुक्त करके आर्य वर्षकार को महामात्य पद देने में कोई आपत्ति नहीं है।"

इस पर कल्पक बोले—

"मेरी इच्छा है कि मैं शीघ्र ही संन्यास लेकर वन को चला जाऊँ, किन्तु जब तक मैं संन्यास नहीं लूंगा तब तक सम्राट् के निमन्त्रण पर अथवा वर्षकार के सम्मति पूछने पर मैं साम्राज्य सेवा के लिये सदा उपस्थित रहने का वचन देता हूँ।"

यह कहकर उन्होंने महामात्य पद की तलवार सम्राट् के चरणों में रख दी।

"सम्राट् ! अब मैं यहां उपस्थित पौरजानपदों तथा सभी सभासदों से यह प्रश्न करता हूँ कि क्या वह आर्य वर्षकार की महामात्य पद पर नियुक्ति को स्वीकार करते हैं।"

इस पर बहुत सी आवाजें एक साथ आईं—'हम को स्वीकार है। हम को स्वीकार है।'

तब सम्राट् फिर बोले—"यदि किसी व्यक्ति को इस नियुक्ति पर आपत्ति हो तो वह अपना हाथ ऊँचा कर दे।"

इस पर किसी ने भी अपना हाथ ऊँचा नहीं किया। सम्राट् फिर बोले—

"पौरजानपद सर्व-सम्मति से आर्य वर्षकार की महामात्य पद पर नियुक्ति को स्वीकार करते हैं। आर्य वर्षकार ! मैं आपको इस विशाल मगध साम्राज्य का महामात्य नियुक्त करता हूँ। आप महामात्य पद की इस तलवार को ग्रहण करें।"

यह कहकर सम्राट् ने रत्नजटित कोषवाली तलवार अपने हाथ से वर्षकार के हाथ में दे दी। वर्षकार ने उस तलवार को हाथ में लेकर कहा—

"मैं आर्य कल्पक का पुत्र वर्षकार सूर्य, अग्नि तथा इस शस्त्र की शपथ लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार, उनके उत्तराधिकारियों तथा मगध साम्राज्य की मैं सदा ही महामात्य के रूप में सब प्रकार से भक्ति-

पूर्वक सेवा करता रहूँगा।"

इसके पश्चात् प्रधान सेनापति भद्रसेन ने शस्त्र हाथ में लेकर कहा—

"मैं भद्रसेन सूर्य, अग्नि तथा शस्त्र की शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ कि सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार, उनके उत्तराधिकारियों तथा मगध साम्राज्य की मैं सदा प्रधान सेनापति के रूप में सब प्रकार से भक्तिपूर्वक सेवा करूँगा।"

उनके पश्चात् राज्य के अन्य सभी अधिकारियों ने सम्राट् के प्रति राजभक्ति की शपथ ली।

इस प्रकार राज्यारोहण विधि के समाप्त होने पर सम्राट् एक विशाल जुलूस के साथ हाथी पर बैठकर सारे गिरिव्रज में घूमे। उस समय उनके सिर पर राजमुकुट लगा हुआ था। एक सामंत उनके सिर पर छत्र लगा रहा था तथा अन्य दो सामंत उनके पीछे बैठे हुए उन पर चँवर डुला रहे थे। नगर की परिक्रमा करके सम्राट् उसी जुलूस के रूप में नगर के उत्तर की ओर के मैदान में पहुँचे। यहां मगध की सारी सेनाएँ एकत्रित खड़ी हुई थीं। इस समय तक उनका प्रत्येक सैनिक तथा सेनाधिकारी सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के प्रति राजभक्ति की शपथ ले चुका था। सम्राट् के मैदान में पहुँचने पर शाही सेनाओं ने सम्राट् का जय-जयकार करके उनको सैनिक रूप से अभिवादन किया। इसके पश्चात् सम्राट् उसी प्रकार के जुलूस में वापिस राजमहल आए।

२०

नन्दिग्राम पर कोप

गिरिव्रज के इस सारे वृत्तान्त को उसी दिन सम्राज्ञी नन्दिश्री के पास भिजवा दिया गया। इस संवाद को सुनकर सेठ जी ने भारी प्रसन्नता मनाई। रात को यहां तथा गिरिव्रज में प्रत्येक घर में असंख्य दीपक जलाकर खुशी मनाई गई।

अगले दिन सम्राट् ने राज्यसभा में बैठकर सारे साम्राज्य के कार्य का हिसाब पदाधिकारियों से लिया। उसी हिसाब में वह धन भी लिखा हुआ था, जो राज्य की ओर से नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को अतिथि-सेवा के लिये दिया जाता था। तब सम्राट् बोले—

"मैं निर्वासित अवस्था में नन्दिग्राम जाकर स्वयं यह देख आया हूँ कि वहां के ब्राह्मण इस धन का सदुपयोग नहीं करते। इस धन के दिये जाने का प्रयोजन यह है कि उस ग्राम में जाने वाले प्रत्येक अतिथि को इस धन से निःशुल्क भोजन दिया जावे। किन्तु वहां के ब्राह्मण इस धन का उपयोग केवल अपने आदमियों के लिये करते हैं और बाहिर के अतिथियों को इससे भोजन नहीं दिया जाता, यहां तक कि उन्होंने हमको भी भोजन देने से इन्कार कर दिया था। अतएव इन ब्राह्मणों को पकड़ कर राजदण्ड देना चाहिये।"

इस पर वर्षकार बोले—

"सम्राट् का कथन बिल्कुल ठीक है। किन्तु महाराज स्वयं विचार करें कि कल ही सिंहासन पर बैठकर आज अगले ही दिन आपका किसी पर कोप करना उचित नहीं है। यदि आप नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को दण्ड ही देना चाहते हैं तो उन पर कुछ और अपराध लगा कर उन्हें दण्ड दें।"

बिम्बसार—हां, वर्षकार! तुम्हारी बात ठीक है। अच्छा, उनके पास एक बकरा तोल कर भेज दो और कहला दो कि इसको खूब खिलाया-पिलाया जावे।

उसको एक सप्ताह बाद वापिस मँगवाया जावेगा। यदि तनिक भी वह बकरा घटा या बढ़ा तो ग्राम के सभी ब्राह्मणों को राज-दण्ड देकर उनसे गांव छीन लिया जावेगा।

वर्षकार ने एक बकरे को तुलवाकर इसी राज्याज्ञा के साथ नन्दिग्राम भिजवा दिया। नन्दिग्राम में उस समय एक उत्सव मनाया जा रहा था। राज-सेवकों के साथ एक बकरा आने के समाचार से ग्राम भर में खलबली मच गई। राज-सेवक सीधे गांव के मुखिया तथा धर्मशाला के प्रबन्धक नन्दिनाथ के घर पर गए। उन्होंने वहां जाकर उससे कहा—

"विप्रवर नन्दिनाथ! सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार ने आपके पास यह बकरा तोल कर भेजा है और आज्ञा दी है कि आपको जो राज्य की ओर से अतिथि-दान के लिये द्रव्य मिलता है उसी में से इस बकरे को प्रतिदिन खूब खिलाया-पिलाया जावे। इसको लेने के लिये हम एक सप्ताह बाद आवेंगे। उस समय इस बकरे को फिर तोला जावेगा। यदि तोल में उस समय यह तनिक भी घटा या बढ़ा तो आपसे नन्दिग्राम छीन कर देयद्रव्य का देना भी आपको बन्द कर दिया जावेगा।"

नन्दिनाथ राजसेवकों के इस कथन को सुनकर एकदम घबरा गए। वह उनकी बहुत खुशामद करके कहने लगे—

"राजपुरुषो, हम ब्राह्मण है। ब्राह्मण सभी की सहायता का पात्र होता है। अतएव आप हमको कम से कम यह तो बतला दो कि इस आपत्तिसे छूटने का क्या उपाय है?"

इस पर राजपुरुष बोले—

"विप्रवर! हम इसमें आपकी कुछ भी सहायता नहीं कर सकते और न कोई सम्मति ही दे सकते हैं। क्योंकि यह आज्ञा किसी सामान्य अधिकारी की न होकर स्वयं सम्राट् द्वारा दी गई है। यदि आप इस आपत्ति से छुटकारा चाहते हैं तो किसी प्रकार सम्राट् को प्रसन्न करें। इसके अतिरिक्त अन्य उपाय संभव नहीं है।"

राजपुरुष यह कह कर गिरिव्रज लौट गए। इस घटना से नन्दिग्राम का

उत्सव शोक-सभा के रूप में परिणत हो गया। अब तो ग्राम के प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का पता लग गया कि नन्दिग्राम पर सम्राट् का कोप हुआ है। सभी के चेहरों पर हवाइयां उड़ने लगीं। सारे गांव में शोक छा गया, किन्तु सब जानते थे कि जब ग्राम पर राजा का कोप हुआ है तो वह न जाने किस रूप में प्रकट होवे।

इधर नन्दिग्राम में शोक मनाया जा रहा था उधर सेठ इन्द्रदत्त वेणपद्म नगर से अपनी पुत्री नन्दिश्री तथा दौहित्र अभयकुमार को साथ लेकर गिरिव्रज जा रहे थे। उनके साथ अनेक दासी-दास थे और लगभग पचास सैनिक भी रक्षक के रूप में थे। सेठ इन्द्रदत्त तथा नन्दिश्री रथ में बैठे हुए थे और राजकुमार अभय घोड़े पर बैठा हुआ चल रहा था। वेणपद्म नगर से चलते-चलते जब ये लोग नन्दिग्राम आए तो दिन छिपने लगा। सेठ इन्द्रदत्त ने आज्ञा दी कि आज की रात यहीं विश्राम किया जावे। नगर के बाहिर एक मैदान में इन्होंने अपनी सवारियों को उतार कर तम्बू लगा दिये। सैनिक भी अपनी-अपनी कमर खोलकर भोजन-पानी का प्रबन्ध करने लगे। दासियों ने सेठ इन्द्रदत्त तथा महारानी नन्दिश्री के लिये सब प्रबन्ध कर दिया। तब राजकुमार अभय दो चरों को साथ लेकर गांव की शोभा देखने को निकला। किन्तु गांव में घुसते ही उसको प्रत्येक गांववाले का मुख उदास दिखलाई दिया। अभयकुमार सारे गांव में घूम कर गांव की चौपाल पर भी गया। वहां नन्दिनाथ बैठा हुआ अत्यन्त करुण स्वर में इस प्रकार विलाप कर रहा था :

"सारे भारत में ब्राह्मणों का मान है। उनको किसी प्रकार का भी दण्ड नहीं दिया जाता। किन्तु मगध ही एक ऐसा देश है, जहां निरपराध ब्राह्मणों को भी दण्ड दिया जाता है।"

राजकुमार अभय उसके यह शब्द सुनकर तुरन्त उसके पास जाकर बोला—

"तुमको क्या कष्ट है विप्रवर ! तुम्हारे ऊपर किस प्रकार का राज-दण्ड आ रहा है। तनिक मैं भी तो सुनूं।"

नन्दिनाथ अभयकुमार के रूप-रंग तथा वस्त्रों से यह समझ गए कि वह एक राजकुमार है। अतएव उन्होंने उनसे विनय-पूर्वक यह कहना आरंभ किया।

"राजकुमार ! अभी-अभी कुछ समय पूर्व गिरिव्रज से दो राजसेवक मुझ को यह बकरा देकर सम्राट् की यह आज्ञा सुना गए हैं कि इस बकरे को प्रतिदिन खूब खिलाया-पिलाया जावे । इसे तोल कर दिया जाता है और तोल कर ही इसे सात दिन बाद लिया जावेगा । यदि यह तोल में लेशमात्र भी घट या बढ़ गया तो हम लोगों से गांव छीन कर हमको राजदण्ड दिया जावेगा । राजकुमार ! इस गांव के हम समस्त ब्राह्मण आपकी शरण है । आप हमारी राज-कोप से रक्षा करें ।"

अभयकुमार—ब्राह्मण ! मै आपको अभय देता हूँ । आप चिन्ता न करें । मैं आपको एक ऐसी युक्ति बतलाता हूँ जिससे आप राजकोप से इस बकरे के विषय में बच जावेंगे । आप इस बकरे को दैनिक खूब खिलाया तथा पिलाया करें । केवल सायंकाल क समय इसको केवल दो घड़ी के लिये एक भेड़िये के सामने बांध दिया करे । इससे उसका खाया-पिया सब बराबर हो जाया करेगा ।

यह सुनकर ब्राह्मण लोग हाथ जोड़कर अभयकुमार के सामने खड़े हो गए और बोले—

"यदि राजकुमार ! आपने हमको अभयदान दिया है तो आप हमारी इतनी प्रार्थना और स्वीकार करलें कि जब तक हमारे ऊपर सम्राट् का कोप शान्त न हो जाव तब तक आप इस गांव से न जावें ।"

अभयकुमार—ब्राह्मणों ! आप को मैं अभय कर चुका । आपकी इच्छानुसार आपकी आपत्ति का निवारण होने तक मैं आपके गाव क बाहिर अपने शिविर में ही रहूँगा । आप निश्चिन्त रहें ।

इस पर ब्राह्मणों ने राजकुमार की बड़ी प्रशंसा की । उन्होंने राजकुमार के बतलाए अनुसार बकरे को खूब खिलाया-पिलाया और यत्न-पूर्वक एक भेड़िये को पकड़वाकर दो घड़ी के लिये बकरे को उसके सामने बांध दिया ।

अभयकुमार वहा से चलकर सीधा अपने शिविर में आया । वह आकर अपनी माता से बोला—

"माता ! हम लोगों को अभी कुछ समय तक इसी नन्दिग्राम में रहना होगा । पिता का इस ग्राम पर कोप हुआ है । उन्होंने इस ग्राम में तोल कर

एक बकरा भेजा है और आज्ञा दी है कि उसको खूब खिलाया-पिलाया जावे। यदि सात दिन बाद वह बकरा तोल में तनिक भी घट या बढ़ गया तो सारे गांव को दण्ड दिया जावेगा।

नन्दिश्री—तो तुमने गांववालों की क्या सहायता की बेटा !

अभय—माता, मैं उनको बतला आया हूँ कि वह बकरे को खूब खिला-पिला कर केवल दो घड़ी के लिये प्रतिदिन एक भेड़िये के सामने बांध दिया करें।

नन्दिश्री—वाह-वाह पुत्र ! तुमको यह युक्ति अच्छी सूझी।

अभय—माता ! यह सब आपकी ही तो दी हुई है। हां, उन्होंने एक प्रार्थना मुझसे यह की है कि जब राजा का हमको दण्ड देने का यह उपाय व्यर्थ जावेगा तो संभव है वह कोई और युक्ति दण्ड देने की निकाले। अतएव जब तक राजकोप शान्त न हो जावे मैं इसी गांव में रहूँ।

नन्दिश्री—तो तुमने उसका क्या उत्तर दिया पुत्र ?

अभय—माता, मैंने उनको वचन दिया है कि जब तक उन पर राजकोप शान्त नहीं होगा, मैं इसी गांव में रहूँगा।

नन्दिश्री—तब तो बेटा, हम सबको भी यहीं ठहरना पड़ेगा और न जाने इसमें कितना समय लग जावे।

अभय—किन्तु माता अब तो मैं उनको वचन दे चुका। मेरे दिये हुए वचन की तो रक्षा होनी ही चाहिये।

नन्दिश्री—तेरे दिये हुए वचन की बेटा, मैं निश्चय से रक्षा करूँगी। तू चिन्ता न कर। जब तक इस गांव का विपत्ति से उद्धार न हो जावेगा मैं भी तेरे साथ यहीं रहूँगी।

नन्दिनाथ को जब पता चला कि अभयकुमार वास्तव में सम्राट् का पुत्र है तो उसकी उन पर और भी भक्ति हो गई। उसने गांव की सारी विशाल धर्मशाला को खाली करवा कर उनसे उसमें आ जाने की प्रार्थना की। सेठ इन्द्रदत्त ने अभयकुमार की इच्छा के अनुसार अपने शिविर को मैदान से हटाकर ग्राम की धर्मशाला में डेरा लगाया। अब वे लोग धर्मशाला में कुछ अधिक सुविधा-पूर्वक रहने लगे।

२१

बुद्धि-चातुर्य

अभयकुमार की युक्ति के अनुसार नन्दिनाथ ने एक सप्ताह बाद बकरा तोल कर राजगृह भेज दिया। सम्राट् को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि वह तोल में न तो लेशमात्र घटा और न लेशमात्र बढ़ा ही।

किन्तु सम्राट् को तो नन्दिनाथ आदि ब्राह्मणों को दण्ड देना ही था। उन्होंने तुरन्त आज्ञा दी कि वह अपने यहां से एक बावड़ी उठाकर गिरिव्रज लावें, अन्यथा उनको गांव से निकाल दिया जावेगा।

सम्राट् की आज्ञा पाते ही एक दूत चला। उसने नन्दिग्राम पहुंच कर ब्राह्मणों से कहा—

"हे विप्रो! महाराज ने नन्दिग्राम से एक बावड़ी गिरिव्रज मंगवाई है। आप लोग बावड़ी भेजने का प्रबन्ध शीघ्र करें, अन्यथा आप लोगों को नगर से जाना पड़ेगा।" दूत के मुख से महाराज की इस कठोर आज्ञा को सुनकर नन्दिग्राम के ब्राह्मण फिर बेहद घबरा गए। वह सोचने लगे कि 'अब की बार तो बड़ी कठिन समस्या है। बावड़ी का जाना तो दूर, उठाना ही असभव है। जान पड़ता है कि महाराज का कोप अनिवार्य है। नन्दिग्राम को तो अब हमें छोड़ना ही पड़ेगा।'

ब्राह्मण लोग इस प्रकार विचार करते हुए कुमार अभय के पास आए। उन्होंने उनसे सारा समाचार सुनाकर प्रार्थना की कि वह उनका इस आपत्ति से उद्धार करे। कुमार अभय ने उनसे कहा—

"हे ब्राह्मणों! आप घबराते क्यों हो? आप किसी बात की चिंता न करो। यह विघ्न अभी दूर हुआ जाता है। आप एक काम करें। आपके गांव में जितने भी बैल एवं भैसे हों उन सबको एकत्रित करो और उन सभी के कंधों पर जुवे रखवा दो। ऐसा करो कि उनकी संख्या इतनी अधिक हो कि

नन्दिग्राम से गिरिव्रज तक उनकी कतार की कतार बंध जावे। तुम गिरिव्रज उस समय पहुँचो, जिस समय महाराज गाढ़ निद्रा में सोते हों। तुम बेधड़क हल्ला मचाते हुए राज-मन्दिर में घुस जाना और खूब जोर से पुकार कर कहना कि नन्दिग्राम के ब्राह्मण बावड़ी लाए हैं। जो आज्ञा हो किया जावे। बस, महाराज के उत्तर से ही आपका यह विघ्न दूर होगा।"

कुमार की यह बात सुनकर ब्राह्मणों की जान में जान आई। अब उन्होंने गांव भर के सब बैलों तथा भैंसों को एकत्र किया। उनके ऊपर जुवा रखकर उनमें मोटी-मोटी रस्सियाँ बांधीं। प्रत्येक अगली रस्सी को पिछली रस्सी में बांध दिया गया। भैसों तथा बैलों की यह बांधी हुई श्रृंखला इतनी लम्बी बनाई गई कि उसका अगला भाग गिरिव्रज में था तो पिछला भाग नन्दिग्राम में रहा। राज-भवन में लगभग सौ सवासौ जोड़ी बैल, भैंसे प्रातःकाल चार बजे के लगभग जा पहुंचे। उस समय वह लोग बैलों को जोर-जोर से निम्नलिखित शब्दों में हांकते जाते थे।

"अबे बच! अबे दिखलाई नहीं देता! तत्ते! आहा! नन्दिग्राम से बावड़ी आई है, इसे संभालो! आदि आदि।"

शोर करनेवाले भी कई सौ आदमी थे। उनके शोर के कारण राजमहल में इतना अधिक शोर मच गया कि सभी सोनेवाले जाग गए। ब्राह्मणों को तो महाराज की आज्ञा थी, वह भला क्यों रुकते। वह महाराज के सोने के कमरे तक जाकर उसके सामने खड़े होकर शोर मचाने लगे। उनका भारी शोर सुन कर महाराज की नींद भी खुल गई।

महाराज उस समय गाढ़निद्रा में थे। निद्रा के नशे में उनको अपने तन-बदन का लेशमात्र भी होशहवास नहीं था। उन्होंने नींद टूटते ही दरबान से पूछा—

"यह शोर कैसा है?"

"महाराज नन्दिग्राम के ब्राह्मण आपकी आज्ञानुसार बावड़ी लाए हैं। उसे कहां रखवा दिया जावे?"

महाराज पर अभी तक भी नींद का नशा था। वह शब्दों के महत्व का लेशमात्र भी न समझकर बोल उठे—

"उनसे कह दो कि वह जहां से बावड़ी लाये हैं, वहीं लेजाकर उसे रख दें और राजमन्दिर से शीघ्र चले जावें।"

राजा की इस आज्ञा को सुनकर ब्राह्मण बड़े प्रसन्न हो गए। उन्होंने एक बार फिर जोर से कहा "सम्राट् श्रणिक बिम्बसार की जय" आर वहां से एक दम चले गए। वह उछलते-कूदते नन्दिग्राम लौट गए और वहां पहुँचकर खुशी मनाने तथा अभयकुमार के बुद्धि-चातुर्य की प्रशंसा करने लगे।

उधर गिरिव्रज के राजमहल में जब महाराज श्रेणिक की नीद खुली तो उन्होंने दौवारिक से पूछा—नन्दिग्राम के ब्राह्मण जो बावड़ी लाए थे, वह कहां है ? उसे शीघ्र ही मेरे पास लाओ।

दौवारिक—महाराज उसे तो वह आपकी आज्ञानुसार वापिस नन्दिग्राम ले गए। आपने आज्ञा दी थी कि बावड़ी को जहां से लाए हो वहीं ले जाकर उसे रख दो और शीघ्र ही राजमन्दिर से चले जाओ। इसीलिये वह उस बावड़ी को लौटा कर वापिस नन्दिग्राम चले गए।

दौवारिक के यह शब्द सुन कर राजा श्रेणिक को मन ही मन बड़ी निराशा हुई। उनको अपनी निद्रा के सम्बन्ध मे मन ही मन पश्चात्ताप होने लगा। वह अपने मन में विचार करने लगे—

"संसार में जितने भयंकर काम निद्रा करती है, इतने कोई नही करता। यह पिशाचिनी निद्रा जीवों के मुख पर पानी फेरनेवाली है। महर्षियों का यह कहना ठीक है कि जो मनुष्य अपना हित चाहता हो उसे निद्रा पर विजय प्राप्त करनी चाहिये, क्योंकि जिस समय मनुष्य सोया होता है उस समय वह निद्रा के वश में होकर अपने कर्मों पर से अधिकार को खो देता है। वास्तव में निद्रा को उसी प्रकार जीतना कठिन है जिस प्रकार क्षुधा को। जिस प्रकार क्षुधा के विषय में नीतिकार ने कहा है कि—

'बुभुक्षितः किन्न करोति पापम्।'

भूखा आदमी किस पाप को नहीं करता, उसी प्रकार निद्रापीड़ित मनुष्य को भी उचित-अनुचित, हेय-उपादेय अथवा पुण्य-पाप का ध्यान नहीं रहता। निद्रा वास्तव में एक प्रकार का भयंकर मरण है, क्योंकि जिस प्रकार मरते समय कंठ में कफ रुक जाने से घर्र-घर्र शब्द होने लगता है उसी प्रकार का शब्द निद्रा के समय भी होता है। जिस प्रकार मनुष्य मरण काल में खाट आदि पर सोता है, उसी प्रकार निद्रा की बेहोशी में भी खाट पर सोता है। जिस प्रकार मरण काल में शरीर के अङ्गों पर पसीना झमक आता है, उसी प्रकार निद्रा के समय भी अङ्ग पर पसीना आ जाता है। जिस प्रकार मनुष्य मरणकाल में शान्त पड़ जाता है, उसी प्रकार निद्रा के समय भी काठ की पुतली के समान बेहोश पड़ा रहता है।"

इस प्रकार मन ही मन विचार करके सम्राट् ने सेवकों को फिर बुलवाकर उनसे कहा—

"तुम लोग शीघ्र ही नन्दिग्राम जाओ और वहां के ब्राह्मणों से कहो कि वह एक हाथी का वजन करके शीघ्र ही मेरे पास भेज दें।"

महाराज की आज्ञा पाते ही सेवक चला गया। उसने नन्दिग्राम जाकर नन्दिनाथ के घर जाकर उससे कहा—

"आपको सम्राट् ने आज्ञा दी है कि आप गांव के हाथी का वजन कर शीघ्र ही उनके पास भेजें, अन्यथा आपको नन्दिग्राम खाली करना पड़ेगा।"

राजसेवक के मुख से यह शब्द सुनते ही नन्दिनाथ का मुख फीका पड़ गया। गांव के अन्य ब्राह्मण भी इस संवाद से एकदम घबरा गए। वह सोचने लगे कि बावड़ी का विघ्न बड़ी कठिनता से दूर हुआ था कि यह नई बला कहां से सिर पर आ टूटी। अन्त में कुछ देर इस प्रकार आपस में विचार करके वे कुमार अभय के पास गए। उन्होंने उनसे विनयपूर्वक कहा—

"माननीय कुमार! अबकी बार तो सम्राट् ने बड़ी कठिन समस्या उत्पन्न कर दी है। उन्होंने हाथी का वजन मांगा है। भला हाथी को कैसे तोला जा सकता है? संसार में कौन सी तराजू में हाथी को चढ़ाया जा सकता है और

फिर उसकी बराबर बाट भी कौन सा हो सकता है ? इस प्रश्न को सुनकर हमारी तो बुद्धि ही चकरा गई। जान पड़ता है, अब महाराज हम लोगों को नहीं छोड़ेंगे।"

ब्राह्मणों के इस प्रकार दीन वचन सुनकर कुमार ने उनको सांत्वना देते हुए कहा—

"आप लोग इस तनिक सी बात के लिये इतना क्यों घबराते हैं ? मैं अभी आपके द्वारा हाथी को तुलवाए देता हूँ।"

ब्राह्मणों को इस प्रकार आश्वासन देकर कुमार अभय गाँव के एक तलाब के किनारे गए। यह तालाब अत्यधिक लम्बा-चौड़ा होने के अतिरिक्त बहुत अधिक गहरा भी था। उसमें गाववालों के विहार के लिये एक नाव बराबर पड़ी रहती थी। उन्होंने वहां अपने साथ का एक हाथी मंगवाकर उसे नाव में उतरवा दिया। नाव उस हाथी को लेकर तालाब के गहरे पानी में चली गई। नाव पानी के अन्दर हाथी के बोझ से जितनी डूबी, उसी स्थल पर उसमें निशान लगाकर हाथी को उसमें से निकाल लिया गया। बाद में नाव को जल में फिर ले जाकर उसमें इतने पत्थर भरे गए, जब तक नाव उस निशान तक जल में न डूब गई। अब उन पत्थरों को नाव से निकाल कर उनको बाटों से तोल कर उनका वजन मनों में निकाल लिया गया। अब उन पत्थरों को उनकी तोल के परिमाण सहित सम्राट् के पास गिरिव्रज भेज दिया गया। नन्दिग्राम के ब्राह्मणों की ओर से यह कहला दिया गया कि—

"महाराज ! आपने जो हाथी का वजन मांगा था सो यह लीजिये।"

महाराज श्रेणिक बिम्बसार को हाथी के वजन के पत्थरों को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। अब की बार उन्होंने खैर की एक लकड़ी हाथ में लेकर सेवकों से कहा—

"जाओ ! इस लकड़ी को नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को दे आओ। उनसे कहना कि महाराज ने यह लकड़ी भेजी है। वह बतलावें कि उसका कौन सा भाग अगला है और कौन सा पिछला। यह परीक्षा कर वह शीघ्र ही हमारे पास भेजें, नहीं तो उन्हें गाँव से निकाल दिया जायेगा।"

दूत महाराज की यह आज्ञा पाते ही गिरिव्रज से चलकर नन्दिग्राम आया। उसने उनको महाराज द्वारा दी हुई लकड़ी देकर कहा—

"मगध-सम्राट् ने आपके पास यह लकड़ी भेजी है। आप बतलावें कि इसका कौन सा भाग अगला है और कौन सा पिछला। यह परीक्षा कर शीघ्र भेजें। अन्यथा नन्दिग्राम छोड़कर चले जाएँ।"

दूत के मुख से महाराज का यह संदेश पाकर नन्दिग्राम के ब्राह्मणों का मस्तक घूमन लगा। वे सोचने लगे कि सम्राट् के कोप से अब की बार बचना कठिन है। अब हम किसी प्रकार भी नन्दिग्राम में नहीं रह सकते। वे दूत को विदा कर सीधे कुमार के पास गए। उनको महाराज का संदेश सुनाकर उन्होंने वह लकड़ी भी उनके सामने रख दी।

इस पर कुमार बोले—

"आप लोग महाराज की इस आज्ञा से तनिक भी न डरें। मैं अभी इसका प्रतीकार करता हूँ।"

इस प्रकार कहकर वह ब्राह्मणों को लेकर फिर तालाब के किनारे गए। वहा जाने पर उन्होने वह लकड़ी तालाब में डाल दी। लकड़ी पानी में पड़कर बहने लगी।

तब कुमार बोले—

"लकड़ी जब पानी में बहती है तो उसका मूल भाग आगे को और दूसरा भाग पीछे को रहता है। तुम इस भेद को समझ कर राजा को भी जाकर समझा दो।"

अब तो ब्राह्मण प्रसन्न हो गए। वह उस लकड़ी को लेकर तुरन्त गिरिव्रज आए और राजा के सामने जाकर उन्हें उसके विषय में संतुष्ट कर लकड़ी का ऊँचा तथा नीचा भाग बतला दिया।

महाराज अपने इस प्रश्न का उत्तर भी ठीक-ठीक पाकर क्रोध में भर गए। उन्होंने एक क्षण विचार कर एक सेवक को बुलाकर उसके हाथ में कुछ तिल देकर उससे कहा—

"नन्दिग्राम के ब्राह्मणों से कहना कि महाराज ने यह तिल भेजे हैं। जितने

यह तिल हैं इनके बराबर इनका तेल शीघ्र ही गिरिव्रज पहुँचा दो।"

महाराज की आज्ञानुसार दूत नन्दिग्राम को चल दिया। उसने वे तिल ब्राह्मणों को देकर उनसे कहा कि जितने ये तिल हैं महाराज ने उतना ही तेल मँगवाया है।

दूत का यह वचन सुनकर ब्राह्मण बड़े घबराए। वह सीधे कुमार अभय के पास गए और उनसे कहने लगे—

"महोदय! महाराज ने ये थोड़े से तिल भेजे हैं और इनके बराबर इनका तेल मांगा है। अब हम क्या करें? यह बात तो बड़ी कठिन है। तिलों के बराबर तेल कैसे भेजा जा सकता है। जान पड़ता है कि हम अबकी बार राज-दण्ड से नहीं बच सकेंगे।"

ब्राह्मणों को इस प्रकार हताश देखकर कुमार ने उनको फिर सांत्वना देकर समझाया। उन्होंने एक दर्पण मंगवाकर उस पर तिलों को पूर कर ब्राह्मणों को आज्ञा दी कि जाओ इनका तेल निकलवा लाओ। जिस समय कुमार की आज्ञानसार ब्राह्मण तेल निकलवा कर लाए तो कुमार ने उस तेल को तिलों के बराबर ही दर्पण पर पूर दिया और उसको उसी दशा में सम्राट् के पास किसी मनुष्य द्वारा भिजवा दिया।

इस प्रकार तिलों के बराबर तेल देखकर महाराज चकित रह गए। वह नन्दिगाम के ब्राह्मणों की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करने लगे। अब उनके मन में प्रतिहिंसा की अपेक्षा परीक्षा का कौतूहल अधिक हो गया। उन्होंने फिर एक सेवक को बुलाया और उससे कहा—

"तुम अभी नन्दिग्राम जाओ और वहा के ब्राह्मणो से कहो कि महाराज ने भोजन के योग्य दूध मगाया है। उनसे कहना कि वह दूध गाय, भैंस आदि चार थन वालो का न हो और न बकरी आदि दो थन वालों का हो। नारियल आदि फलों का भी न हो। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकार का हो। मिष्ट हो, उत्तम हो और बहुत सा हो।"

महाराज की आज्ञानुसार दूत फिर नन्दिग्राम गया। महाराज ने जैसा दूध लाने की आज्ञा दी थी उसने वह आज्ञा नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को जाकर सुना

दी। दूत के मुख से इस सन्देश को पाकर ब्राह्मण फिर घबरा गए। वह सोचने लगे कि दूध या तो गाय, भैंस, बकरी आदि पशुओं का होता है अथवा नारियल आदि फलों का होता है। इनके अतिरिक्त बड़, पीपल, अंजीर आदि पंच उदुम्बर फलों का भी दूध होता है, किन्तु वह मीठा नहीं होता। इनके अतिरिक्त अन्य किसी का दूध तो आज तक सुनने में नहीं आया। महाराज ने जो अन्य किसी प्रकार का दूध मंगवाया है यह उनको क्या सूझी है? क्या वह अब हमारा सर्वनाश ही करना चाहते हैं? इस प्रकार विचारते हुए वह व्याकुल होकर फिर कुमार के पास आए। उन्होंने महाराज का संदेश उनको सुनाकर उनसे यह निवेदन किया—

"महानुभाव! महाराज की अब की बार की आज्ञा बड़ी कठिन है। क्योंकि पशुओं तथा फलों के अतिरिक्त और किस प्रकार का दूध हो सकता है। यदि हो भी तो उसे दूध नही कहा जा सकता। अब की बार तो महाराज ने इस दूध के बहाने से हमारे प्राण मांगे हैं।

ब्राह्मणों के वचन सुनकर कुमार ने फिर उनको धीरज बंधाया। वह कहने लगे—

"दूध और प्रकार का भी होता है। मैं अभी उसे महाराज की सेवा में भिजवाता हूँ। आप तनिक धैर्य रखकर शीघ्र कच्चे धानों की बाल मंगवा लें और उनको मसल कर उनका गौ के दूध के समान उत्तम दूध बनवा लें। फिर उनको उत्तम घड़ों मे भरवाकर वह घड़े सम्राट् की सेवा में भेज दें।"

ब्राह्मणो को कुमार का यह वचन सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने तुरन्त ही दस-बीस आदमी धान के हरी बाल काटने के लिये खेतों पर भेज दिये। बालों के आजाने पर यत्नपूर्वक उनके दाने निकालने के लिये चालीस-पचास आदमी बिठला दिये गए। जितने दाने निकलते जाते उनको पीस कर उनका दूध बनवा लिया जाता था। इस प्रकार के दूध के दस घड़े भर कर उन्होंने राजा श्रेणिक के पास भेज दिये।

महाराज दूध से भरे घड़ों को देखकर आश्चर्य में पड़ गए। नन्दिग्राम के ब्राह्मणों की बुद्धि पर उनको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। तुरन्त ही उनके मन

में एक विचार आया और उन्होंने दूत को बुलाकर उससे कहा—

"तुम अभी नन्दिग्राम जाकर वहां के विप्रों से कहना कि महाराज ने यह आज्ञा दी है कि वह यहां मेरे सामने आकर एक ही मुर्गे को लड़ाकर दिखलावें। यदि वह ऐसा न कर सकें तो गांव को खाली करके चले जावें।"

महाराज की आज्ञा पाते ही दूत वहां से चलकर नन्दिग्राम आया। उसने वहां नन्दिनाथ के पास जाकर उससे कहा—

"महाराज ने यह आज्ञा दी है कि आप लोग गिरिव्रज जाकर महाराज के सामने एक अकेले मुर्गे को लड़ा कर दिखलावें और यदि ऐसा न कर सकें तो गांव छोड़कर चले जावें।"

दूत तो यह कहकर चला गया, किन्तु ब्राह्मणों के काटो तो बदन में खून नहीं। वह बेहद घबराए हुए कुमार के पास आए। उनको उन्होंने सम्राट् के संदेश का सारा समाचार सुना दिया। अभयकुमार ने उनको धीरज बंधाते हुए कहा—

"आप लोग इस प्रकार क्यों घबराते हैं? आप खुशी से गिरिव्रज जावें और राजा के सामने जाकर एक मुर्गे के सामने एक बड़ा सा दर्पण रख दें। जिस समय मुर्गा दर्पण में अपनी परछाईं देखेगा तो वह उसे दूसरा मुर्गा समझ कर उससे फौरन लड़ने लगेगा और आपका काम बन जावेगा।"

कुमार का यह वचन सुनकर ब्राह्मण बड़े प्रसन्न हुए। वह उसी क्षण गिरिव्रज चले गए और अपने साथ एक बड़ा दर्पण तथा मुर्गा लेते गए। राजमन्दिर में पहुँचकर उन्होंने विनयपूर्वक सम्राट् को नमस्कार किया। इसके पश्चात् उन्होंने उनके सामने एक मुर्गा छोड़ दिया। फिर उस मुर्गे के सामने एक दर्पण रख दिया। जिस समय असली मुर्गे ने दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखा तो वह उसे अपना प्रतिद्वन्द्वी दूसरा मुर्गा समझ कर क्रोध मे भर गया और शीशे पर चोंचें मार-मार कर उसके साथ अत्यन्त भयंकरता से युद्ध करने लगा।

एक अकेले मुर्गे को युद्ध करते हुए देखकर महाराज चकित रह गए। उन्होंने शीघ्र ही मुर्गे के सामने से दर्पण हटवा कर मुर्गे का युद्ध समाप्त करवा

दिया तथा ब्राह्मणों को घर जाने की आज्ञा दे दी।

ब्राह्मणों के नन्दिग्राम चले जाने पर महाराज भारी सोच में पड़ गए। वे विचारने लगे कि ब्राह्मण बड़े बुद्धिमान् हैं। उनको किस प्रकार दोषी बनाया जावे, यह समझ में नहीं आता। थोड़ी देर इस प्रकार विचार कर उन्होंने फिर एक सेवक को बुलाकर उससे कहा—

"तुम नन्दिग्राम चले जाओ और वहां के ब्राह्मणों से कहो कि महाराज ने बालू की रस्सी मंगवाई है। उसे शीघ् तैयार करके भेजो, अन्यथा अच्छा न होगा।"

महाराज की आज्ञा पाते ही दूत नन्दिग्राम की ओर चल दिया। उसने वहां जाकर ब्राह्मणों को सम्राट् की आज्ञा सुना दी।

दूत के द्वारा महाराज की इस आज्ञा को सुनकर ब्राह्मणों के घबराहट के मारे छक्के छूट गए। वे तुरन्त भागते-भागते कुमार अभय के पास पहुँचे और उनको सम्राट् की इस आज्ञा का समाचार दिया। इस पर कुमार बोले—

"विप्रवर! आप लेशमात्र भी न घबरावें। आप गिरिव्रज चले जावें और सम्राट् से निवेदन करें कि 'राजाधिराज! आपके भंडार में यदि बालू की कोई दूसरी रस्सी हो तो वह नमूने के तौर पर हमको दिखला देवें, जिससे हम उसे देखकर वैसी ही रस्सी तैयार कर आपको दे देवें।' यदि महाराज कहें कि 'वैसी रस्सी हमारे पास नहीं है' तो आप उनसे बिनयपूर्वक क्षमा मांगकर यह प्रार्थना करें कि 'महाराज! आप कृपा कर ऐसी अलभ्य वस्तु की हमें आज्ञा न दिया करें। हम आपकी दीन प्रजा हैं।'

कुमार के मुख से यह युक्ति सुनकर ब्राह्मण बड़े प्रसन्न हुए। वह मारे आनन्द के उछलते-कूदते शीघ् ही गिरिव्रज जा पहुँचे। राजमन्दिर में पहुँच कर उन्होंने महाराज को नमस्कार किया और उनसे विनयपूर्वक निवेदन किया—

"श्री महाराज! आपने हमको बालू की रस्सी लाने की आज्ञा दी है। हमको नहीं पता कि हम कैसी रस्सी बनाकर आपकी सेवा में लाकर उपस्थित करें। कृपया हमको एक वैसी ही बालू की रस्सी अपने भंडार से नमून के लिये दिलवा दें, जिससे उसे देखकर हम वैसी ही रस्सी तैयार करलें। अपराध

क्षमा किया जावे ।"

विप्रों के इस वचन को सुनकर सम्राट् बोले—

"हे ब्राह्मणो ! वैसी रस्सी तो हमारे यहां नहीं है ।"

महाराज के मुख से इन शब्दों को सुनकर ब्राह्मणों ने उनसे निवेदन किया—

"कृपानाथ ! जब वैसी रस्सी आपके भंडार में भी नहीं है तो हम कहां से बालू की रस्सी बनाकर ला सकते हैं ? प्रभो ! कृपा कर हमको ऐसी अलभ्य वस्तु के लिये आज्ञा न दिया करें । हम आपके आज्ञाकारी सेवक तथा दीन प्रजा हैं और आप हमारे स्वामी हैं ।"

इस पर सम्राट् बोले—

"अच्छा, जाओ । बालू की रस्सी मत बनाना ।"

सम्राट् के यह शब्द सुनकर ब्राह्मण बड़े खुश होकर नन्दिग्राम लौट गए । किन्तु उनके जाने के बाद महाराज के मन में प्रतिहिंसा की अग्नि फिर जलने लगी । उन्होंने तनिक देर विचार कर फिर दूत को बुलाया और कहा—

"तुम अभी नन्दिग्राम चले जाओ और वहा के ब्राह्मणों से कहना कि महाराज ने यह आज्ञा दी है कि वे मेरे पास एक ऐसा कूष्मांड (पेठा) लावें जो घड़े के अन्दर बन्द हो और घड़े के पेट जितना ही बड़ा हो । कमती अथवा बढ़ती न हो । यदि वह इस आज्ञा का पालन न कर सकें तो नन्दिग्राम छोड़ दें ।"

दूत सम्राट् की इस आज्ञा को सुनकर तुरन्त ही नन्दिग्राम चला गया । वहां जाकर उसने राजा की आज्ञा जैसी की तैसी ब्राह्मणों को कह सुनाई । नन्दिग्राम के ब्राह्मण इस समय बड़ी भारी खुशियां मना रहे थे । किन्तु जब राजा का दूत वहां फिर पहुँचा तो उनका माथा ठनका । उसके मुख से महाराज की नई आज्ञा सुनकर तो उनके पैरों के नीचे की जमीन ही निकल गई । आज्ञा को सुनकर ब्राह्मण एक दम घबराए और भयभीत होकर थरथर कांपने लगे, वे अपने मन में इस प्रकार सोचने लगे—

"हे भगवान् ! यह बला हमारे सिर पर कहां से आ टूटी । हम तो महाराज से अभी-अभी अपना अपराध क्षमा करवा कर आ रहे हैं । क्या हमारे

इतने विनयभाव से भी महाराज का हृदय दया से नहीं पसीजा ? अब हम अपने बचने का और क्या उपाय करें ?"

इस प्रकार विचार करते हुए वे कुमार के पास आये और वहां रो-रोकर इस प्रकार विलाप करने लगे—

"हे वीरों के सिरताज कुमार ! अब की बार तो महाराज ने हमारे पास अत्यन्त कठिन आज्ञा भेजी है। हे कृपानाथ ! आप इस भयंकर विघ्न से हमारी शीघ्र रक्षा कीजिये। हे दीनबन्धो ! इस भयंकर कष्ट से आप ही हमारी रक्षा कर सकते है। हमारे दुःख-पर्वत का नाश करने में आप ही हमारे लिए अखंड वज्र हैं। महनीय कुमार ! लोक में जिस प्रकार समुद्र की गम्भीरता, सुमेरु पर्वत का अचलपना, बृहस्पति की विद्वत्ता, सूर्य की तपिश, इन्द्र का स्वामित्व, चन्द्रमा की मनोहरता, राजा रामचन्द्र की न्यायपरायणता, राजा हरिश्चन्द्र की सत्यवादिता तथा कामदेव का सौन्दर्य प्रसिद्ध है उसी प्रकार आपकी सज्जनता तथा विद्वत्ता भी प्रसिद्ध है। हे स्वामिन् ! हमारे ऊपर प्रसन्न होइये, हमको धैर्य बंधाइये और हमारी इस नई आपत्ति से रक्षा कीजिये। भला ऐसा पेठा कहां से आ सकता है, जो घड़े के अन्दर बन्द रहते हुए भी घड़े के पेट के ठीक बराबर बड़ा हो।"

ब्राह्मणों के इस प्रकार रुदन करने से कुमार अभय का चित्त दया से गदगद हो गया। उन्होंने गम्भीरतापूर्वक ब्राह्मणों से कहा—

"ब्राह्मणो ! आप लोग इस जरा सी बात के लिये क्यों घबराते हैं। मैं अभी इसका उपाय करता हूं। मैं जब तक यहां हूँ आप सम्राट् की आज्ञा का किसी प्रकार भय न करें।"

ब्राह्मणों को इस प्रकार समझाकर कुमार अभय ने एक घड़ा मंगवाया और उसमें बेल सहित एक पेठे को रख दिया। बेल की जड़ को पृथ्वी में जल देकर पुष्ट किया जाता रहा और पेठा घड़े के मुंह के द्वारा उसके पेट में पड़ा-पड़ा बढ़ने लगा। कई दिन बाद वह पेठा बढ़कर घड़े के पेट के ठीक बराबर हो गया। तब कुमार ने उसको बेल में से तुड़वाकर घड़े सहित महाराज की सेवा में भेज दिया।

२२

अभयकुमार का अन्वेषण

सम्राट् न जैसा पेठा मांगा था वैसा ही उनको मिल गया, पेठे को देखकर महाराज बड़े सोच में पड़ गये। वह सोचते लगे—

"यह बात क्या है ? क्या नन्दिग्राम के ब्राह्मण वास्तव में इतने बुद्धिमान् हैं ? अथवा उनके पास कोई और बुद्धिमान् पुरुष रहता है ? नन्दिग्राम के ब्राह्मणों मे इतना पांडित्य किसी प्रकार नहीं हो सकता, क्योंकि जब से उन लोगों को राज्य की ओर से स्थिर आजीविका मिली है, तब से वह लोग आलसी तथा अज्ञानी हो गये हैं। उनकी समझ में तो साधारण बात भी नहीं आती फिर मेरे कठिन प्रश्नों को तो भला वह किस प्रकार सुलझा सकते थे ? मैंने नन्दिग्राम के ब्राह्मणों को जो-जो काम सौंपे उन सबका उत्तर मुझे अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्वक मिला है। इसलिये निश्चय ही नन्दिग्राम में कोई असाधारण बुद्धि वाला अन्य पुरुष है। जिस पांडित्य से मेरी बातों का उत्तर दिया गया है, वह पांडित्य देवों में भी दुर्लभ है। नंदिग्राम के ब्राह्मणों में यह बुद्धिबल किसी प्रकार भी नहीं हो सकता। अच्छा, मैं नंदिग्राम कुछ व्यक्तियों को भेजकर उस बुद्धिमान् व्यक्ति का पता चलाऊं।"

महाराज ने यह सोचकर कुछ चतुर व्यक्तियों को बुला कर उनसे कहा—

"आप लोग अभी नन्दिग्राम चले जावें। वहां आप गुप्त रूप से इस बात का पता लगावें कि नन्दिग्राम के ब्राह्मण किसकी बुद्धि की सहायता लेकर हमारे प्रश्नों का उत्तर दिया करते हैं।"

वह लोग राजा की आज्ञा पाकर सीधे नन्दिग्राम पहुंचे। उस समय दोपहर ढल चुका था। धप में तेजी नहीं रही थी और अनेकों लड़के नन्दिग्राम के बाहर के बगीचे में खेल रहे थे। बगीचे में आम, जामुन, अमरूद, अनार

आदि अनेक प्रकार के फल थे। लड़कों के साथ आज अभयकुमार भी खेलने आ गये थे। उन्होंने खेल के बाद प्रस्ताव किया कि जामुन के वृक्षों पर चढ़ कर पकी-पकी जामुनें खाई जावें। अतएव सभी लड़के बात की बात में जामुनों के वृक्षों पर जा चढ़े। एक वृक्ष पर अभयकुमार भी जा चढ़े और पकी-पकी जामुनें तोड़-तोड़ कर खाने लगे। जिस समय बालक जामुन के वृक्षों पर चढ़े जामन खा रहे थे तो सम्राट् के भेजे हुए राज-पुरुष भी वहां पहुँच गए। लड़कों को वृक्षों पर चढ़े देखकर उनका मन भी जामुन खाने को ललचाने लगा। मार्ग की थकावट के कारण उस समय उनको भूख भी सता रही थी। अतएव उन्होंने सोचा कि कुछ फल खाकर ही भूख को शान्त किया जावे। अभयकुमार ने जो कुछ राजसेवकों को आते देखा तो सब लड़कों को सुना कर कहा—

"देखो भाई! यह राजसेवक अपनी ओर आ रहे हैं। इनके साथ आप में से कोई भी बातचीत न करे। जो कुछ जवाब-सवाल होगा वह मैं ही इनके साथ करूँगा।"

तब तक वह राजसेवक भी उन वृक्षों के नीचे आ पहुँचे। उन्होंने लड़कों से कहा—

"क्यों भाई! आप लोग कुछ जामुन हमको भी देंगे?"

अभयकुमार ने कह तो दिया कि—

"क्यों नहीं?"

किन्तु वह मन में सोचने लगे कि 'यदि इनको योंही फल दे दिये जायेंगे तो कुछ भी आनंद नहीं आवेगा। अतएव उनको छका कर फल देना ठीक होगा।' यह सोच कर उन्होंने राजसेवकों से कहा—

"फल तो आप चाहे जितने खा सकते हैं, किन्तु यह बतलाइये कि आप गरम फल खायेंगे या ठण्डे? क्योंकि मेरे पास दोनों प्रकार के फल हैं।"

इस पर राजपुरुष बोले—

"हम गरम-गरम फल खावेंगे।"

अभयकुमार ने अब उनको पकी-पकी जामुनें तोड़ कर तथा मल-मल

कर इस प्रकार देनी आरम्भ की कि वह उनको बालू में फेंक दिया करते थे। राजपुरुष उनको बालू में से उठा-उठा कर तथा फूंक से उनका बालू छुड़ा-छुड़ा कर खाने लगे। उनको ऐसा करते देखकर अभयकुमार बोले—

"आप लोग इन फलों को खूब फूंक मार-मार कर तथा ठंडा करके खावें। कहीं ऐसा न हो कि इनकी आंच से आपकी दाढ़ी-मूँछें जल जावें।"

इस पर उन राजपुरुषों ने लज्जित होकर कहा—

"अच्छा, अब आप हमें ठंडे फल दें।"

तब अभयकुमार ने उन्हें कच्ची-कच्ची जामुनें देनी आरम्भ की।

अभयकुमार की वाक्चातुरी, तेजस्विता, मुख का सौन्दर्य तथा अन्य बालकों से असाधारण उनके बहुमूल्य वस्त्रों को देखकर राजपुरुष यह तुरंत समझ गये कि यह कोई असाधारण बुद्धि वाला राजकुमार है। उनको यह समझते भी देर न लगी कि यह राजकुमार नन्दिग्राम का नहीं है। उन्होंने मन में यह अच्छी तरह अनुमान कर लिया कि सम्राट् के कठिन प्रश्नों का उत्तर इसी राजकुमार ने दिया था, न कि ब्राह्मणों ने। इस प्रकार मन ही मन तर्क करके वह वहां से आगे बढ़कर ग्राम में पहुँचे। ग्राम में जाकर उन्होंने पूछ-गछ करके यह पता लगा लिया कि इन दिनों नन्दिग्राम में राजा श्रेणिक बिम्बसार के पुत्र, उनकी रानी नन्दिश्री तथा श्वशुर सेठ इंद्रदत्त अपने सेवकों सहित ठहरे हुए हैं। अतएव वह लज्जित तथा आनंदित होकर वहाँ से गिरिव्रज लौट चले। वहां आने पर उन्होंने सम्राट् को नमस्कार कर कुमार अभय की जो-जो चेष्टा देखी थी सब कह सुनाई। उन्होंने महाराजसे कहा—

"महाराज उस कुमार को देखकर हम प्रथम दृष्टि में ही समझ गये थे कि यह असाधारण बालक नन्दिग्राम निवासी नहीं हो सकता। वह सब लड़कों से अधिक तेजस्वी, प्रतापी तथा राजलक्षणों से मंडित था। उपस्थित बालकों में से उसके जैसा तेज किसी के मुख पर नहीं था। बाद में लोगों से बातचीत करने पर तो हमको उसका यथार्थ परिचय भी मिल गया। अब आप जैसा उचित समझें करें।"

२३

पिता-पुत्र की भेंट

मध्याह्न होने में अभी पर्याप्त विलम्ब है। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की राजसभा भरी हुई है। सम्राट् समस्त सभासदों के बीच में बैठे हुए शोभित हो रहे हैं जैसे अनेक पर्वतों के बीच में सुवर्णमय सुमेरु पर्वत शोभित होता है। उन्होंने अत्यधिक बहुमूल्य वस्त्र पहिने हुए हैं, जिनके रत्नों की प्रभा आंखों में चकाचौंध उत्पन्न कर देती है। वह सभी रंग के रत्नों की प्रभा, देखने वाले को इन्द्र धनुष का भ्रम उत्पन्न कर रही है। महाराज एक स्फटिक पीठ के ऊपर बैठे हुए हैं। उनके ऊपर अत्यधिक श्वेत रेशमी वस्त्र का एक चंदोवा तना हुआ था। उस चंदोवे को चारों कोनों पर चार रत्नमय थम्भों ने उठाया हुआ है। उनको स्वर्ण-शृंखलाओं से एक दूसरे के साथ बांधा हुआ था। चंदोवे में चारों ओर मोतियों की झालरें लगी हुई थी। सोने की मूठवाले अनेक चमर सम्राट् के ऊपर ढुलाये जा रहे हैं।

उनके सिंहासन में लगी हुई पद्मराग मणियों की रत्न-प्रभा उनके वक्ष-स्थल पर पड़ती हुई मधुकैटभ के वध से रक्त में सने हुए विष्णु का स्मरण करा रही है। उनके वस्त्रों में से चन्दन के इत्र की भीनी-भीनी सुगन्धि आ रही है। उनके गले में पड़े हुए बड़े-बड़े मोतियों की माला से उनका मुख तारामण्डल से घिरे हुए चन्द्रमा की समानता कर रहा है। उनके भुजदण्डों में पड़े हुए रत्नजटित अनन्त ऐसे जान पड़ते हैं, जैसे चन्दन की सुगन्धि से आकर्षित होकर नाग ही उनसे आकर लिपट गए हों। उनके कान में कमल का फूल लटका हुआ है। उनके नेत्र फूले हुए कमल के समान हैं। उनके विविध तीर्थों के जल से धोये हुए बाल बड़ी कुशलता से काढ़े जाकर पीछे को बंधे हुए हैं। उनका ललाट अष्टमी के चन्द्रमा के समान अर्धचन्द्राकार है। अपने समस्त सौन्दर्य से वह ऐसे दिखलाई दे रहे हैं, जैसे शिवजी के तृतीय नेत्र

से जल कर कामदेव ही फिर जी उठा हो। उनके चारों ओर अनेक दासियां अपने हाथों में चंवर लिये हुए ऐसी जान पड़ती हैं, जैसे पृथ्वी की देवियां कामदेव की पूजा करने आई हों। वहाँ की रत्नमय पृथ्वी में पड़ा हुआ सम्राट् का प्रतिबिम्ब ऐसा दिखलाई दे रहा है, जैसे पृथ्वी ने उनको उनकी भक्ति के ही कारण अपने हृदय में स्थान दिया हो। सम्राट् से थोड़े नीचे उनके दाहिनी ओर एक सिंहासन पर मगध-महामात्य वर्षकार बैठा हुआ है। उसके बाईं ओर मगध के प्रधान सेनापति भद्रसेन बैठे हुए हैं। राजसभा में अनेक मांडलिक राजा, सामंत तथा राजदूत बैठे हुए हैं। इस समय व्यावहारिक महाराज के सम्मुख कुछ आवश्यक पत्र उपस्थित करके उन पर सम्राट् की आज्ञाएँ ले रहा है। इस कार्य के समाप्त हो जाने पर महामात्य वर्षकार ने सम्राट् से कहा—

वर्षकार—राजकुमार अभय की अत्यन्त विलक्षण प्रतिभा के समाचार मिले हैं सम्राट्! ऐसी विलक्षण बुद्धि तो बड़े-बड़े विद्वानों में भी नहीं होती। उन्हें शीघ्र ही यहाँ बुलवाना चाहिये।

सम्राट्—तुम्हारा कथन ठीक है, वर्षकार! मैं भी कुमार को यहाँ बुलवाने के सम्बन्ध में ही विचार कर रहा था, किन्तु कुमार के यहाँ बुलाने का ढंग भी मैं ऐसा विलक्षण रखूंगा कि उसमें कुमार को अपनी बुद्धि की एक और परीक्षा देनी होगी। अच्छा, नन्दिग्राम भेजने के लिये एक दूत को बुलवाओ।

महाराज के यह कहते ही एक दूत ने आगे बढ़कर महाराज से निवेदन किया—

दूत—मैं नन्दिग्राम जाने के लिये उपस्थित हूँ महाराज!

सम्राट्—तुम अभी नन्दिग्राम चले जाओ। वहाँ जाकर तुम कुमार अभय से मिल कर उनसे कहना कि आपको महाराज ने बुलाया है, किन्तु उन्होंने आपको आज्ञा दी है कि आप न तो मार्ग से आवें और न उन्मार्ग से आवें, न दिन में आवें, न रात में आवें, भूखे न आवें, अफरे पेट भी न आवें, न किसी सवारी में आवें और न पैदल ही आवें, किन्तु गिरिव्रज नगर शीघ्र ही आवें।

"जो आज्ञा सम्राट्"

कह कर दूत वहाँ से तत्काल चला गया। उसने नन्दिग्राम पहुँच कर

अभयकुमार को भक्तिपूर्वक प्रणाम कर महाराज का सन्देश उनको ज्यों का त्यों कह सुनाया। सम्राट् द्वारा कुमार के बुलाए जाने का समाचार सारे नन्दिग्राम में फैल गया। इस समाचार को सुन कर वहाँ के समस्त ब्राह्मण फिर घबरा गए। उनके मन में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे। वह यही सोचने लगे कि "अब की बार हमारी रक्षा किसी प्रकार भी नहीं हो सकती। अब तक तो कुमार ने हमारे जीवन की रक्षा कर भी ली, किन्तु अब कुमार के चले जाने पर हमको सम्राट् के कोपानल में भस्म होना ही पड़ेगा। वास्तव में कुमार को सम्राट् ने गिरिव्रज बुलाकर बड़ा अनर्थ किया। हे ईश्वर! हम से ऐसा क्या पाप बन गया है, जिसके फलस्वरूप हम दुःख ही दुःख भोग रहे हैं। प्रभो! हमारी रक्षा करो!" इस प्रकार रोते-चिल्लाते हुए वे सब ब्राह्मण कुमार अभय की सेवा में उपस्थित होकर उच्च स्वर से रोने लगे। उनको ऐसी दुःखी अवस्था में देखकर कुमार बोले—

"ब्राह्मणो! आप क्यों इतना खेद करते हो? सम्राट् ने मुझे जिस प्रकार आने को आज्ञा दी है, मैं उनके पास उसी प्रकार जाऊँगा। गिरिव्रज में भी मैं आप लोगों का पूरा ध्यान रखूंगा। आप लोग किसी प्रकार की चिन्ता न करें।"

ब्राह्मणों को इस प्रकार धैर्य बंधा कर कुमार ने अपने समस्त सेवकों को तय्यार करने के लिये अपने नाना सेठ इन्द्रदत्त से कहा। उनकी आज्ञा के साथ उनके सभी अनुचर जाने के लिये तुरन्त तय्यार हो गए। सेठ इन्द्रदत्त एक रथ पर पृथक् बैठे। कुमार ने अपने लिये जो रथ मंगवाया उसके बीच में एक छींका बंधवा दिया।

जिस समय दिन समाप्त होने पर संध्या काल हुआ तो कुमार ने गिरिव्रज की ओर को अपने समस्त सेवकों तथा अंगरक्षकों सहित रथ को हंकवा दिया। चलते समय रथ का एक पहिया मार्ग में चलाया गया और दूसरा सड़क की बगल में उन्मार्ग में डाल दिया गया। कुमार ने चलते समय चनें का आधे पेट भोजन किया। उन्होंने रथ में जो छीका बंधवाया था उसमें वह स्वयं बैठ गए। इस प्रकार अनेक विप्रों के साथ अभयकुमार आनन्दपूर्वक गिरिव्रज पहुँच गए।

कुमार के सायंकाल तक गिरिव्रज पहुँचने का समाचार नगर में पहुँच ही चुका था। अतः नगरवासियों की एक बड़ी भारी भीड़ उनके दर्शन करने को राजमार्ग पर एकत्रित थी। नगर की स्त्रियां तो मार्ग के प्रत्येक मकान की छत पर जमा हो गई थीं। उनके आगे-आगे बाजा बजता जा रहा था, जिससे उनके मार्ग में भीड़ बराबर बढ़ती ही जाती थी। उत्सुक स्त्रियों में तो उनको देखने की होड़ सी लग गई। कोई अपना रसोई घर छोड़कर अपने छज्जे में भागी तो कोई अपने बालक की एक आँख में काजल लगाकर दूसरी आँख में बिना काजल दिये ही बालक को उठाकर भागी। कोई स्त्री अपने ही काजल लगा रही थी कि बाजों के शब्द से वह काजल की सलाई को जल्दी में आंख के स्थान पर, गाल पर ही लगाकर भागती हुई अपने छज्जे पर आई। कोई स्त्री अपने पैर में लाल मेंहदी लगा रही थी। वह मेंहदी से अपने घर के सारे फर्श को खराब करती हुई अपने बालाखाने में जा पहुँची। इस प्रकार स्त्रियों के ठट्ठ के ठट्ठ छज्जों, बालाखानों, अटारियों तथा चौखण्डों पर जमा हो गए और वह बड़ी उत्सुकता से कुमार को देखने लगीं। कोई स्त्री, उनके सुन्दर मुख को, कोई उनकी भुजाओं को, कोई उनके चौड़े वक्षस्थल को तो कोई उनके चरणों को देख रही थीं। बालक, युवा तथा वृद्ध सभी कुमार के दर्शन करने को मार्ग में अत्यन्त उत्साह से जमा हो गए थे।

जनता की भीड़ के साथ-साथ कुमार की सवारी भी नगर में आगे-आगे बढ़ती जाती थी। बाजों के पीछे-पीछे बंदीजन कुमार की विरुदावली का बखान कर रहे थे। मार्ग में स्थान-स्थान पर पुरवासी राजकुमार की प्रशंसा कर रहे थे। इस प्रकार राजमार्ग से जाते हुए कुमार अभय राजसभा के पास जा पहुँचे। उन्होंने रथ से उतर कर अपने नाना सेठ इन्द्रदत्त के साथ राज-सभा में प्रवेश किया। आज कुमार के आगमन के कारण दिन छिप जाने पर भी राजसभा पूरी तरह भरी हुई थी।

राजकुमार ने सभा में सम्राट् को रत्नजटित सिंहासन पर विराजमान देखकर अत्यंत विनयपूर्वक उनको नमस्कार करके उनके चरण छुए। महाराज ने उनको खेंचकर अपनी गोद में बैठा लिया। स्वागत सत्कार हो चुकने पर

कुमार ने सम्राट् से कहा—

"पिता जी ! मेरी आपसे एक प्रार्थना है। यदि आज्ञा हो तो निवेदन करूं।"

सम्राट् श्रेणिक अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—

"अवश्य कहो बेटा ! क्या कहना चाहते हो।"

तब अभयकुमार ने कहा—

"पिता जी ! मेरा निवेदन यह है कि यह नन्दिग्राम के विप्र आपकी सेवा में आये हैं। यदि उन्होंने कभी अनजाने में कोई अपराध कर भी दिया तो आप अपन बड़प्पन का ध्यान करके इन्हें क्षमा कर दें। मेरी आपसे यह विनय है। मैं उनको अभयदान दे चुका हूँ।"

अभयकुमार के यह शब्द कहते ही नन्दिग्राम के ब्राह्मण भी सम्राट् के चरणों में गिर पड़े और उनसे विनयपूर्वक क्षमा माँगने लगे। तब सम्राट् बोले—

"अच्छा, कुमार ! जब तुम इनको अभयदान दे चुके हो तो हम भी इनको अभय करते हैं।"

फिर सम्राट् ने ब्राह्मणों की ओर मुख करके कहा—

"विप्रगण ! आप प्रसन्नता से नन्दिगाम चले जावें। अब आपको किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। आपके किसी अधिकार में किसी प्रकार की भी कमी नहीं की जावेगी।"

महाराज के यह शब्द सुनकर ब्राह्मणों ने कहा—

"सम्राट् की जय हो, कुमार अभय की जय हो। हमें आपने नवीन जीवन दान दिया। आपका कल्याण हो।"

इस प्रकार नन्दिग्राम के ब्राह्मण वहाँ से अत्यन्त प्रसन्न होते हुए अपने गाँव चले गए।

२४

युवराज-पद

मगध की राजसभा को आज विशेष रूप से सजाया गया है। प्रत्येक खंभे तथा प्रत्येक दालान में आज राजपताका आदि लगाकर सजाया गया है। फर्श पर पहिले से अच्छे फर्श बिछाकर आसनों की संख्या पर्याप्त बढ़ा दी गई है। फर्श को भी काफी दूर तक बढ़ा दिया गया है, जिससे उसके ऊपर अधिक व्यक्ति बैठ सकें। आज जनता ने प्रातःकाल से ही राजसभा में आना आरम्भ कर दिया। नगर मे इस बात का समाचार था कि आज राजसभा में कोई महत्त्वपूर्ण राज-घोषणा की जानेवाली है। अतएव नगरनिवासी अत्यन्त उत्साहपूर्वक राजसभा में आ रहे थे। दस बजते-बजते राजसभा का सारा आँगन ठसाठस भर गया। किन्तु आने-जाने वालों का ताँता अब भी लगा हुआ था। दस बजते-बजते राज्याधिकारियों ने भी आना आरम्भ किया। क्रमशः सभामण्डप का अन्दर का भाग भी पूर्णतया भर गया। सभी राज्याधिकारियों के आ जाने पर प्रधान सेनापति भद्रसेन तथा महामात्य वर्षकार भी आकर अपने-अपने आसनों पर आ बैठे। इसी समय राजमहल की ओर के द्वार से राजकुमार अभय को साथ लिये सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार आते हुए दिखलाई दिये। उनको देखते ही जनता ने उच्च स्वर से कहा--

"सम्राट् श्रेणिक की जय"

"राजकुमार अभय की जय"

सम्राट् तथा राजकुमार के अपने-अपने आसन पर बैठ जाने पर महामात्य वर्षकार उठकर खड़े हुए। वह कहने लगे--

"सम्राट् ! राज्याधिकारी ! पौर जानपद तथा उपस्थित महानुभाव सुनें। मुझको अत्यन्त प्रसन्नता है कि आज मुझे राजकुमार अभय का आप लोगों की ओर से स्वागत करने का अवसर प्राप्त हुआ है। उनमें विलक्षण चातुर्य, अतुल पराक्रम तथा अलौकिक साहस है। सात वर्ष की आयु में इतने लोकोत्तर गुणों का अस्तित्व बिना पिछले जन्म के पुण्य के संभव नहीं है। नन्दिग्राम के ब्राह्मणों की रक्षा करने में इन्होंने जिस चातुर्य का परिचय दिया है, उससे तो

इन्होंने हमारी श्रद्धा को एकदम जीत लिया है। नगरनिवासी अभी से उनसे इतना प्रेम करते हैं कि वह जिधर निकलते हैं, दर्शनार्थियों के ठठ के ठठ लग जाते हैं। उनकी अलौकिक वुद्धि, जनप्रिय स्वभाव तथा न्यायप्रियता आदि लोकोत्तर गुणों के कारण उचित यही है कि उनको मगध साम्राज्य का युवराज बना दिया जावे। आप लोग मेरे इस प्रस्ताव पर गम्भीरता से विचार करें।"

इस पर सेठ इन्द्रदत्त बोले---

'श्रीमान् राजराजेश्वर सम्राट् महोदय! महामात्य! पौरजानपद! तथा नागरिक मेरा निवेदन सुनें। महामात्य ब्राह्मण वर्पकार ने राजकुमार अभय के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है वह हम सभी को अतिशय प्रिय लगने वाला है। मै नगर के समस्त व्यापारी समाज तथा पौरजानपद की ओर से घोषणा करता हूँ कि वह सब इस प्रस्ताव के पक्ष में हैं।"

इस पर सम्राट् बोले---

"आप लोगों ने जो कुमार के गुणों का वर्णन करके उनको युवराज पद देने का विचार प्रकट किया है इसे मैं कुमार के अतिरिक्त अपना भी सम्मान मानता हूँ। मुझे अभिमान है कि मैं ऐसे योग्य पुत्र का पिता हूँ।"

एक नागरिक---केवल योग्य पुत्र के पिता नहीं, वरन् योग्य पुत्र के योग्य पिता भी।

सम्राट---आपके इस विचार के लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँ। अब मैं आपसे जानना चाहता हूँ कि क्या आप लोग इस प्रस्ताव से सहमत हैं।

इस पर सभी उपस्थित महानुभाव चुप रहे। तब सम्राट् फिर बोले---

"जो व्यक्ति इस प्रस्ताव के विरुद्ध हों वह अपना हाथ उठा दें।" इस पर किसी ने भी हाथ नहीं उठाया। सम्राट ने कहा---

"महामात्य वर्षकार का राजकुमार अभय को युवराज बनाने का प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किया जाता है।"

इस पर उपस्थित व्यक्तियों ने एक साथ

"युवराज अभयकुमार की जय"।

बड़े जोर से बोली। इस पर सम्राट् ने उठकर अभयकुमार के सिर पर युवराज-पद का मुकुट रखा।

२५

श्रमण गौतम

"बधाई है महाराज ! बधाई ! आप के कुमार सिद्धार्थ ने धनुषयज्ञ में सब कुमारों को नीचा दिखला कर यशोधरा जैसे कन्यारत्न को वरण किया है।"

"महामंत्री ! धन्यवाद। यह हमारे परम सौभाग्य की बात है। किन्तु आप जानते हैं कि मेरी चिन्ता केवल इतने से ही दूर नही हो सकती।" राजा शुद्धोदन ने उत्तर दिया।

"क्यों महाराज ! अब चिंता का क्या काम ! अब तो कुमार गृहस्थी के बंधन में पड़ गये।"

"असित मुनि के उन वचनों को आप भूल गये महामंत्री ! जो उन्होंने कुमार के जन्मोत्सव के समय उनके भविष्य के संबंध में कहे थे ? उन्होंने बतलाया था कि संसार रूपी गड्ढे में गिरते हुए प्राणियों का उद्धार करने के लिये ही इस बालक का अवतार हुआ है। यह एक बड़ा भारी त्यागी महात्मा बनेगा और यदि यह किसी रोगी, वृद्ध तथा मृतक को देख लेगा तो शीघ्र ही घर छोड़ देगा। अस्तु, मैंने कुमार का पालन-पोषण अभी तक बड़ी सावधानी से किया है। उसके चारों ओर सांसारिक विषयों की इच्छा को भड़काने वाले साधन मैं बराबर जुटाता रहता हूं। फिर भी उसको मैं प्रायः कुछ सोचते हुए ही पाता हूं। मैं जानता हूं कि कुमार त्यागी है। उसके मन को बड़े से बड़े विषय-भोग भी संसार में नहीं बांध सकते। यशोधरा ने कुमार के जीवन में प्रवेश अवश्य किया है, किन्तु देखना है कि वह कुमार को अभी कितने वर्ष घर में बांध कर रख सकती है।"

महाराज यह बात तो ठीक है। किन्तु हमें अपनी ओर से कसर क्यों करनी चाहिये ?"

"मेरा मतलब बिल्कुल यही था।"

घटना ईसा के जन्म से भी छै सौ तेईस वर्ष पहले की है। आजकल के नेपाल राज्य की इस समय जहां दक्षिणी सीमा है, वहां रोहिणी नदी के पश्चिमी किनारे पर उन दिनों शाक्यवंशीय क्षत्रियों की राजधानी कपिलवस्तु बसा हुआ था। वहां के राजा का नाम शुद्धोद्धन था। उनकी दो रानियां थीं—मायादेवी तथा प्रजावती। राजा की ४५ वर्ष की आयु में मायादेवी को गर्भ रहा। प्रसवकाल समीप आने पर मायादेवी ने अपने पति से इच्छा प्रकट की कि वह अपने पितृगृह कोलियों की राजधानी देवदह जाना चाहती है। राजा ने कपिलवस्तु से देवदह तक की यात्रा का महारानी के सम्मान के अनुरूप प्रबंध कर दिया। किंतु रानी देवदह पहुँचने भी न पाई थी कि मार्ग में लुम्बिनी वन में शाल वृक्ष के नीचे उनके प्रसव हो गया। यह वन भी कपिलवस्तु राज्य में ही था। रानी की यात्रा समाप्त हो गई और वह वहां से वापिस कपिलवस्तु आई। यहां आने पर मायादेवी का प्रसव के सातवें दिन स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार गौतम बुद्ध का जन्म ईसा पूर्व सन् ५६३ में हुआ।

राजा शुद्धोदन के अभी तक पुत्र नहीं हुआ था। अतएव उन्होंने बड़ उत्साह से पुत्र का जन्मोत्सव मनाया। जन्म के पांचवें दिन राजपुरोहित विश्वामित्र ने शिशु का नाम गौतम अथवा सिद्धार्थ रक्खा। सातवें दिन माता का स्वर्गवास होने पर इनकी विमाता प्रजावती ने इनका लालन-पालन किया।

राजकुमार का जन्म वृत्तान्त सुनकर असित महर्षि अपने भागिनेय नारद सहित कपिलवस्तु पहुंचे। उन्होंने गौतम के शरीर का भलीभांति निरीक्षण करके उसमें महापुरुष के बत्तीस लक्षण तथा अस्सी अनुव्यंजन पाए। महर्षि ने महाराज के भाग्य की सराहना करके उनसे कहा कि यह बालक या तो चक्रवर्ती राजराजेश्वर होगा अथवा पूर्ण बुद्ध योगेश्वर होगा। उन्होंने उसी समय अपने भागिनेय को उपदेश दिया कि यदि यह बालक संन्यास ले तो तुम इसके शिष्य होना।

क्रमशः राजकुमार सिद्धार्थ बड़ा हुआ। वह बचपन से ही दयालु प्रकृति का था। वह प्रायः अपने चचेरे भाई देवदत्त के साथ खेला करता था। देवदत्त शिकार का प्रेमी था, किन्तु सिद्धार्थ किसी भी जीव को दुःख देने का विरोधी था।

एक बार सिद्धार्थ और देवदत्त अपने महल की छत पर खड़े थे कि ऊपर कुछ कबूतर उड़े। देवदत्त ने बाण मारकर एक कबूतर को घायल करके गिरा दिया। कबूतर के गिरते ही देवदत्त और सिद्धार्थ दोनों उसे लेने को दौड़े। किंतु देवदत्त के पहुंचने से पहले सिद्धार्थ उसको उठा चुका था। तब देवदत्त बोला—

"सिद्धार्थ उसे छोड़ दो वह मेरा शिकार है।"

"नहीं! मैं उसे नहीं छोड़ूंगा। मैंने उसको शरण दी है।"

देवदत्त सिद्धार्थ के स्वभाव से परिचित था। अतएव उसको कबूतर के विषय में उससे झगड़ा करने का साहस नहीं पड़ा। सिद्धार्थ ने उस कबूतर की चिकित्सा की और अच्छा होने पर उसे उड़ा दिया।

कुमार की आयु आठ वर्ष की होने पर उन्हें शिक्षा के लिये विश्वामित्र को सौंपा गया। उन्होंने कुमार को वर्ण तथा लिपि सिखला कर क्रमशः कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष तथा वेदों की शिक्षा दी। पच्चीस वर्ष की आयु तक उन्होंने सभी विद्याएं पढ़ ली।

राजकुमार सिद्धार्थ का ऊंचा माथा, चौड़ा सीना, लम्बी भुजाएं और बड़े-बड़े कान उनको महापुरुष प्रकट कर रहे थे। वह छोटेपन से ही एकांतप्रिय, परम दयालु तथा दूसरे के दुःखों से दुखी हो जाने वाले थे। अपने आमोदभवन और क्रीड़ा के उद्यान में भी वह प्रायः एकांत में बैठ जाया करते थे। उनकी इसी प्रवृत्ति से घबरा कर उनके पिता ने उनका यशोधरा से विवाह किया था। उनकी पत्नी यशोधरा उनके मामा दण्डपाणि की पुत्री थी, जो देवदह के राजा थे। गौतम के अट्ठाईसवें वर्ष में राजकुमारी यशोधरा ने एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया। इस बच्चे का नाम राहुल रखा गया। अब राजकुमार सिद्धार्थ का समय अधिक आनन्दपूर्वक व्यतीत होने लगा।

× × ×

दोपहर ढलने को है। वसंत ऋतु होने के कारण धूप में अभी तेजी नहीं आई है। कपिलवस्तु के बाजार में अच्छी चहल-पहल है। लोग अपने-अपने घर से निकल-निकल कर बाजारों में घूम रहे हैं कि एक ओर से आवाज आई—

"मार्ग से हट जाओ! राजकुमार सिद्धार्थ की सवारी आ रही है।"

इस शब्द को सुनते ही भीड़ ऐसे छंट गई, जैसे तालाब में डला मारने पर काई फट जाती हैं। जनता ने राजकुमार की सवारी को आते हुए देखा। राजकुमार एक खुले रथ में बैठे हुए थे। उनके आगे-पीछे कुछ सवार चल रहे थे। गाड़ी में आगे-पीछे अंगरक्षक थे। उनके बराबर राज्य के एक अमात्य बैठे हुए थे।

राजकुमार अपनी गाड़ी में बैठे हुए बाजार से निकल कर उपवन के मार्ग पर पहुँचे तो उनके सामने एक वृद्ध पुरुष दिखलाई दिया। वृद्ध पुरुष की कमर पूर्णतया झुक गई थी। उसके गाल पिचक गये थे, और सारे बदन पर झुर्रियां पड़ गई थीं। उसके बाल सन के समान सफेद हो गए थे। रह-रह कर उसको खांसी का धसका आता जाता था। उसके नेत्र इतने कमजोर थे कि वह पृथ्वी को टोह-टोह कर बड़ी सावधानी से एक-एक पग बढाता जाता था। राजकुमार सिद्धार्थ ने जो उसको देखा तो वह उसको देखते के देखते ही रह गए। उन्होंने मन में उसके सम्बन्ध में बहुत कुछ विचार किया किन्तु वह कुछ भी निश्चय न कर पाये। अंत में असमर्थ होकर उन्होंने अमात्य से पूछा—

"अमात्य यह कौन है?"

"यह वृद्ध है कुमार?"

"यह वृद्ध किस प्रकार हो गया, अमात्य!"

"एक बार सबको इसी प्रकार स्वाभाविक रूप से वृद्ध होना पड़ता है। यही जीवन की वास्तविकता है।"

अमात्य की यह बात सुनकर कुमार और भी सोच में पड़ गए। अब उनका टहलने में जी नहीं लग रहा था। उन्होंने सेवकों को पीछे लौटने की आज्ञा दी और बिना उपवन गए ही लौट कर घर आ गए।

कुमार रात भर उस वृद्ध के विषय में ही विचार करते रहे। वह सोच रहे थे

कि क्या मुझ को भी एक बार इसी प्रकार वृद्ध बनना पड़ेगा ? तब क्या जीवन में कोई रस रह जावेगा ? इस प्रकार विचार करते-करते उनको नींद आ गई।

अगले दिन प्रातःकाल होने पर कुमार को फिर उसी चिन्ता ने आ घेरा। उन्होंने भोजन किया, संगीत सुना और दिन के सभी कार्यों को नित्य के समान किया, किन्तु उनके मन में यह विचार चलता ही रहा।

अपराह्ण होने पर नित्य के समान वह अपनी गाड़ी में बैठकर फिर घूमने चले। वह सड़क को देखते जाते थे और उनके नेत्र उसी वृद्ध को ढूंढ रहे थे। वह नगर के बाहिर निकले तो एक गांव वाला अपने रोगी पिता को एक बैलगाड़ी में डालकर नगर के किसी वैद्य को दिखलाने जा रहा था। रोगी के शरीर में असह्य पीड़ा थी और वह इतने जोर से कराह रहा था कि सुनने वालों का ध्यान उसकी ओर बरबस खिंच जाता था। राजकुमार सिद्धार्थ की दृष्टि जो उस रोगी पर गई तो उनके मन में उसका समाचार जानने की इच्छा प्रबल हो उठी। वह बहुत समय तक उसके सम्बन्ध में सोचते रहे और जब वह कुछ भी निश्चय न कर पाए तो साथ में बैठे हुए अमात्य से बोले—

"आर्य ! बैलगाड़ी में कराहने वाला यह पुरुष कौन है ?"

"कुमार ! यह रोगी है।"

"इसको रोग किस प्रकार हो गया, अमात्य ?"

"कुमार ! शरीर में रोग तो हुआ ही करते हैं। जैसा कि कहा भी है कि **'शरीरं व्याधिमन्दिरम्'** अर्थात् शरीर रोगों का घर है।

कुमार इस उत्तर को सुनकर और भी सोच में पड़ गए। अब उनका जी टहलने से फिर उचट गया और उन्होंने अपने सेवकों को वापिस लौटने क आज्ञा दी। घर आकर भी उनको उस रोगी का ही ध्यान बना रहा। वह सोचते थे कि "क्या सब प्राणी इसी प्रकार रोगी होते हैं ? क्या इसी प्रकार मुझको भी कभी रोगी होना पड़ेगा ? वृद्धावस्था और रोग यही क्या जीवन की वास्तविकता है ? इत्यादि इत्यादि।"

इसी प्रकार के विचारों में उनकी रात निकल गई। प्रातःकाल हो जाने पर भी उनके मन से वह विचार न निकले। उन्होंने भोजन किया, शयन किया

श्रौर संगीत सुना। वह राहुल के साथ खेले। यशोधरा के साथ उन्होंने प्रेमालाप किया, किन्तु उनके हृदय में यह विचार चलते ही रहे। इसी प्रकार दोपहर ढलने का समय होने पर वह अपने रथ में बैठ कर फिर टहलने को निकले।

अब की बार जो वह बाजारों में आये तो उनके नेत्र बराबर उस वृद्ध तथा रोगी को खोज रहे थे। वह बाजार में चारों ओर अत्यन्त ध्यान से देखते और आगे को बढ़ते जाते थे। उसी समय उनको मार्ग में कुछ लोग मिले जो एक मुर्दे को श्मशान लिये जा रहे थे।

उस मुर्दे को देखकर कुमार और भी सोच में पड़ गये। उनकी यह बिल्कुल समझ में न आया कि लोग एक आदमी को कंधे पर उठाये हुए क्यों ले जा रहे हैं? फिर उनकी समझ में यह भी नहीं आया कि वह आदमी बोलता क्यों नहीं? फिर वह यह सोचने लगे कि वह लोग उसे कहां ले जा रहे हैं और फिर वह उसका क्या करेंगे? उनके मन में इस प्रकार बहुत से प्रश्न आते रहे और वह किसी भी प्रश्न का उत्तर अपने अन्दर से न निकाल सके। अन्त में उत्सुकता अत्यधिक बढ़ जाने पर उन्होंने साथ में बैठे हुए श्रमात्य से पूछा।

"श्रमात्य! वह व्यक्ति कौन है और यह लोग उसको इस प्रकार क्यों उठाये हुए हैं?"

"कुमार, यह व्यक्ति मर चुका है और अब वह केवल एक मुर्दा या शव है। यह लोग उसे श्मशान ले जाकर वहां फूंक देंगे।"

"हैं! क्यों फूंक देंगे वह उसे?"

"क्योंकि अब उसका यह शरीर किसी काम नहीं आ सकता और यदि उसको जल्दी ही न फूंका जावेगा तो उसमें दुर्गन्ध पैदा हो जावेगी, जो बढ़ते-बढ़ते इतनी तेज हो जावेगी कि उसको सहन नहीं किया जा सकेगा।"

"अच्छा! जीवन की वास्तविकता यही है? मुझको भी क्या एक दिन इसी प्रकार मरना होगा?"

"और क्या कुमार!"

कुमार महामात्य के इस उत्तर से अत्यधिक विचलित हो गए। अब फिर उनके लिये टहलना असंभव हो गया और वह सेवकों को वापिस लौटने को

आज्ञा देकर वापिस घर आ गये ।

एक अन्य अवसर पर उन्होंने संन्यासी को भी देखा । उसको देखकर वह सोचने लगे कि हम गृहस्थों से तो यह संन्यासी ही बेहतर है ।

अब कुमार के मन में अन्तर्द्वन्द्व जोर से मचने लगा । खाते-पीते, उठते-बैठते उन्हें सोचते ही बीतता था । वह यह सोचा करते थे कि जीवन का स्वभाव ही यह है कि वह वृद्ध होकर रोग से मर जावे । किन्तु उनका मन यह स्वीकार नहीं करता था कि वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु सब के लिये अवश्यंभावी हैं । उनका अन्तरात्मा कहता था कि यद्यपि उनका शिकार अधिकांश प्राणियों को बनना पड़ता है, किन्तु उनसे बचे रहना भी संभव है । अतएव वह उनसे बचने का उपाय हर समय सोचते रहते थे । वह सोचते थे कि संसार में रहकर सांसारिक कार्य करते हुए इन तीनों से बचना संभव नहीं है । इनसे बचने का उपाय केवल घर छोड़कर त्यागमय जीवन व्यतीत करके ही किया जा सकता है । अतएव अब वह यह सोचने लगे कि किसी प्रकार गृहस्थी के जंजाल से छूटकर घर को छोड़ दिया जावे । इस सम्बन्ध में सोच-विचार करते-करते उनको अनेक दिन लग गये । अन्त में उन्होंने घर छोड़कर चले जाने का पूर्ण निश्चय कर लिया ।

घर छोड़ने का निश्चय करने पर भी उनके मन में अन्तर्द्वन्द्व चलता ही रहा । सबसे प्रथम उनको उस छोटे से बालक राहुल का ध्यान आया, जो उन को देखते ही अपनी छोटी-छोटी बांहें उनकी ओर फैला देता था । फिर उनको अपनी उस प्रेयसी का ध्यान भी आया, जिसको वह स्वयंवर से जीत कर लाये थे, जिसका आधार उनके अतिरिक्त और कोई नहीं था । वह सोचने लगे कि स्त्री तथा बच्चे को बिना अपराध क्यों छोड़ा जावे । किन्तु फिर उनके मन में विचार आया कि यह साँसारिक बंधन ही तो सिद्धि के मार्ग की बाधाएँ हैं । इनको तोड़े बिना तो वृद्धावस्था, रोग तथा मृत्यु से बचने का उपाय खोजना असंभव है । उस मार्ग पर जाने के लिये तो उनके मोह को छोड़ना ही पड़ेगा । इस प्रकार उन्होंने उसी समय घर छोड़ने का निश्चय किया । 'श्रेय' ने 'प्रेय' पर विजय प्राप्त की ।

उस समय अढ़ाई पहर रात्रि व्यतीत हो चुकी थी । राजकुमार ने निश्चय

कर लिया कि मुझे सभी की मायाममता छोड़कर चले जाना चाहिये और आज ही जाना चाहिये। उस समय राजमहल के सभी दास-दासियां सो चुके थे। राजकुमार ने धीरे से बाहिर निकल कर अपने प्रिय सहचर छन्द को जगा कर उसे अपने प्यारे घोड़े कन्थक को तैयार करने का आदेश दिया।

अब वह एक बार फिर अपने शयन कक्ष में गए। उनकी प्रियतमा पत्नी यशोधरा उस समय गाढ़ निद्रा में सो रही थी। उनका नन्हा सा पुत्र राहुल भी अपनी माता की बगल में पड़ा हुआ सो रहा था। उन दोनों को देख कर एक बार राजकुमार के मन में यह विचार आया कि वह अपने घर छोड़ने के विचार को बदल दे। किन्तु फिर वृद्धावस्था, रोग तथा शव का ध्यान हो आया और वह वहां से निकल तथा कन्थक पर सवार हो कर नगर से बाहिर आ गए।

राजकुमार सिद्धार्थ कपिलवस्तु से निकल कर घोड़े पर बैठ कर जंगल में पूर्व दिशा की ओर चले। वह बराबर चलते ही गए, क्योंकि उनको भय था कि पता चलने पर घरवाले उनको ढूंढकर ले जावेंगे। वह रोहिणी नदी को पार कर कोलियों के राज्य तथा पावा से भी आगे निकल गए। अन्त में अनोमा नदी के किनारे जाकर उन्होंने अपने राजसी आभूषण उतार दिये। वहां उन्होंने अपने सेवक छन्द से कहा—"छन्द! बस मेरा और तुम्हारा यहीं तक का साथ था। अब तुम इस स्वामिभक्त घोड़े को लेकर कपिलवस्तु लौट जाओ। यह अपने आभूषण तथा राज-चिह्न में तुमको देता हूँ।"

"ऐसा न कीजिये स्वामिन्! यदि आप घर नही चलते तो मुझीको सेवा में रहने दीजिये।"

"नही छन्द! अब मैंने सभी सांसारिक नाते तोड़ दिये हैं। मैं तो इस शरीर से भी ममता छोड़ना चाहता हूं। तुम्हारे रहने से मेरे मार्ग में बाधा आवेगी। तुम यहां से शीघ्र ही चले जाओ।"

अन्त में अपनी एक भी न चलती देखकर सेवक घोड़े को लेकर वहां से चला गया। सेवक और घोड़े के चले जाने पर सिद्धार्थ ने अपने शिखा और सूत्र उतार कर अनोमा नदी में ही बहा दिये।

अब सिद्धार्थ वहाँ से कुछ और दूर चले तो उनको एक निर्धन आदमी मिला।

२६

गौतम सिद्धार्थ तथा बिम्बसार

आज राजगृह नगर में सब ओर लोगों के ठट्ठ के ठट्ठ लगे हुए हैं। राजमार्गों सड़कों और गलियों सभी में लोग दो,-दो, चार-चार, बीस-बीस और तीस-तीस की टोलियों में जमा होकर चर्चा कर रहे हैं। उनकी चर्चा का मुख्य विषय एक निरीह तथा अकिंचन साधु है। उस समय एक स्थान पर इस प्रकार चर्चा हो रही थी।

एक—भाई, कितने आश्चर्य की बात है कि एक राजकुमार इस प्रकार भिखारियों जैसे फटे-पुराने वस्त्र पहिने घर-घर भिक्षा मांगे।

दूसरा—अजी! नालायक होगा। मां-बाप ने घर सें निकाल दिया होगा?

तीसरा—कैसी बात करते हो धनदत्त तुम! घर वालों ने उसे नहीं निकाला, वरन् उसने ही घर को अपनी इच्छा से छोड़ा है।

धनदत्त—तो इस प्रकार फटे हाल घर-घर भिक्षा माँग कर वह कौनसा अपने मां-बाप का नाम ऊँचा कर रहा है, मित्र यज्ञदत्त!

चौथा—भाई, उसको समझने की कोशिश करो। उसके सम्बन्ध में इस प्रकार की अनर्गल बातें मत करो धनदत्त! वह संसार के सबसे बड़े महापुरुषों में से एक है।

यज्ञदत्त—वह किस प्रकार? मित्र भद्रक!

भद्रक—इसलिये कि एक राजकुमार होते हुए भी उसने अपने तथा संसार के कल्याण का मार्ग तलाश करने के लिये राजसम्पदा, माता-पिता, स्त्री-पुत्र तथा देवोपम भोगोपभोग सभी का त्याग किया है।

धनदत्त—अच्छा! वह सचमुच में ही राजवंशीय है? भला कहां का निवासी है वह?

भद्रक—वह कपिलवस्तु के शाक्यवंशीय राजा शुद्धोदन का एक मात्र पुत्र है। घर पर उसकी प्राणप्यारी पत्नी महारानी यशोधरा तथा एक प्यारा पुत्र

राहुल है। वह परा विद्या के साथ-साथ अपरा विद्या का भी विद्वान् है।

यज्ञदत्त—तो क्या फिर भी उसे माता-पिता ने घर से निकाल दिया ?

भद्रक—उसको निकालना तो क्या, वह तो अब भी उसके दर्शन के लिये लालायित हैं।

धनदत्त—तो फिर उसने घर छोड़ा क्यों ?

भद्रक—इसलिये कि वह भोग की अपेक्षा त्याग को अच्छा समझता है। वह जानता है कि भोगों से नरक तथा त्याग से स्वर्ग मिलता है।

धनदत्त—तो क्या उसने स्वर्ग की इच्छा से घर छोड़ा ?

भद्रक—स्वर्ग की इच्छा से नहीं, वरन् मोक्ष की इच्छा से। वह मनुष्य को जन्म, रोग, वृद्धावस्था तथा मरण के दुःखों से छुड़ाने का मार्ग खोजता फिर रहा है। वह जानता है कि इस मार्ग का अन्वेषण घर में रह कर नहीं किया जा सकता। उसका पता त्यागी जीवन व्यतीत करके ही लगाया जा सकता है।

धनदत्त—तो क्या अभी तक उसको अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली ?

भद्रक—तभी तो वह उपदेश नहीं देता। सफलता मिलने पर तो वह सब किसी को उपदेश देकर संसार के उन दुःखों से छूटने का मार्ग बतावेगा।

धनदत्त—अच्छा ! अब मैं समझा कि राजगृह के घर-घर में इस निरीह अकिंचन युवक की चर्चा आज क्यों की जा रही है।

यह लोग इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि एक तीस-पैंतीस वर्ष का मैले वस्त्रों का साधु नगर के प्रधान द्वार से अन्दर घुसता हुआ दिखलाई दिया। उसके नेत्र बड़े-बड़े, माथा ऊँचा, सीना चौड़ा तथा कंधे ऊँचे थे। वह बहुत कम बोलता और पाओं-प्यादे ही चलता था। उसको देखकर भद्रक अपने साथियों से बोला—

"वह देखो, गौतम सिद्धार्थ इधर से ही आ रहे हैं। सम्भवतः वह सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार से मिलने जा रहे हैं। चलें हम भी उनके पीछे चलें।"

गौतम सिद्धार्थ के पीछे-पीछे पर्याप्त जन-समूह था। वह लोग बीच, में 'गौतम सिद्धार्थ की जय' 'कपिलवस्तु के राजकुमार की जय' आदि बोल-बोलकर उनका अभिनंदन करते जाते थे। किन्तु सिद्धार्थ का ध्यान उनकी ओर नहीं था। वह

वहाँ से सीधे राजद्वार की ओर चले ।

मध्याह्न होने में अभी विलम्ब था । सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार अभी भोजन के लिये बैठ ही रहे थे कि दौवारिक ने आकर समाचार दिया—

"सम्राट् की जय हो"

"क्या है दौवारिक ?"

"सम्राट् कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन का पुत्र शाक्यवंशीय गौतम सिद्धार्थ भिक्षुक के वेष में राजमहल की ओर चला आ रहा है । उसके पीछे उत्सुक जनता की बड़ी भारी भीड़ है । क्या मैं उन सबको राजमहल में आने दूँ !"

"अच्छा ! गौतम सिद्धार्थ भिक्षाटन करता हुआ राजगृह में आ गया ? तब तो आज उनको भिक्षा देकर ही भोजन करेंगे। दौवारिक ! कुमार को राजमहल में आने दे ! हां, उसके पीछे आने वाला जनता को द्वार पर ही रोक देना !"

दौवारिक के वापिस जाते-जाते गौतम सिद्धार्थ राजभवन के द्वार पर आ पहुँचे थे । दौवारिक ने उनको आगे जाने का मार्ग बतलाकर जनता को द्वार पर ही रोक दिया । सिद्धार्थ आगे बढ़ते जाते थे, किन्तु उनकी दृष्टि नीचे थी । राजभवन के दास-दासियों, वहां की सजावट तथा वहां की अन्य वस्तुओं की ओर उनका लेशमात्र भी ध्यान न था । क्रमशः वह सम्राट् बिम्बसार के भोजन कक्ष में पहुँचे । यहां आने पर सम्राट् ने उनकी निम्नलिखित शब्दों में अभ्यर्थना की—

"शाक्यपुत्र गौतम सिद्धार्थ का अभिनन्दन । श्रमणवर! आहार-पानी शुद्ध है । आप भोजन स्वीकार करें ।"

"जैसी आपकी इच्छा । किन्तु मैं एक साधु के समान भोजन करूंगा, एक राजकुमार के रूप में नहीं ।"

"जैसी आपकी इच्छा ।"

यह कह कर सम्राट् ने विविध सोने-चांदी के पात्रों में भोजन परसवा कर उनको अपने साथ आसन पर बिठला कर भोजन कराया । सिद्धार्थ के भोजन आरम्भ करने पर सम्राट् भी भोजन करने लगे । सिद्धार्थ ने अत्यन्त संयमपूर्वक भोजन किया । यद्यपि उनके थाल में सम्राट ने छत्तीस प्रकार का

भोजन रखवा दिया था, और उन्होंने उन सभी को खाया भी, किन्तु उन्होंने किसी खाद्य पदार्थ पर लेशमात्र भी अपनी रुचि अथवा अरुचि को प्रकट न किया। उनके भोजन कर चुकने पर सम्राट् ने उनसे कहा —

सम्राट् —कुमार ! आपने अपने प्यारे माता-पिता, राजसम्पदा, प्राणप्यारी पत्नी और छोटे से दुधमुंहे बच्चे को किस प्रकार छोड़ दिया ?

गौतम—जिस वस्तु को कभी न कभी विवश होकर अनिवार्य रूप से छोड़ना पड़े उसे स्वयं ही अपने आप छोड़ देने में बुद्धिमानी है सम्राट् !

सम्राट्—मैं आपका अभिप्राय नहीं समझा कुमार !

गौतम—बात बिल्कुल स्पष्ट है सम्राट् ! सांसारिक भोगों से न तो कभी मन भरता है और न कोई उनको सदा ही अपने पास रख सकता है। मृत्यु प्रत्येक वस्तु का वियोग करा देती है। फिर नाशवान् वस्तुओं का त्याग करके ऐसी वस्तु प्राप्त करने का यत्न क्यों न किया जावे जो कभी नष्ट न हो और जिसको कभी भी छीना न जा सके।

सम्राट्—किन्तु क्या आप उस नित्य वस्तु को प्राप्त कर चुके ?

गौतम—नहीं सम्राट् ! अभी मुझे इसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई। मैं बारम्बार यत्न कर रहा हूँ, किन्तु अभी ठीक मार्ग का पता नहीं चला। यद्यपि मुझे निकट भविष्य में ही सफलता प्राप्त करने की पूर्ण आशा है।

सम्राट्—किन्तु इसका क्या प्रमाण है कि आपका समस्त प्रयत्न मृगमरीचिका मात्र सिद्ध न होगा ?

गौतम—इसका प्रमाण तो सफलता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हो सकता।

सम्राट्—तब तो कुमार इसका केवल यही अर्थ हुआ कि आप अभी तक भी अंधेरे में ही भटक रहे हैं।

गौतम—मैं आपको ऐसी बात मान लेने से रोक नहीं सकता।

सम्राट्—किन्तु कुमार ! मुझे आपके सुन्दर रूप, निर्दोष यौवन, अल्प अवस्था तथा अलौकिक गुणों को देखकर बारम्बार हृदय में वेदना होती है। आप तपश्चरण के इस मार्ग का परित्याग कर दें। मैं अपना समस्त

राज्य आपको देने को तैयार हूं। आप यहां रहकर चाहे सब सुखों का भोग करें, चाहे घर में रहते हुए ही साधना करते जावें, किन्तु आप कहीं न जावें।

गौतम—सम्राट् ! मुझे राज्य जैसे क्षणभंगुर पदार्थ की लालसा होती तो मैं अपने पिता शुद्धोदन का राज्य ही क्यों छोड़ता। मुझे तो जब तक पूर्ण बोध की प्राप्ति न हो जावेगी, मैं इसी प्रकार प्रयत्न करता रहूंगा।"

गौतम के यह शब्द सुनकर सम्राट् तनिक लज्जित हो गए। उनको गौतम के चरित्र पर अत्यन्त श्रद्धा हुई। उन्होंने गौतम से फिर कहा—

"अच्छा, कुमार ! मैं आपको इस मार्ग का परित्याग करने को नहीं कहता किन्तु मेरा एक अनुरोध आप अवश्य स्वीकार करें।

गौतम—वह क्या सम्राट् ?

सम्राट्—यह कि बुद्धत्व प्राप्त करने पर आप राजगृह अवश्य आने की कृपा करें और इस नगर के निवासियों को भी अपने अनुभव का लाभ पहुंचने दें।

गौतम—हां, आपके इस अनुरोध को मैं स्वीकार करता हूं।

२७

कोशल-राजकुमारी से सम्बन्ध

अर्द्ध रात्रि का समय है। राजगृह के सभी निवासी निद्रादेवी की गोद में जा चुके हैं। किन्तु सम्राट् बिम्बसार के शयनकक्ष से प्रकाश की रेखा अभी तक बाहर आ रही है। दो प्रहरी द्वार से लगभग पचास गज की दूरी पर बैठे हुए ऊंघ रहे हैं। कक्ष के भीतर बहुत बढ़िया सजावट है। दीवारों पर अनेक प्रकार के देवी-देवताओं के हास-विलास के चित्र लगे हुए हैं। एक ओर एक विस्तृत पलंग बिछा हुआ है। बीचों-बीच दो-तीन पीठ पड़े हुए हैं, जिन पर बैठे हुए दो युवक आपस में वार्तालाप कर रहे हैं। दोनों की आयु लगभग बीस-पच्चीस वर्ष से अधिक नहीं है। उनमें से एक बोला—

"मित्र, तुमने कल कोशल के कुल पुरोहित तथा नाई को वापिस श्रावस्ती क्यों नहीं जाने दिया? क्या तुम उस समय यह भूल गए थे कि मुझे महाराज प्रसेनजित् से घृणा है?"

"मुझे सब कुछ स्मरण था सम्राट्! मैंने उनको जानबूझकर रोका है। मैं मगध तथा कोशल के बीच कई वर्ष से चलने वाले शीतयुद्ध को प्रकट युद्ध का रूप देना नहीं चाहता था।"

"तो उसको आप किस प्रकार रोक लेंगे महामात्य?"

"सम्राट्! आप जानते हैं कि वर्षकार का कोई कार्य गहन राजनीति से शून्य नहीं होता। मैं कोशल तथा मगध की शत्रुता को समाप्त करना चाहता हूं।"

"वह किस उद्देश्य से?"

"सुनिये महाराज! आप देखते हैं कि मगध के चारों ओर हमारे शत्रु ही शत्रु हैं। उत्तर में हमारा सबसे प्रबल प्रतिद्वंद्वी वैशाली गणतन्त्र है। यद्यपि गणतन्त्रों को साम्राज्य बढ़ाने की कामना नहीं हुआ करती, किन्तु वह एकतंत्र शासन प्रणाली के शत्रु होते हैं और सदा इस बात के लिये यत्नशील रहा करते हैं कि

उसे समाप्त कर उसके स्थान पर गणतन्त्र शासनप्रणाली स्थापित कर दी जावे। वैशाली के लिच्छावी गण का गणपति राजा चेटक हमारा प्रबल विरोधी है। वह भगवान् पार्श्वनाथ का अनुयायी जैन होने के कारण अपने आचार-व्यवहार में इतना कट्टर है कि अजैन संसार से कोई संपर्क रखना नहीं चाहता। मगध पर उसकी सदा से क्रूर दृष्टि है। मुझे अपने चरों द्वारा इस बात के समाचार मिलते रहते हैं कि लिच्छावी युवकों में मगध पर आक्रमण करने का उत्साह है। वैशाली तथा मगध के शीत युद्ध को समाप्त करने के लिए मैंने कई बार अप्रत्यक्ष रूप से यह यत्न किया कि हम दोनों राष्ट्र आपस में विवाह-बंधन में बंध जावें, किन्तु चेटक अपनी कोई कन्या अजैन को नहीं देना चाहता।"

"क्या राजा चेटक के कई कन्याएं है ?"

"अजी क्या पूछना ! उसके पूरी सात कन्याएं हैं।"

"क्या सभी अविवाहित है ?"

"नहीं, उनमें से पांच का विवाह हो चुका है, और शेष दो कुमारी हैं।"

"उनके विवाह कहाँ-कहाँ हुए है ?"

"राजा चेटक की सबसे बड़ी पुत्री का नाम त्रिशला देवी है। उसको प्रियकारिणी तथा मनोहरा भी कहते है। उसका विवाह वैशाली के उपनगर कुण्डग्राम, कुण्डपुर अथवा कुण्डलपुर के निवासी राजा सिद्धार्थ के साथ हुआ है। राजा सिद्धार्थ ज्ञातृक क्षत्रियों के गण के गणपति है।"

"क्या राजा सिद्धार्थ के साथ विवाह करने से राजा चेटक की राजनीतिक शक्ति में वृद्धि हुई ?"

"नही, क्योंकि राजा सिद्धार्थ के केवल एक पुत्र वर्द्धमान महावीर हुआ, जो राज-काज में चित्त न लगाकर जैन साधु हो गया। कहा जाता है केवल ज्ञान प्राप्त होने पर वह जैनियों का अंतिम तीर्थङ्कर होगा।"

"राजा चेटक की अन्य पुत्रियों के विवाह कहां हुए ?"

"उनकी द्वितीय पुत्री मृगावती का विवाह वत्सदेश के राजा शतानीक के साथ कौशाम्बी में हुआ है। शतानीक को सार अथवा महारत्ननाथ भी कहा जाता है। इस विवाह से राजा चेटक की राजनीतिक शक्ति वास्तव में बहुत

बढ़ गई है। राजा चेटक की तृतीय पुत्री वसुप्रभा का विवाह दशार्ण (दशासन) देश के हेरकच्छपुर (कमंठपुर) के स्वामी सूर्यवंशी राजा दशरथ के साथ तथा चतुर्थ कन्या प्रभावती का विवाह कच्छ देश के रोरुकपुर के स्वामी महातुर के साथ किया गया है। उनकी पांचवीं कन्या धारिणी को गांधार देश के महापुर के राजा महीपाल के पुत्र सात्यकि ने राजा चेटक से मांगा था, जिसे उन्होंने अस्वीकार करके उसका विवाह चम्पापुर के राजा दधिवाहन के साथ किया। उसकी शेष दो कन्याएं ज्येष्ठा तथा चेलना अभी कुमारी हैं। इनमें सबसे छोटी चेलना के रूप की प्रशंसा अधिक सुनी जाती है। मैंने चेलना के साथ आपका विवाह करने का अप्रत्यक्ष प्रस्ताव किया था, किन्तु चेटक किसी अजैन को अपनी कन्या नहीं देना चाहता।"

"तब तो यह कहना चाहिये कि राजा चेटक का मित्रबल अपनी कन्याओं के विवाह के कारण बहुत अधिक बढ़ गया है।"

"मैं आपको यही बतलाना चाहता था, सम्राट्! मगध को आज यदि भय है तो केवल तीन राज्यों से।"

"किस-किस से?"

"हमारा सबसे बड़ा तथा प्रबल शत्रु वैशाली का गणतंत्र है, जो हमारे ठीक उत्तर में तथा एक दम पड़ौस में है। हमारा दूसरा विरोधी अवन्ति का राजा चण्ड-प्रद्योत है। वह अत्यंत प्रतापी है, किन्तु उससे हमारी मित्रता है। अतएव उसकी ओर से हमको अधिक भय नहीं है। फिर वह मगध से पर्याप्त दूरी पर भी है। अतएव उससे हमारा युद्ध हो भी जाय तो हम को अधिक भय करने की आवश्यकता नहीं है। इसलिये हमारा सबसे बड़ा शत्रु केवल कोशल का राजा प्रसेनजित् ही रह जाता है। उसके साथ हमारा कई वर्ष से शीत-युद्ध चल रहा है। अब जान पड़ता है कि हमारे साथ दीर्घकाल से चलने वाले शीत-युद्ध को वह भी समाप्त करना चाहता है। यदि उसकी यह भावना न होती तो वह अपनी बहिन क्षेमा के विवाह का प्रस्ताव लेकर अपने राजपुरोहित को हमारे यहाँ कभी न भेजता। उसको दरबार में देखते ही आपकी त्योरियाँ चढ़ी देख कर मैं समझ गया कि आप इस प्रस्ताव को अस्वीकार करने वाले हैं, अतएव मैंने आपको उत्तर का

अवकाश न देकर उस बात को उस समय टाल दिया, जिससे इस विषय के ऊंच-नीच परिणामों पर आपके साथ बिचार-विनिमय किया जा सके।"

"तो इस सम्बन्ध में आपका क्या विचार है?"

"मैं मगध की शक्ति को आपके विवाहों द्वारा बढ़ाना चाहता हूं। इसी लिये मैंने आपके राजगद्दी पर बैठते ही अप्रत्यक्ष रीति से यत्न करके आपके लिये केरल के राजा मृगांक की पुत्री वासबी अपरनाम विलासवती के विवाह का यत्न किया था। आशा है कि यह विवाह शीघ्र ही होगा।"

"इस विषय में तो मुझे आपकी राजनीति की वास्तव में प्रशंसा करनी पड़ेगी। आपके यत्न से उसने अत्यन्त बिनयपूर्वक अपनी कन्या के विवाह का प्रस्ताव हमारे पास भेजा था और हमने भी इसीलिये अत्यन्त सम्मानपूर्वक उस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था। किन्तु स्थान दूर होने के कारण विवाह अभी तक भी टलता ही जा रहा है।"

"इसी प्रकार मैं इस विवाह को अस्वीकार करना नही चाहता। आज मगध तथा कोसल दोनो ही महाजनपद साम्राज्य बढ़ाने के मनसूबे बांध रहे हैं। दोनों ही एक दूसरे पर आक्रमण करने की योजना बना रहे है। यदि दोनों में से किसी ने एक दूसरे पर आक्रमण किया तो दोनों के नष्ट हो जाने का अंदेशा है, किन्तु इस विवाह के सम्पन्न हो जाने पर दोनो ओर एक-दूसरे पर आक्रमण की संभावना नष्ट हो जावेगी। तब हम दोनो अपने-अपने प्रभावक्षेत्र को बाँटकर उसमें स्वतन्त्रतापूर्वक अपने २ पैर फैला सकेंगे। हित के अतिरिक्त इस विवाह से हमको हानि किसी प्रकार की नही है। अतएव आप इस सम्बन्ध को तुरन्त स्वीकार करलें। आप देख चुके हैं कि विवाह-सम्बन्धों द्वारा राजा चेटक आज कैसी प्रबल शक्ति बन गया है। हमको भी इस उदाहरण से शिक्षा लेनी चाहिये।"

'अच्छा वर्षकार! मुझे आप की सम्मति स्वीकार है। कल कोशल के राजपुरोहित का राजसभा में सार्वजनिक सम्मान करके उनसे तिलक लेकर मुझे चढ़वा दो।"

२८

बौद्ध मत की शरण में

गौतम सिद्धार्थ सम्राट् बिम्बसार से वार्तालाप करके राजगृह के प्रसिद्ध आचार्य रामपुत्र रुद्रक के यहां आए। वह एक संसारप्रसिद्ध विद्वान् थे और अपने यहां ७९९ ब्रह्मचारियों को रखकर उन्हें शिक्षा देते थे। गौतम को अपने हाथों में समिधाएं लेकर आते देख कर आचार्य ने पूछा—

"क्या पढ़ना चाहते हो ?"

"अध्यात्म विद्या"

"कहां के निवासी हो ?"

"मैं कपिलवस्तु का निवासी था, किन्तु अब मैं गृहत्यागी हूँ।"

"ओह ! क्या तुम राजा शुद्धोदन के पुत्र गौतम सिद्धार्थ हो ?"

"ऐसा ही है गुरुदेव !"

इस प्रकार गौतम राजगृह में आचार्य रुद्रक के गुरुकुल में रह कर अध्ययन करने लगे। कुछ समय बाद उनके पास अध्यात्म-शास्त्र का अध्ययन समाप्त करके गौतम बोले—

"आचार्यवर ! मैंने आपकी शिक्षा द्वारा श्रद्धा, वीर्य, समाधि और स्मृति को प्राप्त कर लिया है, किन्तु केवल इन्हीं से निर्वाण की प्राप्ति दुर्लभ है। अतएव मैं प्रज्ञा का भी साक्षात्कार करना चाहता हूं। कृपया मुझे उसकी शिक्षा दीजिये।"

रुद्रक—यह विद्या मेरे पास भी नही है कुमार ! इसके लिये तुम किसी और गुरु को खोजो।

सिद्धार्थ—जैसी गुरुदेव की आज्ञा।

यह कहकर सिद्धार्थ वहां से चल दिये। उनके साथ उस आश्रम के पांच अन्य ब्रह्मचारी भी प्रज्ञा-लाभ के लिये गौतम के साथ चले। बाद में इन पांचों

को पंच भद्रवर्गीय कहा गया। ये छहों महात्मा भिक्षा ग्रहण करते हुए कई दिनों बाद गया पहुँचे। उन दिनों वहां कोई उत्सव मनाया जा रहा था। गौतम को वहाँ के साधुओं के चरित्र पर श्रद्धा नहीं हुई। अब उन्होंने वहाँ तपस्या के योग्य स्थान ढूंढा। गया से थोड़ी ही दूर उरुविल्व ग्राम में निरंजना नदी के किनारे एक समुचित स्थान पाकर गौतम वहाँ घोर तपस्या करने लगे। इससे उनको अत्यधिक निर्बलता आ गई। यहां तक कि एक बार तो वह मूर्छित होकर गिर पड़े। गौतम ने वहां दो वर्ष तक तप किया। किन्तु इतने वर्षों तक तपस्या करन पर भी उन्हें कोई लाभ दिखलाई न दिया। अतएव वह तपस्या को अनावश्यक समझने लगे। अब उन्होंने ग्राम में प्रवेश करके शरीर को पुष्ट करने का यत्न आरंभ किया। उनके इस आचरण को देखकर पंच महावर्गीय उनको समाधि-भीरु तथा पोच समझने लगे। वह गौतम का साथ छोड़कर वाराणसी चले गए।

अब गौतम वहां से चल कर निरंजना नदी को पार कर एक अश्वत्थ के नीचे बैठकर प्रज्ञा-लाभ करने का विचार करने लगे।

इस वृक्ष को उनके तपश्चरण के कारण बाद में बोधिवृक्ष नाम दिया गया। उस समय वह तीन दिन से अनशन कर रहे थे और उनको बेहद भूख सता रही थी। अचानक उस समय वहां सुजाता नामक एक महिला खीर का भोजन लिये हुए आ गई। उसने सिद्धार्थ को पेट भर भोजन कराया। भोजन करके गौतम की आंखें खुल गईं और उनको यह बात जंच गई कि शरीर को क्लेश देने से भी आत्मतत्त्व का बोध नहीं होता। यह विचार करके वह फिर ध्यान करने लगे। उस समय वह उच्चतम कोटि के ध्यान में पहुंच गए, जिससे 'मार' अथवा कामदेव ने उन पर सेना सहित आक्रमण किया। किन्तु गौतम सिद्धार्थ अत्यन्त धीर थे। अप्सराओं के नयन-बाण, उनके नूपुरों की आकर्षक ध्वनि तथा उनकी विविध काम-चेष्टाएं उनको लेशमात्र भी विचलित न कर सकीं। अन्त में मार पराजित एवं लज्जित होकर भाग गया। गौतम ने वहीं 'बोध' प्राप्त किया। वे 'बुद्ध' हो गए।

बुद्ध का मुखमण्डल आत्मिक तेज से चमक उठा। उनको जीवन का

असली तत्त्व मिल गया। उन्होंने निश्चय किया कि वास्तविक तत्त्व न तो शरीर को अत्यधिक कष्ट देने में है और न उसके द्वारा अनेक प्रकार के भोग भोगने में है। व्यक्ति को किसी जीव को दुःख न देते हुए अपने व्यक्तिगत आचरण को सुधारना चाहिये। इसी में उसका कल्याण है। उन्होंने इस संसार को क्षणभंगुर भी माना।

बोध प्राप्त करके उनको यह चिंता सवार हुई कि उस ज्ञान का उपदेश किसको दिया जावे। पंचवर्गीय भिक्षुओं का ध्यान आने पर वह उनको उपदेश देने काशी चले। उन पांचों के नाम थे—कौंडिन्य, वप, भद्रिय, महानाम और अश्वजित। उन्होंने गौतम को आते देखकर उनको अर्घ्यपाद्य आदि न देने का निश्चय किया। किन्तु गौतम के समीप आने पर उनका यह संकल्प स्थिर न रहा और उन्होंने उठकर उनका उचित सम्मान किया। गौतम ने कहा—

"मैं बोध प्राप्त कर चुका हूं और तुम्हें उपदेश देने आया हूं"

पहिले तो उन्होंने विश्वास न किया, किन्तु बाद में अपने से सबसे बड़े कौंडिन्य का मत मानकर उपदेश सुनना आरम्भ किया। महात्मा बुद्ध ने उनको पांच दिन तक उपदेश दिया। पहले दिन कौंडिन्य उसे मान गया और फिर क्रम से एक-एक दिन में एक-एक भिक्षु मानता गया। इस प्रकार बुद्ध ने पांच शिष्य बनाकर काशी के समीप सारनाथ में प्रथम बार धर्मचक्र-प्रवर्तन किया। पंचवर्गीय भिक्षुओं के बाद असित देवल का भागिनेय नारद भगवान् का उपदेश प्राप्त कर मौनी हो गया। इसके पश्चात् काशी के समृद्धिशाली सेठ का पुत्र यश तथा उसके चार मित्र परिव्राजक बने। इस पूरे काम में श्रावण मास निकल गया और बुद्ध को अपना प्रथम चातुर्मास्य काशी में ही व्यतीत करना पड़ा। इस प्रथम चातुर्मास्य में उनके कुल ६१ शिष्य बने। ऋषिपत्तनवन (सारनाथ) में संघ का संगठन किया गया, जिससे बौद्ध मत के बुद्ध, धर्म और संघ तीनों अंग विकसित हुए। बौद्धमत में इन्हीं को रत्नत्रय कहते हैं।

काशी का चातुर्मास्य समाप्त कर भगवान् ने उरुवेला जाते समय मार्ग में कापास्य वन में तीस भद्रीय कुमारों को शिक्षा देकर धर्मोपदेशार्थ चारों दिशाओं में भेज दिया। बिल्व काश्यप, नदी काश्यप तथा गया काश्यप नामक तीनों भाई

भारी आचार्य थे। वह तीनों अपने एक सहस्र शिष्यों सहित भगवान् के शिष्य हो गए।

भगवान् ने दूसरा चातुर्मास्य राजगृह में किया। इस बार सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार तथा बहुत से ब्राह्मणों ने बौद्धमत ग्रहण किया। इसी बीच उन्होंने सारिपुत्र और मौद्‌गलायन नामक भिक्षुओं को शिष्य बनाकर उन्हें अपने सब शिष्यों में प्रधानता दी।

बाद में उन्होंने अनेक विद्वानों, तपस्वियों और राजाओं को अपने मत की दीक्षा दी। दीक्षित भिक्षुओं के लिए 'विहारों' की स्थापना की गई। गौतम बुद्ध ने भिक्षुओं के अलावा बाद में स्त्रियों को भी भिक्षुणी होने का अधिकार दिया। स्त्रियों के लिए पृथक् 'विहार' बनाए गए। इन विहारों के लिए बुद्ध ने विस्तृत नियम स्वयं बनाए।

मगध के उत्तर में उन दिनों नौ लिच्छावी तथा नौ मल्ल राजाओं का एक गणतन्त्र राज्य था, जिसकी राजधानी वैशाली थी। राजगृह तथा वैशाली दोनों ही बुद्ध के समय बौद्धमत के प्रधान केन्द्र थे। यद्यपि वैशाली लिच्छावी गणतन्त्र के प्रधान राजा चेटक जैनी थे, किन्तु वैशाली में बुद्ध के मत का प्रचार राजगृह से कम नहीं था। बुद्ध के समय बौद्धमत की कीर्ति इतनी अधिक फैली कि वह उनकी जन्मभूमि कपिलवस्तु से भी आगे निकल गई। बुद्ध प्रत्येक देश में पैदल घूम-घूम कर अपने मत का प्रचार करने लगे।

भगवान् बुद्ध ने जिस तत्त्वज्ञान का उपदेश किया, उसको चार आर्य सत्य कहा जाता है। वह यह हैं—१. सब कुछ क्षणिक तथा दुःख रूप है। २. संसार के क्षणिक पदार्थों की तृष्णा ही दुःखों का कारण है, ३. उपादान सहित तृष्णा का नाश होने से ही दुःखों का नाश होता है। ४. हृदय से अहंभाव और राग-द्वेष की सर्वथा निवृत्ति होने पर निर्वाण की प्राप्ति होती है।

भगवान् बुद्ध ने साधन के आठ अंग बतलाए हैं। उनको आर्य अष्टाङ्ग मार्ग कहा जाता है। वह यह हैं—१ सत्य विश्वास, २ नम्र वचन, ३ उच्च लक्ष्य, ४ सदाचरण, ५ सद्‌वृत्ति, ६ सद्‌गुणों में स्थिति, ७ बुद्धि का सदुपयोग तथा ८ सद्‌ध्यान। भगवान् बुद्ध ने धर्म-प्रचार के लिये अत्यधिक प्रयत्न किया और कष्ट भी कम नहीं सहे।

२६

अभयकुमार की न्याय-बुद्धि

मध्याह्न होने में अभी कुछ देर है। सम्राट् श्रेणिक की राजसभा पूर्णतया भरी हुई है। महाराज आज का राजकार्य समाप्त करके उठने ही वाले थे कि व्यावहारिक ने आकर निवेदन किया।

"राज-राजश्वर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय"

"क्या है व्यावहारिक ?"

"देव ! एक अभियोग नीचे के न्यायालयों से होता हुआ मेरे पास आया था, किन्तु वह इतना जटिल है कि मैं भी उसका न्याय करने में असमर्थ हूँ। इसलिये उसे सम्राट् की सेवा में उपस्थित करने की अनुमति चाहता हूं।"

"अच्छा, हम अनुमति देते हैं। अभियोग उपस्थित किया जावे।"

इसी समय व्यावहारिक ने राजसभा के एक कक्ष में बिठलाई हुई दो भद्र-महिलाओं को राजसभा में उपस्थित किया। दोनों महिलाओं की आयु लगभग तेईस-चौबीस वर्ष की थी। जिस समय वह दोनों महिलाएं सम्राट् के सम्मुख उपस्थित हुईं तो उनके अत्यन्त गौर वदन तथा अलौकिक सौंदर्य से सम्राट् सहित समस्त सभा के नेत्र चौंधिया गए। उनके समस्त शरीर पर रत्नजटित स्वर्णाभूषण थे। सम्राट् इन अतिशय रूप वाली महिलाओं को राजसभा में लाए जाने पर आश्चर्य कर ही रहे थे कि व्यावहारिक बोला—

"अभियोग इन दो महिलाओं का है। इनमें बाईं ओर वाली महिला का नाम वसुमित्रा तथा दाहिनी ओर वाली का वसुदत्ता है। यह दोनों सेठ सुभद्रदत्त की पत्नियां हैं।"

सम्राट्—सेठ सुभद्रदत्त का तो अभी-अभी देहान्त हुआ है न ? वह मगध के एक ग्राम के निवासी थे और विदेशों में अपार धन-सम्पत्ति कमाकर अभी-अभी राजगृह में आकर बसे थे।

व्यावहारिक—जी अन्नदाता ! यह दोनों उन्हीं सेठ सुभद्रदत्त की पत्नियां हैं।

सम्राट्—इन दोनों में यह छः मास का बालक किसका है ?

व्यावहारिक—इसी पर तो सारा झगड़ा है। यह दोनों ही उसे अपना-अपना बतलाती हैं।

सम्राट्—साक्षियों से किसका पक्ष अधिक पुष्ट प्रमाणित होता है ?

व्यावहारिक—सेठ सुभद्रदत्त राजगृह में कुल दो मास से आया था। अतएव जो कुछ साक्षियां मिलती है वह केवल दो मास के अन्दर की हैं। साक्षियों से यही प्रमाणित होता है कि लड़के पर इन दोनों का समान प्यार रहा है। लड़के को ऊपरी दूध पिलाया जाता है, इसलिए दूध की साक्षी का तो एक दम अभाव है। दोनों उसे अपने-अपने पेट से उत्पन्न लड़का कहती हैं। देखने वालों का कहना है कि बच्चे पर इन दोनों का समान प्यार था।

सम्राट्—सेठ सुभद्रदत्त तो राजगृह के एक गांव का ही निवासी था। उसके गांव से कुछ साक्षियां नही मंगवाई गई ?

व्यावहारिक—गांव से भी साक्षिया मगवाई गई थी देव ! किन्तु वह तो और भी असंतोषजनक सिद्ध हुई। उनसे केवल इतना ही सिद्ध हुआ कि सेठ सुभद्रदत्त उस गांव का निवासी था और दोनों सेठानियां उसकी परिणीता पत्नियां थी। वह इन दोनों को साथ लेकर सार्थवाह के साथ अपना एक निजी पात लेकर सुवर्णद्वीप व्यापार करने गया था और फिर वापस गांव नहीं गया।

सम्राट्—तो इसका यह अर्थ हुआ कि उसके यह बच्चा कही यात्रा में हुआ और उसने अपनी यात्रा को राजगृह आकर समाप्त किया।

व्यावहारिक—"ऐसा ही है देव !"

सम्राट्—तब तो यह अभियोग बड़ा पेचीदा है। इसका निर्णय करना कुछ सुगम कार्य नहीं है।

फिर सम्राट् ने अभयकुमार की ओर देखकर उससे पूछा।

"क्यों अभयकुमार ! क्या तुम इस अभियोग का निर्णय कर सकोगे ?"

अभयकुमार—अवश्य कर सकूंगा, श्रीमान् पिताजी।

तब सम्राट् ने व्यावहारिक से कहा—

"अच्छा व्यावहारिक, इस अभियोग को युवराज के सम्मुख उपस्थित करो। इसका वही निर्णय करेंगे।"

व्यावहारिक के उक्त दोनों सेठानियों को अभयकुमार के सामन उपस्थित करने पर अभयकुमार ने उनमें से एक से पूछा—

अभयकुमार—वसुमित्रा देवी! उस परमपिता परमात्मा की साक्षीपूर्वक अपना वक्तव्य दो।

वसुमित्रा—मैं उस परमपिता परमात्मा की शपथपूर्वक यह कहती हूं कि यह बालक सुमित्र मेरी कोख से उत्पन्न हुआ है। मैं ही इसकी माता हूं, वसुदत्ता इसकी माता नहीं।

अभयकुमार—अब वसुदत्ता देवी तुमको क्या कहना है?

वसुदत्ता—युंवराज! मैं भी उस परमपिता परमात्मा की शपथपूर्वक यह कहती हूं कि यह बालक सुमित्र मेरी कोख से उत्पन्न हुआ है और मैं ही इसकी माता हूं, वसुमित्रा नहीं।

अभयकुमार—तो तुम लोग सच्ची बात नहीं बतलाओगी? यह तो संभव नही है कि बालक दोनों की कोख से उत्पन्न हुआ हो। किन्तु इस पर दावा दोनों करती हैं, क्योंकि जो बच्चे की माता सिद्ध होगी सेठ सुभद्रदत्त की अपार सम्पत्ति पर भी उसी का अधिकार होगा; किन्तु तथ्य का किसी प्रकार पता नहीं लगता। अस्तु मैं तो बच्चे को आधा-आधा काटकर दोनों को दिये देता हूं।

यह कहकर अभयकुमार ने बच्चे को लेकर उसके पेट पर नंगी तलवार रख दी। वसुमित्रा यह देखकर धाड़ें मार-मार कर रोने लगी। उसने अभयकुमार की तलवार पकड़ कर उससे कहा—

"युवराज! बच्चे के दो टुकड़े मत करो। इसे आप वसुदत्ता को ही दे दें। मैं इस पर से अपने दावे को वापिस लेती हूं और वसुदत्ता के पास ही इसका मुख देख लिया करूंगी।"

यह कह कर वसुमित्रा अभयकुमार के पावों में पड़ गई, किन्तु वसुदत्ता

इस सारे दृश्य को खड़ी-खड़ी देखती रही। इस पर अभयकुमार उस बच्चे को छोड़कर बोले—

"यह सिद्ध हो गया कि बच्चा वसुमित्रा का है, मैं बच्चा वसुमित्रा को देता हूं।"

उन्होंने वसुदत्ता की ओर देखकर कहा—

"निर्दयी राक्षसी! तू बच्चे की माता बनने का ढोंग करती है और उसकी गर्दन पर तलवार देखकर मूर्ति के समान बनी खड़ी रही। तुझको मैं असत्य बोलने के अपराध में देशनिर्वासन का दण्ड देता हूं। सेठ सुभद्रदत्त की समस्त संपत्ति के एकमात्र अधिकारी वसुमित्रा और उसका पुत्र होंगे।"

तब व्यावहारिक ने सम्राट् से फिर कहा—

"देव! एक अभियोग और है। वह भी मेरी समझ में नहीं आया।"

सम्राट्—अच्छा! उसे भी हमारे सामने उपस्थित करो।

व्यावहारिक ने एक आकृतिवाले दो व्यक्तियों के साथ एक स्त्री को उपस्थित किया। स्त्री अत्यधिक सुन्दर थी। उनको उपस्थित करके व्यावहारिक बोला—

व्यावहारिक—अन्नदाता! यह अभियोग कोशल जनपद के अयोध्या नगर से सम्राट् प्रसेनजित् ने स्वय भेजा है। बहुत कुछ यत्न करने पर भी इस अभियोग का वह निर्णय न कर सके तो उन्होंने इसे महाराज के पास भेज दिया।

सम्राट्—अच्छा बोलो क्या अभियोग है?

व्यवहारिक—इस मामले में वादिनी यह स्त्री है। इसका नाम भद्रा है। यह अपना मामला स्वयं उपस्थित करेगी।

इस पर सम्राट् उस महिला से बोले—

सम्राट्—क्यों देवी! तेरा क्या अभियोग है?

भद्रा—देव! इन दोनों में से एक व्यक्ति मेरा पति है। इनमें एक व्यक्ति नकली है जो मेरे पति का रूप बनाये हुए है। कृपया मुझे नकली व्यक्ति से छुड़ाकर मुझे मेरा असली पति दिलवा दें।

सम्राट्—यह तो बड़ा पेचीदा मामला है।

व्यावहारिक—तभी तो महाराज प्रसेनजित् ने उसे आपके पास भेजा है सम्राट्।

सम्राट्—क्या इन तीनों व्यक्तियों के विषय में इनका पिछला वर्णन भी भेजा गया है।

व्यावहारिक—भेजा गया है श्रीमान् !

सम्राट्—अच्छा, उसे पढ़कर सुनाओ।

व्यावहारिक—जैसी श्रीमान् की आज्ञा ! मैं इसे पढ़कर सुनाता हूं।

"इस स्त्री भद्रा का पति बलभद्र अयोध्या निवासी एक सच्चरित्र किसान है। इस स्त्री का अयोध्या के एक धनिक व्यक्ति वसंत से गुप्त सम्बन्ध हो गया। बाद में एक त्यागी महात्मा के उपदेश से इसने शीलव्रत ले लिया और वसन्त का साथ छोड़ दिया। वसन्त ने उस पर बहुत डोरे डाले, किन्तु यह उसके वश में न आई। बाद में वसन्त को इस स्त्री के लिये पागल दशा में गलियों में घूमते हुए देखा गया। कुछ समय पश्चात् वसन्त अयोध्या से गायब हो गया और बलभद्र का आकार बनाकर एक अन्य व्यक्ति असली बलभद्र को घर से निकालने लगा। इसके पश्चात् यह पता लगाना असम्भव हो गया कि असली बलभद्र कौन है।"

सम्राट्—यह तो बड़ा भयानक वर्णन है। यह अभियोग तो पहले से भी अधिक पेचीदा है।

फिर उन्होंने अभयकुमार की ओर देखकर उनसे पूछा—

"क्यों कुमार ! तुम इस अभियोग का निर्णय कर सकोगे ?"

कुमार—सम्भवतः कर तो सकूंगा।

सम्राट्—अच्छा देवी ! तुम्हारे अभियोग का निर्णय युवराज करेंगे।

दोनों बलभद्रों का एक-सा रूपरंग देखकर पहले तो अभयकुमार चकरा गए। उन्होंने दोनों व्यक्तियों के शरीरों की भद्रा की सहायता से अत्यन्त सूक्ष्मतापूर्वक जांच की, किन्तु उनको उन में लेशमात्र भी अन्तर न मिला। अन्त में सोचते-सोचते उनके हृदय में एक विचार आया। उन्होंने दोनों बलभद्रों को एक सींखचेदार कोठरी में बन्द कर दिया। फिर उन्होंने एक तूंबी अपने सामने रखकर दोनों बलभद्रों से कहा—

"सुनो भाई बलभद्रों ! तुम दोनों में से कोठे के सींखचों में से निकल कर

जो कोई भी इस तूंबी के छिद्र से निकल जावेगा उसी को असली बलभद्र समझा जावेगा और उसी को भद्रा मिलेगी।"

कुमार के इन वचनों को सुनकर असली बलभद्र को बड़ा दुःख हुआ। उसे विश्वास हो गया कि अब भद्रा मुझे कभी न मिलेगी, क्योंकि मैं तूंबी के छेद से नहीं निकल सकता। किन्तु कुमार के इन वचनों से नकली बलभद्र को बड़ा हर्ष हुआ। उसने अपने शरीर को अत्यन्त पतला करके सींखचों से निकल कर ज्योंही तूंबी के अन्दर प्रवेश किया कि अभय कुमार ने फौरन तलवार का एक भरपूर हाथ तूंबी में मारकर उस नकली बलभद्र को जान से मार डाला। इसके पश्चात् उसने असली बलभद्र को कोठरी से निकाल कर उसे भद्रा के साथ अयोध्या जाने की अनुमति दे दी। कुमार की इस न्याय बुद्धि को देखकर सारी सभा में बेहद हर्ष छा गया। तब महामात्य वर्षकार उठ कर बोले—

"युवराज में आपको इस अनुपम एवं विलक्षण बुद्धि के लिये बधाई देता हूं"

इसके पश्चात् सभा विसर्जित कर दी गई और सम्राट् भोजन के लिये उठ गए।

इस प्रकार पक्षपातरहित न्याय करने से अभयकुमार की कीर्ति चारों ओर फैल गई। उनकी न्यायपरायणता देखकर सभी उनकी प्रशंसा करते थे। कोशल के पश्चात् अन्य अनेक देशों से भी उनके पास अभियोग आते रहते थे, जिनका वह अपनी विलक्षण प्रतिभा से तुरन्त निर्णय कर दिया करते थे।

३०

चित्रकार भरत

मध्याह्न होने में अभी आधे पहर का विलम्ब है। क्वार मास होने के कारण धूप की गर्मी बहुत कुछ निकल गई थी, फिर भी वैशाली के संथागार का फर्श धूप से गर्म हो रहा है। उसके मत्स्य देश के उज्ज्वल श्वेत मरमर के सभामण्डप में पड़ा हुआ सूर्य का प्रतिबिम्ब आंखों में ऐसी चकाचौंध उत्पन्न कर रहा है कि उसके फर्श के काले पत्थर को देखने से ही चैन मिलता है। उसकी छत के काले पत्थर के एक सौ आठ खम्भे अभी तक सूर्य के ताप से बचे हुए हैं। सभा-भवन के चारों ओर भीतर की ओर रक्खी हुई हाथी दांत की नौ सौ निन्यानवे चौकियों पर आठों कुलों के गण चुपचाप बैठे हुए हैं। संथागार के ठीक बीचों-बीच पत्थर की एक वेदी पर एक स्वर्ण-खचित सिंहासन रखा हुआ है, जिस पर गणपति राजा चेटक बैठे हुए हैं। वेदी के ऊपर स्वर्णदण्डों पर एक चंदोवा तना हुआ है, जिस पर अनेक प्रकार का तारकशी का काम हो रहा है। वेदी के तीनों ओर कटिनियां थीं, जिनके निकट अनेक कर्णिक सन्निपात तथा राजसभा की कार्यवाही लिख रहे थे। राजा चेटक सभा में आकर बैठे ही थे कि दौवारिक ने आकर निवेदन किया—

"लिच्छावि-कुलसूर्य गणपति महाराज चेटक की जय।"

"क्या है? दौवारिक?"

"महाराज! कोशल देश का एक चित्रकार महाराज के दर्शन करना चाहता है। वह अपना नाम भरत बतलाता है और कहता है कि उसका उद्देश्य वैशाली के समस्त चित्रकारों से आशुचित्राङ्कन में प्रतियोगिता करना है।"

"इतना आत्मविश्वास है चित्रकार भरत को अपने ऊपर कि उस को वैशाली के सभी चित्रकारों को पराजित करने का विश्वास है? अच्छा उसको सम्मानपूर्वक अन्दर ले आओ।"

दौवारिक पीछे वापिस चला गया। उसके जाने के बाद कुछ देर में ही एक युवक ने संथागार में प्रवेश किया। उसकी आयु लगभग तीस वर्ष की थी, रंग गोरा तथा बाल घुंघराले थे। उसने सुन्दर वस्त्र पहिने हुए थे। कमर में बाईं ओर एक सुन्दर म्यानवाली तलवार लटकी हुई थी, दाहिनी ओर एक छोटी-सी पेटी लटकी हुई थी, जो रेशमी वस्त्र में लिपटी हुई थी। उसने आते ही गणपति राजा चेटक को अभिवादन करके कहा—

"लिच्छवि कुलभानु राजराजेश्वर गणपति महाराज चेटक की जय।"

"आओ चित्रकार! बैठो।"

चित्रकार के अपने निर्दिष्ट आसन पर बैठने पर गणपति ने फिर प्रश्न किया—

"आप कहाँ के निवासी हो चित्रकार?"

"देव! मै निवासी तो अयोध्या का हूं, किन्तु बाल्यावस्था में जब से मैंने विद्याध्ययन के लिए जन्मभूमि को छोड़ा, तब से मुझे वहां फिर जाने का अवसर नही मिला।"

"आप ने कला की शिक्षा कहां पाई है?"

"मैंने शिक्षा तो तक्षशिला में पाई है। किन्तु चित्रकला के जम्बूद्वीप भर में मुझे जहां-जहां भी विशेषज्ञ सुनने को मिले, मैंने उन सबके पास जाकर उनकी सेवा करने का फल लिया है।"

"अच्छा, तो तुमने जम्बूद्वीप भर का भ्रमण भी किया है?"

"देव हाँ, समस्त जम्बूद्वीप का नही तो उसके प्रधान-प्रधान नगरों की यात्रा अवश्य की है। मेरा दावा है कि चित्र बनाने में शीघ्र गति से याथार्थ्य उतारने में मेरा मुकाबला कोई नही कर सकता।"

"इतना आत्मविश्वास है तुमको अपनी विद्या पर?"

"यह देव के चरणों की कृपा का ही फल है।"

इसके पश्चात् महाराज चेटक ने दौवारिक को बुला कर उससे कुछ कहा।

इसके थोड़े समय पश्चात् ही कई चित्रकारों ने संथागार में प्रवेश किया। उन सभी के पास चित्र बनाने की सभी सामग्री थी। उनके आने पर गणपति बोले—

"वैशाली के समस्त चित्रकार सुनें, यह अयोध्यानिवासी कुशल चित्रकार भरत यहां आए हुए हैं। इनकी इच्छा वैशाली के समस्त चित्रकारों से प्रतिद्वन्द्विता करने की है। उनका दावा है कि शीघ्रतापूर्वक याथार्थ्य प्राप्त करने में उनकी कोई बराबरी नहीं कर सकता। आप लोग किस चित्र के बनाने में प्रतियोगिता करेंगे ?

"हम तो देव का चित्र ही बनाना अधिक पसंद करेंगे।"

"अच्छा यही सही। आप लोग अपने-अपने चित्रपट पर एक-एक चित्र शीघ्रतापूर्वक बनावें।"

गणपति राजा चेटक के यह कहते ही सब चित्रकारों ने अपने-अपने चित्रपट पर तूलिका द्वारा चित्र बनाना आरम्भ किया। भरत ने भी अपने चित्रपट पर चित्र बनाना आरम्भ किया, किन्तु उसने आरम्भ करने के बाद कुछ ही क्षणों में चित्र बनाकर गणपति के सामने उपस्थित कर दिया। उसके इस चातुर्य को देखकर सब के सब चित्रकार अवाक् रह गए।

इसके बाद भरत बोला—

"सब चित्रकार मेरे निवेदन को सुनें। वह अपने २ चित्र को पूरा कर लें। तब तक मैं उनको दूसरा चमत्कार दिखलाऊंगा।"

यह कहकर उसने उपस्थित सभी चित्रकारों की संख्या पच्चीस के बराबर चित्रपट अपने पास रखकर एक-एक चित्रपट को अपने हाथ में लेकर उस पर तूलिका रख-रख कर उसे एक २ कर सामने के आसन पर रखना आरम्भ किया। फिर उसने सभी चित्रकारों को बुला कर उनमे से प्रत्येक के हाथ में एक२ चित्रपट दे दिया। चित्रकारों को यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि प्रत्येक चित्रकार के हाथ में उसका अपना चित्रपट था। यह दृश्य देखकर वह सब चित्रकार भरी सभा में भरत के चरणों में गिर गए। तब उनमें से सबसे वृद्ध चित्रकार ललितकुमार ने राजा चेटक से कहा—

"देव ! इन अयोध्यावासी महोदय से प्रतिद्वन्द्विता हम तो क्या इन्द्र की सभा का भी कोई चित्रकार नही कर सकता। इनको तो निश्चय से किसी देवताकी सिद्धि है, जिसकी सहायता से यह जिस व्यक्ति का मन में ध्यान करके चित्रपट पर

तूलिका रखते हैं उस का चित्र तत्काल चित्रपट पर बन जाता है। हम इनके साथ प्रतिद्वन्द्विता करने में असमर्थ हैं।''

इस पर राजा चेटक बोले—

''अयोध्यानिवासी चित्रकार ! हम तुमको वैशाली के समस्त चित्रकारों को प्रतिद्वंद्विता में पराजित करने पर बधाई देते हैं। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो हम तुमको वैशाली में निवास की पूर्ण सुविधा देंगे। हमारी इच्छा है कि तुम हमारी सन्तान को चित्रकला की शिक्षा दो।''

इस पर भरत ने उत्तर दिया—

''मैं इसको अपना सौभाग्य समझूंगा देव ! अभी मैंने कहीं अपना घर बनाया भी नहीं है। यदि महाराज की ऐसी कृपा रही तो मैं वैशाली को ही अपनी जन्म-भूमि मानकर यहाँ की नागरिकता प्राप्त करने का यत्न करूंगा।''

राजा—हम तुमको अपने राजमहल का वह भवन रहन के लिये देते हैं, जो अभी तक हमारे अतिथि-निवास का काम देता रहा है। तुम को वहां सभी प्रकार की आवश्यक वस्तुएं तैयार मिलेंगी।

भरत—मैं अनुग्रहीत हुआ देव ! मैं अभी उस भवन में जा रहा हूं।

तभी दोपहर के विश्राम का घंटा बजा और राजा चेटक सहित अष्ट कुल के सभी नौ सौ निन्यानवे राजा तथा अन्य सभासद अपने-अपने घर चले गए। राजा चेटक भरत को अपने साथ लेकर अपने घर के समीप अतिथिशाला में ठहरा आए। यहां उन्होंने उसके आतिथ्य की सम्पूर्ण व्यवस्था करदी।

राजा चेटक की पटरानी का नाम सुभद्रा था। उससे राजा चेटक की सात कन्याएं उत्पन्न हुई थीं—

१. त्रिशला देवी का विवाह वैशाली के उपनगर कुण्ड ग्राम कुण्डपुर अथवा कुण्डल पुर के निवासी नाथवंशी अथवा ज्ञातृकवंशीय राजा सिद्धार्थ के साथ हुआ था। त्रिशला देवी को प्रियकारिणी तथा मनोहरा भी कहा जाता था।

२. द्वितीय कन्या मृगावती का विवाह वत्सदेश के राजा शतानीक के साथ कौशाम्बी में हुआ था। शतानीक को सार अथवा महाराजनाथ भी कहते थे। इन दोनों का पुत्र उदयन अपने पिता के बाद बड़ा प्रतापी राजा हुआ।

३. तृतीय कन्या वसुप्रभा का विवाह दशार्ण (दशासन) देश के हेरकच्छपुर (कमैठपुर) के स्वामी सूर्यवंशीय राजा दशरथ के साथ हुआ था।

४. चतुर्थ पुत्री प्रभावती का विवाह कच्छदेश के रोरुकपुर के स्वामी महातुर के साथ किया गया था।

५. पांचवीं पुत्री धारिणी का विवाह अंगदेश के राजा दधिवाहन के साथ चम्पापुर में किया गया था।

राजा चेटक की शेष दो कन्याएं ज्येष्ठा तथा चेलना अभी कुमारी थीं। इनमें चेलना अधिक सुन्दर थी। उसके सौन्दर्य की प्रशंसा देश-विदेश तक फैल चुकी थी। मगध का महामात्य वर्षकार भी उसको सम्राट् बिम्बसार के लिये मांग चुका था। किन्तु राजा चेटक जैनी था। वह अपनी पुत्री का विवाह बौद्ध-धर्मावलम्बी बिम्बसार के साथ करने को किसी प्रकार भी तैयार न हुए। भरत जब यहां रहने लगा तो राजा चेटक की दोनों छोटी पुत्रियां भी उसके पास आने जाने लगीं। भरत ने उनके भी अनेक चित्र बनाए।

एक बार राजा चेटक ने चित्रकार भरत को अपनी पुत्रियों के साथ अट्टहास करते हुए देख लिया। इससे उनके मन में संदेह हुआ कि ऐसा न हो कि यह प्रेम बढ़ते-बढ़ते अनुचित रूप धारण कर ले। वह भरत की स्वतंत्रता पर अंकुश लगाना नहीं चाहते थे, क्योंकि ऐसा करने से यह समाचार नगर की चर्चा का विषय बन जाता। फिर वह अपनी पुत्रियों पर भी पाबंदी लगाना नहीं चाहते थे, क्योंकि ऐसा करने पर भी समाचार किसी प्रकार फूट ही निकलता। अतएव उन्होंने इस विषय पर मन ही मन विचार करके यह निश्चय किया कि भरत को गुप्त रूप से मरवा दिया जावे।

राजा चेटक ने यह निश्चय करके अपने विश्वासी सेवकों को यह कार्य दिया कि वह भरत को नगर के बाहर किसी एकान्त स्थान में ले जाकर उसकी हत्या करदें, किन्तु उन सेवकों में से एक भरत पर अत्यधिक श्रद्धा रखता था। उसने भरत को उसकी आसन्नमृत्यु का समाचार देकर उसे परामर्श दिया कि वह वैशाली से तत्काल भाग जावे।

भरत ने जो यह समाचार सुना तो वह अत्यन्त घबरा गया। उसने उद्यान

जाने के बहाने से अपना अश्व तैयार कराया और चलने के लिये तैयार हो गया। उसने विचार किया कि यदि अधिक सामान लिया गया तो लोगों को भागने का संदेह हो जावेगा। अतएव वह केवल एक चेलना के चित्र को लेकर वैशाली से भाग चला।

रात्रि के समय जब राजा चेटक उद्यान से घूम कर वापिस लौटे तो उन्होंने अपने उन सेवकों को एकान्त में बुलाकर उनमें से भद्राश्व से कहा—

"क्यों भद्राश्व ! क्या तुमने भरत को मार डाला ?"

इस पर भद्राश्व बोला—

"देव ! भरत आज दोपहर से ही न जाने कहां भाग गया। हमने उसको सब जगह ढूंढा, किन्तु हमको उसका कहीं भी पता नहीं मिला।"

"तब तो यह समझना चाहिये कि वह वैशाली से भाग गया ?"

"निश्चय से महाराज ! क्या उसका पीछा किया जावे ?"

"नहीं पीछा करने की आवश्यकता नहीं है। हमको तो उससे अपना पीछा छुड़ाना था। यदि इस प्रकार यहां से चला गया तो यह और भी अच्छा हुआ।"

३१

भगवान् महावीर की दीक्षा

वैशाली के अष्टकुल में ज्ञातृक क्षत्रियों का बड़ा मान था। वैसे लिच्छावियों को अपने कुल का इतना अधिक अभिमान था कि वह अपने रक्त में अन्य रक्त का मम्मिश्रण नही होने देते थे, किन्तु ज्ञातृक क्षत्रियों को भी उनसे कम खानदानी नहीं माना जाता था। ज्ञातृकों को ज्ञातृकवंशीय के अतिरिक्त नाथवंशीय भी कहा जाता था। उनकी राजधानी कुण्डपुर वैशाली से लगभग बारह-तेरह मील दूर थी। कभी उसको कुण्डग्राम भी कहा जाता था, किन्तु इन दिनों उसे कुण्डपुर अथवा कुण्डलपुर ही कहा जाता था। जब तक वैशाली का गणतन्त्र नहीं बना था, वह एक छोटी बस्ती थी। किन्तु बाद में वह बढ़ते-बढ़ते कुण्डपुर से मिल गई और कुण्डपुर को भी उसका ही एक उपनगर माना जाने लगा।

ज्ञातृक गण के गणपति कश्यपगोत्रीय राजा सिद्धार्थ थे। उनका वैशाली के कुलों के राजाओं में अच्छा मान था। लिच्छावी लोग तो उनका इतना अधिक सम्मान करते थे कि वैशाली के लिच्छावी गणपति राजा चेटक ने अपनी सबसे बड़ी पुत्री त्रिशला देवी का उनके साथ विवाह किया था। राजा सिद्धार्थ को इस प्रकार उत्तम कुल, राजप्रतिष्ठा तथा उच्चवंशीय अनुकूल पत्नी सभी प्रकार के सुख प्राप्त थे।

प्रातःकाल का सुन्दर समय था। आषाढ़ शुक्ल छट होने के कारण ऋतु अत्यन्त सुहावनी थी। रात्रि में वर्षा हो जाने के कारण इस समय हल्की-हल्की ठंड से वसंत ऋतु के जैसा दृश्य उपस्थित था। त्रिशला देवी का मन आज बिस्तर छोड़ते ही इतना अधिक प्रसन्न था कि जैसे कोई अक्षय निधि मिल गई हो। वह मन ही मन प्रसन्न थी, किन्तु उसको यह पता नहीं था कि यह प्रसन्नता किस बात की थी। उसने शय्या छोड़कर प्रथम अपने इष्ट देव का ध्यान किया और फिर शौच-स्नान आदि से निवृत्त होकर उत्तम वस्त्रालंकार धारण

किये। इस समय राजा सिद्धार्थ भी नित्यकर्म से निवृत्त होकर अपनी अध्ययन-शाला में बैठे थे कि त्रिशला देवी ने वहां जाकर कहा—

"महाराज का कुछ गम्भीर अध्ययन चल रहा है क्या ?"

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। आओ, चली आओ। निश्चय से तुम मेरे अध्ययन कक्ष में विना विशेष कारण के नहीं आतीं। तुम्हारा मुख आज विशेष रूप से प्रसन्न भी है। क्या कोई आनन्ददायक समाचार है।

"आज रात्रि के पिछले पहर में मैंने अनेक स्वप्न देखे। यद्यपि उन स्वप्नों में मुझे कोई खास बात मालूम नहीं देती, किन्तु न जाने क्यों मेरा मन उनको देखकर बहुत प्रसन्न हो रहा है। आश्चर्य की बात तो यह है कि स्वप्नों की संख्या अनेक होते हुए भी मुझे वह अभी तक अच्छी तरह से याद है।"

"भला तुमने कुल कितने स्वप्न आज रात देखे ?"

"पूरे सोलह।"

"अच्छा, सुनें तो तुमने क्या-क्या स्वप्न देखे हैं ?"

"उन्हीं को सुनाने को तो मैं आप के पास आई हूं। आप निमित्त शास्त्र के एक असाधारण विद्वान् गिने जाते हैं। मेरे स्वप्नों का फल आप अवश्य कह सकेंगे। मेरा विश्वास है कि उनका फल अवश्य ही उत्तम होगा।"

"अच्छा, तुम अपमे स्वप्नों को सुनाओ।"

"सबसे प्रथम महाराज ! मैं क्या देखती हूं कि १. मेरे सामने एक हाथी खड़ा हुआ है। उसके गण्डस्थल से मद बह रहा था। वह ऐरावत के समान ऊँचा था। २. फिर मैंने एक बैल देखा। वह बैल चन्द्रमा की चांदनी के समान सफेद था। ३. बैल के पश्चात् मैंने एक भयानक सिंह देखा। सिंह का रंग लाल था और उसको देखने से भय लगता था। ४. उसके पश्चात् मैंने लक्ष्मी को देखा। लक्ष्मी कमल के ऊपर बैठी हुई थी और उसके दोनों ओर खड़े हुए दो हाथी उसको स्वर्णकलशों से स्नान करा रहे थे। ५. फिर मैंने दिव्य फूलों की एक माला देखी। उसके फूलों में से दिव्य सुगन्ध आ रही थी। ६. इसके पश्चात् मैंने सोलहों कलाओं से चमकते हुए पूर्ण चन्द्रमा को देखा। नक्षत्र-मण्डल तथा तारा-गण के बीच में खिला हुआ चन्द्रमा उस समय बड़ा सुन्दर दिखलाई दे रहा

था । ७, चन्द्रमा के पश्चात् मैंने उदयाचल पर उदय होते हुए बाल सूर्य को देखा । ८. फिर मैंने दो कलशो को देखा । वह दोनों सोने के बने हुए थे । ६. इसके पश्चात् मैंने जल के भीतर दो मछलियों को देखा । वह दोनों सरोवर के जल में बड़े आनन्द से क्रीड़ा कर रही थी । १०. फिर मैंने एक सुन्दर सरोवर को देखा, जिसमें उत्तम सुगंधि वाले कमल फूल रहे थे । ११. इसके पश्चात् मैंने उत्तम समुद्र देखा । समुद्र में ज्वार-भाटा आ रहा था, जो उसके किनारे को झकझोरे डालता था । १२. फिर मैंने एक सुन्दर सिंहासन देखा । उसमें स्थान-स्थान पर जड़ी हुई मणियां अत्यन्त शोभा उत्पन्न कर रही थीं । १३. सिंहासन के बाद मैंने देवताओं के विमानों को आकाश में आते हुए देखा । विमानों में लगे हुए अनेक प्रकार के रत्न अपनी प्रभा से दिशाओं को प्रकाशित कर रहे थे । १४. फिर मैंने धरणेन्द्र के रथ को देखा, जिसके पहिये पृथ्वी को खोदे देते थे । १५. इसके बाद मैंने रत्नों के एक ढेर को देखा, जिसकी ज्योति दशों दिशाओं को प्रकाशित कर रही थी । १६. इसके पश्चात् मैंने ऐसी अग्नि-शिखा को देखा, जिसमें धुआं नहीं था । इन सोलह स्वप्नों के पश्चात् मैंने एक हाथी को अपने मुख में प्रवेश करते देखा । अब आप कृपा कर मुझे इन स्वप्नों का फल बतलावें ।

राजा सिद्धार्थ—रानी ! तुम्हारे स्वप्न बहुत अच्छे हैं । तुम ध्यान देकर सुनो । मैं तुम्हारे एक-एक स्वप्न का फल कहता हूं । समस्त स्वप्नों का फल यह है कि तेरे गर्भ से एक अलौकिक बालक का जन्म होगा । प्रथम स्वप्न हाथी का फल यह है कि तेरा पुत्र धर्मचक्र का प्रवर्तन करने वाला होगा । बैल धर्म का चिन्ह है । इसका फल यह है कि तुझे धर्म से सुख की प्राप्ति होगी और वैसा ही तेरा पुत्र भी होगा । सिंह का अर्थ यह है कि तेरा पुत्र अत्यन्त बलशाली होगा और वह अपने तपश्चरण से अपने सभी जन्मों के कर्मफल को नष्ट कर देगा । स्नान करती हुई लक्ष्मी का फल यह है कि तेरे पुत्र को देवता लोग सुमेरु पर्वत पर क्षीर सागर के जल से स्नान करावेंगे । सुगंधित पुष्पों की माला का फल यह है कि तेरे पुत्र का शरीर अत्यन्त सुगंधित होगा । सोलह कलाओं को प्रकाशित करने वाले पूर्ण चन्द्रमा का फल यह है कि तेरा पुत्र अपनी वाणी से धर्म का विस्तार करेगा । सूर्य का फल यह है कि तेरा पुत्र अज्ञान रूपी महान्

तम का नष्ट करन वाला होगा। दो कलश तेरे पुत्र के ज्ञान तथा ध्यान को प्रकट करते हैं। दो मछलियों का फल यह है कि तेरे पुत्र को सभी सुख प्राप्त होंगे। कमलसहित सरोवर का अर्थ यह है कि तेरे पुत्र का शरीर सभी उत्तम लक्षणों सहित सुन्दर होगा। समुद्र का फल यह है कि तेरे पुत्र को समुद्र के समान ज्ञान अथवा केवल ज्ञान प्राप्त होगा। सिंहासन का फल यह है कि तेरे पुत्र का पूजन तीनों लोक करेंगे। देवताओं के विमान का फल यह है कि तेरा पुत्र देवलोक को छोड़कर तेरे गर्भ में आवेगा। धरणेन्द्र के रथ का फल यह है कि तेरा पुत्र जन्म से ही ज्ञानी होगा। रत्नों की राशि देखने का फल यह होगा कि तेरा पुत्र सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र रूप रत्नत्रय का धारक होगा। अग्नि-शिखा देखने का फल यह है कि तेरा पुत्र सभी कर्मों को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करेगा। तेरे मुख मे जो गज ने प्रवेश किया है उसका फल यह है कि चौबीसवें तीर्थङ्कर ने तेरे गर्भ में प्रवेश किया है।

"तब तो महाराज मेरे स्वप्न वास्तव में बहुत अच्छे हैं।"

रानी यह कहकर अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने कमरे में चली आई।

अब उसका गर्भ प्रतिदिन बढ़ने लगा। रानी को यह देखकर अत्यन्त आश्चर्य होता था कि गर्भ के कारण उसको वमन आदि कोई भी उपद्रव कष्ट नहीं देते थे। रानी के दस मास देखते-देखते ही व्यतीत हो गए। अन्त में उसने चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन एक अत्यन्त सुन्दर बालक को जन्म दिया। राजा सिद्धार्थ ने पुत्र के जन्म का उत्सव अत्यन्त समारोह से मनाया और याचकों को खूब दान दिया। दसवें दिन बच्चे का नाम वर्द्धमान रखा गया। पांच वर्ष की आयु में उनको पढ़ने बिठला दिया गया। अब वह लड़कों के साथ खेलने जाने लगे।

वर्द्धमान बचपन से ही बड़े बलवान् थे। जब उनकी आयु आठ वर्ष की हुई तो एक बार वह लड़कों के साथ खेल रहे थे कि एक हाथी पागल होकर अपनी सांकल तुड़ा कर भाग निकला। अचानक वह उधर ही आ गया, जहां वर्द्धमान अन्य लड़कों के संग खेल रहे थे। हाथी को देखकर अन्य बालक तो भाग गए, किन्तु वर्द्धमान न भाग सके। हाथी ने उनको पकड़ने के लिये उनके ऊपर सूंड

चलाई, किन्तु वर्द्धमान बड़ी कुशलता से उसकी सूंड के ऊपर से चढ़कर उसके मस्तक पर पहुंच गए। वहां जाकर उन्होंने उसके मस्तक पर इतने घूंसे मारे कि हाथी का मद उतर गया और वह पूर्णतया उनके वश में हो गया। इस घटना से नगर में बड़ा भारी आश्चर्य प्रकट किया गया और तब से सब लोग इन्हें महावीर कहने लगे। एक बार यह बालकों के साथ वृक्ष पर खेल रहे थे कि एक महाकाय सर्प ने वृक्ष की खोखल में से निकल कर वृक्ष को घेर लिया। लड़के वृक्ष के ऊपर से भय के मारे गिरने लगे, किन्तु यह उस सर्प के सिर पर पैर रख कर उतर आए।

क्रमशः वह सभी विद्याओं को पढ़कर भारी विद्वान् बन गए।

अब कुण्डपुर में घर-घर बधाइयां गाई जा रही हैं। प्रत्येक व्यक्ति के मन में भारी उत्साह है। राजा सिद्धार्थ तथा महारानी त्रिशला देवी के तो पूछने ही क्या। उनको तो अब तीनों लोक की सम्पदा प्राप्त होने जैसा आनन्द आ रहा है। उनके पुत्र वर्द्धमान महावीर आज तीस वर्ष की आयु को पार करके इकतीसवें वर्ष में प्रवेश कर रहे हैं और इसीलिये उनको गृहस्थ के बंधन में बांधने की तैयारी की जा रही है। उनके विवाह की तैयारी का उत्साह सारे नगर में था।

किन्तु एक ओर जहां प्रसन्नता के बाजे बज रहे थे, वहां दूसरी ओर भगवान् महावीर स्वामी के मन पर भारी बोझ सा बढ़ता जाता था। उनको ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो उनको कोई बलात् पर्वत के ऊपर घसीट कर इसीलिये ले जा रहा हो कि उन्हें वहां ले जाकर वहां से नीचे धक्का दे दिया जावे। वह अपने अध्ययन-कक्ष में जाकर इस प्रकार विचार करने लगे।

"समझ में नहीं आता यह तमाशा क्यों किया जा रहा है ! मेरे जीवन का लक्ष्य तो गृहस्थ-सुखों का भोग करना नहीं है। मैं पिताजी तथा माताजी दोनों को पर्याप्त संकेत कर चुका हूं कि मैंने जन्म भर ब्रह्मचारी रहना है, किन्तु यह लोग मुझ से बिना पूछे ही विवाह की तैयारी कर रहे हैं। क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता ? यदि मुंह खोल कर कहता हूं तो सब कोई यही कहेंगे कि लड़का निर्लज्ज है और यदि नहीं कहता हूं तो अनन्त संसार-सागर में गिरना पड़ेगा।

यह भी हो सकता है कि मैं इनके कहने से विवाह कर लूं और फिर भी ब्रह्मचारी बना रहूं। किन्तु ऐसा करने से किसी दूसरे की कन्या के ऊपर अत्याचार होगा। अस्तु, अब लज्जा त्यागे बिना काम न चलेगा। अच्छा, चल कर कहता हूं।"

मन ही मन यह सोचकर कुमार महावीर बाहिर वहां आये, जहाँ राजा सिद्धार्थ बड़े उत्साह से उनके लग्न की तैयारी करवा रहे थे। उन्होंने आकर उनसे कहा—

"पिता जी ! मुझे आप से कुछ निवेदन करना है।"

"कहो बेटा ! क्या बात है ?"

"पिता जी ! मैं कई दिन से संकोच में पड़ा था कि आप से निवेदन करूं या न करूं। किन्तु जब मैंने देखा कि अब आप से कहे बिना काम न चलेगा तो मुझे अपना मुख खोलना ही पड़ा, क्योंकि लज्जा वहीं तक करनी चाहिये जहाँ तक आत्मा का सर्वनाश न हो।"

वर्धमान कुमार के गूढ़ वचन सुनकर राजा सिद्धार्थ का माथा ठनक गया, किन्तु उन्होंने थोड़ा संयत होकर कहा—

"तुम तो पहेली बुझा रहे हो कुमार ! खुल कर कहो बात क्या है ?"

"आप खुल कर कहने की अनुमति देते है, यह जान कर मुझे प्रसन्नता हुई। बात यह है कि मेरे जीवन का लक्ष्य त्याग है, भोग नहीं; आत्मकल्याण है, आत्मविनाश नहीं; साधु जीवन है, विवाह बंधन नहीं। फिर मुझे इस प्रकार विवाह-बंधन में बांधने का यह आडम्बर क्यों रचा जा रहा है ?"

कुमार जब यह वचन राजा सिद्धार्थ से कह रहे थे तो वहां महारानी त्रिशला देवी भी आ गई थीं। उन्होंने जो कुमार के यह शब्द सुने तो एकदम घबरा गईं। वास्तव में कुमार के इन शब्दो ने रंग में भंग कर दिया। तब राजा सिद्धार्थ बोले—

"बेटा ! यदि कोई किसी मकान की छत पर चढ़ना चाहता है तो उसे एक-एक सीढ़ी करके ही छत पर चढ़ना होगा। वह कूदकर छत पर नहीं जा सकता। यदि तुमको मुनिपद ग्रहण करना है तो तुमको त्याग की क्रमिक सीढ़ी

पर होकर ही जाना होगा। अभी तुम विवाह कर लो। जब तुम्हारे एक सन्तान हो जावेगी तो हम तुम्हारे संयम-मार्ग में विघ्न न डालेंगे।"

"नहीं पिता जी! प्रत्येक व्यक्ति के लिए सीढ़ियां एक सी नहीं होतीं। बौना आदमी एक-एक सीढ़ी करके भी छत पर नहीं चढ़ सकता। किन्तु अधिक लम्बा आदमी दो-दो, तीन-तीन सीढ़ियों को एक साथ लांघ कर ऊपर जा सकता है। मुझ को विवाह न करके दीक्षा लेनी है। मुझे अनुमति दीजिये कि मैं घर छोड़कर बन को जाऊं।"

कुमार के इन शब्दों ने सबके ऊपर वज्रपात का काम किया। उनको दिखलाई दे गया कि कुमार अब घर में न रह सकेंगे। महारानी त्रिशला देवी का तो एकदम गला भर आया। वह रुआंसी होकर कुमार से बोली—

"बेटा! क्या मैंने तुझे इसी दिन के लिए पाला था कि तू हम लोगों को वृद्धावस्था में दगा देकर चला जाये। जब तेरे सुख देखने तथा सुख दिखाने के दिन आए तो तू वन को जाने की बात कर रहा है।"

"माता! तुम आज कैसी भोली बातें कर रही हो। तुम तो जानती हो कि यह संसार केवल दुःखरूप है। इसमें सुख कहीं भी नहीं है। जो कुछ थोड़ा बहुत भ्रम के कारण सुख दिखलाई देता है, वह सुख नहीं वरन् वास्तव में दुःख ही है। वह सुख शहद में लपेटी हुई तलवार की धार के समान है। उसको चाटते ही जीभ शतखण्ड होकर गिर जावेगी। माता! तुम मेरी जीवनदायिनी हो। तुमने मुझे यह जीवन दिया है तो मुझे अन्धकार से प्रकाश में भी आने दो। यह मोह तो संसार में गिराने वाला है। मैं स्वार्थी नहीं हूं। मैं आत्म-कल्याण करके संसार का कल्याण करना चाहता हूं। मुझे वन को अभी जाना आवश्यक है।"

यह कहकर उन्होंने अपने सभी वस्त्र उतार कर दान करने आरम्भ किय। अब माता-पिता को विश्वास हो गया कि हाथी के बाहिर निकले हुए दांतों को जबर्दस्ती भीतर को नहीं किया जा सकता। भगवान् के दृढ़ वैराग्य के सामने उनको पराजय स्वीकार करनी पड़ी और उनको भगवान् को दीक्षा लेने की अनुमति देनी पड़ी। अब कुमार ने अपनी सभी वस्तुओं को दान करके अपने

सभी वस्त्र उतार कर दिगम्बर वेष धारण किया। वह पूर्णतया नग्न होकर कुण्डलपुर के बाहिर निकल कर नात्तखंड अथवा ज्ञातृखंड नामक वन में पहुंच कर एक शिला पर अशोक वृक्ष के नीचे बैठ गये। उन्होंने मार्गशीर्ष शुक्ला दशमी को मुनिपद धारण किया।

अब भगवान् महावीर कठोर तपश्चरण करते हुए घूमने लगे। वह भूख, प्यास आदि को सहन कर लम्बे-लम्बे उपवास किया करते थे। यद्यपि वह अपनी मुनि अवस्था में अनेक स्थानों में भ्रमण किया करते थे, किंतु वह किसी को उपदेश नहीं देते थे। वर्षा काल में वह किसी एक नगर के पास चार मास के लिये ठहर जाते थे, किन्तु वर्ष के शेष आठ मास भर वह तप करते हुए भ्रमण ही करते रहते थे। वह अपने आगे की चार हाथ भूमि को देख कर सावधानी से चलते थे कि कहीं कोई जीव उनके पैर से दब न जावे। वह अनेक लम्बे-लम्बे उपवास किया करते थे। कई बार तो उन्होंने कई-कई मास के लम्बे उपवास किये। जब उनको भोजन करना होता था तो वह नगर में जाकर चुपचाप भ्रमण कर आते थे। वह किसी से मांगते नहीं थे। यदि कोई उनसे कहता था कि "महाराज पधारिये। आहार पानी शुद्ध है" और वह उसके आचार-व्यवहार को अपने अनुकूल देखते थे तो उसके यहां जाकर खड़े हो जाते थे, अन्यथा आगे बढ़ जाते थे। वह किसी के यहां बैठकर भोजन नहीं करते थे और न किसी पात्र में ही भोजन करते थे। जब गृहस्थ उनको आहार दान देने के लिये खाद्य वस्तुएं लाता था तो वह खड़े-खड़े ही अपने दोनों हाथों की अंजलि आगे कर देते थे। गृहस्थ ग्रास बना-बना कर उनके हाथ में दे देता था और वह उसको खाते जाते थे। भोजन के बीच में प्यास लगने पर भी वह पानी नहीं मांगते थे। गृहस्थ स्वयं ही खिलाते-खिलाते बीच-बीच में थोड़ा पानी भी उनकी अंजलि में डाल देते थे और वह उसको पी लेते थे। किसी से न मांगते हुए भी कभी-कभी वह अपने मनमें बड़े-बड़े विचित्र नियम करके अभिग्रह करते थे कि आज मुझे भिक्षा में अमुक वस्तु मिलेगी तो लूंगा, अन्यथा न लूंगा। गृहस्थ बेचारों को क्या पता कि उन्होंने आज क्या अभिग्रह किया है। प्रायः उनका अभिग्रह पूरा नहीं होता था

और उनको कई-कई दिन तक नगर से वापिस लौट कर निराहार रहना पड़ता था।

भगवान् महावीर स्वामी ने इस प्रकार का कठिन तपश्चरण बारह वर्ष तक किया। इस बीच में उन्होंने अनेक स्थानों पर भ्रमण किया तथा अनेक स्थानों में चातुर्मास्य किया। उनके बारह चातुर्मास्यों में से आठ वैशाली में हुए थे।

भगवान् जब किसी मार्ग पर चल पड़ते थे तो वह प्राण पर संकट जान कर भी उस मार्ग से कभी नहीं लौटते थे। एक बार वह एक स्थान को जाने लगे तो लोगों ने उनको उस मार्ग पर जाने से यह कहकर रोका—

"भगवन्! इस मार्ग से न जावें, उधर एक भयंकर विष वाला सर्प मार्ग में बैठा रहता है और उधर से जाने वाले किसी भी प्राणी को काटे बिना नहीं छोड़ता। हमने उसका नाम चण्डकौशिक रखा हुआ है।"

किन्तु भगवान् को तो शरीर का मोह नहीं था। वह उसी मार्ग पर बढ़ते चले गए। अंत में वह उस स्थान पर पहुँच गए, जहाँ मार्ग में चण्डकौशिक सर्प बैठा हुआ था। भगवान् ने सर्प तथा सर्प ने भगवान् को देखा। सर्प ने भगवान् को देखते ही उन पर आक्रमण किया और उनको काट खाया। किन्तु भगवान् उसके काटने पर भी निश्चल खड़े रहे। सर्प आशा कर रहा था कि मेरे काटने पर सभी प्राणियों के समान यह भी मर जावेंगे, किन्तु नमक न खाने वाले पर सर्प का विष असर नहीं करता। यद्यपि भगवान् को अपने आहार में थोड़ा बहुत नमक अवश्य मिलता था, किन्तु वह इतना कम होता था कि सर्प विष को रोकने के लिये पर्याप्त था। यदि भगवान् बारह वर्ष तक बिल्कुल नमक न खाते तो उनके शरीर में इतना विष उत्पन्न हो जाता कि उनको काटने से सर्प ही मर जाता। भगवान् के शरीर पर सर्प के विष का प्रभाव लेशमात्र भी न पड़ा। भगवान् के इस चमत्कार को देखकर सर्प को बड़ा आश्चर्य हुआ। वास्तव में वह सर्प एक शापग्रस्त जीव था। भगवान् के स्पर्श से उसका घमंड ही चूर नहीं हुआ, वरन् उसको अपने पिछले जन्मों का भी स्मरण हो आया; अब उसको इस बात का बड़ा खेद हुआ कि उसने इतने

प्राणियों की हत्या क्यों की। चण्डकौशिक कहां तो अपने फण को चौड़ा किये भगवान् के सामने खडा था, कहां वह उनके चरणों में पड़कर उनको चाटने लगा। जिन लोगों ने भगवान् को उस मार्ग से जाने को मना किया था वह उनका अनुसरण करते हुए बहुत दूर रहते हुए पीछे-पीछे चले आ रहे थे। उन्होंने जो चण्डकौशिक को भगवान् के चरण चाटते तथा भगवान् को उसके सिर पर हाथ रखते हुए देखा तो उन्हें बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। अन्त में भगवान् महावीर उस सर्प को हिंसा न करने का उपदेश देकर आगे चले गए और लोगों ने उस वन में बेखटके आना जाना आरम्भ कर दिया।

एक बार भगवान् परिभ्रमण करते हुए अवन्ती देश की राजधानी उज्जयिनी पहुँचे। वह वहां की अतिमुक्तक नामक श्मशान भूमि में रात्रि के समय प्रतिमायोग धारण करके खड़े हुए थे कि भव नामक एक रुद्र पुरुष ने उनको बड़ा भारी कष्ट दिया। किन्तु भगवान् अपने ध्यान से न डिगे और समस्त कष्ट को सहन करते हुए उसी प्रकार ध्यान में लगे रहे। भगवान् के इस प्रकार अविचल ध्यान को देखकर उस अत्याचारी का हृदय बदल गया और उसको अपने किये पर घोर पश्चात्ताप हुआ। अन्त में वह भगवान् को 'नमस्कार' करके वहां से चला गया।

उज्जयिनी से भगवान् वत्स देश की राजधानी कौशाम्बी गये। यहां उन दिनों वही राजा शतानीक राज्य करता था, जिसके साथ भगवान् की मौसी मृगावती का विवाह हुआ था। उन्होंने भगवान् का सम्मान करना चाहा, किन्तु भगवान् ने उन दिनों पूर्णतया मौनव्रत लिया हुआ था। अतः राजा शतानीक तथा रानी मृगावती को उनकी कोई भी सेवा करने का अवसर न मिला। इन दिनों भगवान् ने एक कठिन अभिग्रह धारण किया हुआ था, जिससे यद्यपि वह नगर में आहार के लिये दैनिक जाते थे, किन्तु अभिग्रह पूरा न होने के कारण सदा ही खाली वापिस आते थे। इन दिनों कौशाम्बी में चम्पा को जीत कर अंग देश को अपने राज्य में सम्मिलित करने का विशेष उत्सव मनाया जा रहा था।

३२

महासती चन्दनबाला

"प्रभो ! मुझे अपने कौन-से पाप का दण्ड मिल रहा है ? आप जानते हैं कि मैंने अपने इस चौदह वर्ष के जीवन में कभी किसी का जी तक भी नहीं दुखाया। फिर मुझको किस पाप के कारण इस प्रकार भूखी-प्यासी जेल वास के दारुण दुःख इस भौंरे में भोगने पड़ रहे हैं ? कहां तो मैं चम्पा के महाराज दधिवाहन की प्राणप्यारी पुत्री और कहां यह जेल जीवन ! कहां मैं वैशाली के नौ लिच्छवि तथा नौ मल्ल राजाओं के अधीश्वर राजा चेटक की प्राणों से भी प्यारी धेवती तथा महारानी धारिणी देवी के गर्भ से उत्पन्न हुई पुत्री और कहां यह दासीपना ? विधि की कैसी विडम्बना है ? विधाता से मेरा लेशमात्र भी सुख नहीं देखा गया। मेरे बाल्यावस्था के दिन अच्छी तरह बीतने भी न पाए थे कि उस कौशाम्बी के राजा शतानीक ने अपने साढूपने के सम्बन्ध का लेशमात्र भी ध्यान न कर मेरे पिता पर चढ़ाई करके चम्पा के सारे राज्य को नष्ट कर दिया। ओह ! उस समय की निर्मम हत्याओं और नगर की लूट को स्मरण करके अब भी मेरे हृदय में असीम वेदना उत्पन्न होती है। उस समय यद्यपि मेरी माता धारिणी देवी मुझे लेकर भौंरे में छिप गई थी, किन्तु राजा शतानीक के रथवान ने हम दोनों को वहां से भी ढूंढ निकाला। वह हम दोनों को रथ म बिठा कर कौशाम्बी अपने घर ले आया। हाय ! आज मुझे अपनी उस माता की याद बहुत सता रही है, जिसने उस रथवान से अपने शील की रक्षा करने के लिए मार्ग में ही अपने दांतों से अपनी जीभ काट कर अपने प्राण दे दिये थे। मेरी माता ने अपने बलिदान से उस समय यह सिद्ध कर दिया था कि आत्म-बलिदान कैसे भी दुष्ट व्यक्ति के स्वभाव को बदल सकता है। इसलिए उस दुष्ट रथवान ने माता के लिए रोती-कलपती देख कर मुझको पुत्री के

समान सांत्वना दी थी। इतना ही नहीं, उसने मुझे घर लाकर अपनी पत्नी को भी मुझे पुत्री के समान ही रखने का आदेश दिया। किन्तु मेरे दुर्भाग्य का तो अभी आरंभ था। अभी तो मुझे न जाने क्या-क्या दुःख देखने बदे थे ? रथवान की स्त्री शीघ्र ही मुझ से ईर्ष्या करने लगी। उसने अपने पति को आज्ञा दी कि वह मुझ को बाजार में दासी के समान बेच कर मेरे मूल्य स्वरूप बीस लाख स्वर्ण मुद्रा उसको लाकर दे। यद्यपि रथवान ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया, किन्तु मुझ से उसका यह कष्ट नहीं देखा गया। मैंने उससे यह अनुरोध किया कि वह मेरी उस नई माता की आज्ञा का पालन करें। अन्त में हम दोनों बाजार में आए। मैंने अपने को बेचने के लिए स्वयं ही आवाज़ लगानी आरम्भ की। मुझे उस समय अतिशय वेदना हुई, जब एक वेश्या मुझको मोल लेने के लिए आग्रह करने लगी, किन्तु मैंने उसके साथ जाने से साफ इन्कार कर दिया। अन्त में एक धनावा नामक धार्मिक सेठ ने मेरे मूल्य स्वरूप बीस लाख स्वर्ण मुद्रा उस रथवान को देकर मुझे प्राप्त किया। उसने जिस समय मुझे बेटी कह कर सम्बोधित किया तो मुझे अपने पिता राजा दधिवाहन की याद हो आई। यद्यपि मुझको उस समय तो बहुत बुरा लगा, किन्तु जब मैंने अपने नवीन पिता के निश्चल नेत्रों में अहिंसा, दया, संयम तथा सन्तोष की समुज्ज्वल भावना को पाया तो मैंने अपने जीवन को एक बार फिर धन्य माना। मैं सोचने लगी कि संभवतः इसी प्रकार धर्म-ध्यान करते-करते अब मेरा जीवन व्यतीत हो जावेगा। किन्तु मुझे पता नहीं था कि दुर्भाग्य अभी तक मुझको देखकर खिलखिला कर हँस रहा है। कहा जाता है कि अनुपम स्वर्गीय सौन्दर्य किसी बड़े पुण्य से मिलता है, किन्तु मुझ को तो वह सौन्दर्य सम्भवतः कोई बड़ा भारी पाप करने के कारण उस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए दिया गया था। एक दिन सेठ धनावा प्यार से मेरे सुन्दर बालों पर हाथ फेरने लगे। बस यहीं से सेठानी मूलादेवी मेरी भयंकर विरोधिनी बन गई। अतएव वह मुझ पर द्वेष-भाव रख कर मुझ से मन ही मन जलने लगी। अब वह प्रतिक्षण यही सोचती रहती थीं कि मैं किस प्रकार चन्दनबाला को दुःखी करूँ। सेठ मुझ से प्रायः पूछ लिया करते थे कि मुझे उस घर में कोई कष्ट तो नहीं है, किन्तु मैं सदा यही

उत्तर देती कि मुझे जो कुछ मिलता है उसमें सन्तोष है। सेठ जी के इस व्यवहार से सेठानी को और भी अधिक ईर्ष्या होती थी, किन्तु वह उनकी जानकारी में मुझे ऐसा दुःख देने का साहस नहीं करती थी कि जिसका सेठ जी को पता हो जावे। वैसे बात-बात में झिड़कना, खराब भोजन देना आदि तो उसका नित्य का काम था। अन्त में एक दिन उसको अवसर मिल ही गया। सेठ जी तीन-चार दिन के लिए बाहर गए। उसने सेठ जी के पीठ फेरते ही प्रथम तो मेरे सिर के बाल कटवाए, फिर मुझे वस्त्र के नाम पर यह अकेला कच्छा पहिना कर उसने मुझ भौंरे जैसी इस ऐसी अंधेरी कोठरी मे हाथ पैरों में जंजीर डाल कर कैद कर दिया कि मेरे कितना ही रोने-पीटने पर भी किसी को मेरी आवाज़ सुनाई न दे। साथ ही उसने घर की सब दासियों को कठोरता से आज्ञा दे दी कि मेरा भेद सेठ जी को न मिलने पावे। वह घर का ताला बन्द करके अपने पीहर चली गई। आज मुझको उस दशा में तीसरा दिन है। भूख और प्यास के मारे मेरी आँखों के आगे अंधेरा छा रहा है। लोहे की जंजीर मेरी कोमल कलाइयों को ऐसी बुरी तरह चाट गई है कि हाथ हिलाए से भी नहीं हिलते। हा, भगवन्! इस प्रकार कब तक दुःख मिलता रहेगा! इस दुःख से तो मेरे प्राण ही निकल जाते तो अच्छा था! यहाँ तो रो-रो कर गला फाड़ूँगी तो भी किसी को पता नही चलने का। प्रभो! दया करो! मेरे कष्टों को दूर कर मुझे इतनी स्वतन्त्रता दे दो कि मैं इस मायामय संसार के ममत्व का त्याग कर भगवान् महावीर स्वामी के चरणों का सेवन करती हुई अपने परलोक को बना सकूँ।"

यह कहकर चन्दनबाला फूट-फूट कर रोने लगी।

× × ×

इस समय भगवान् महावीर स्वामी को तप करते हुए ग्यारह वर्ष व्यतीत हो चुके थे। भगवान् का कौशाम्बी में पधारने का समाचार सुनकर जनता बड़े उत्साह से उनके दर्शन करने पहुँची। वह आशा करती थी कि भगवान् से कुछ उपदेश सुनने को मिलेगा, किन्तु भगवान् तो मौन थे। उन्होंने किसी को

भी कुछ उपदेश नहीं दिया। जनता उनका उपदेश न पाकर उनके दर्शन से ही अपने को कृतकृत्य मानने लगी। यद्यपि अब जनता के मन में भगवान् का उपदेश श्रवण करने की आशा लेशमात्र भी बाकी नहीं थी, किन्तु उनको आहार देने की आशा अवश्य थी।

कुछ समय के पश्चात् भगवान् चार हाथ पृथ्वी को आगे देखते हुए आहार के लिए नगर की ओर इस प्रकार यत्नपूर्वक चले कि उनके पैरों से कोई जीव जन्तु न मर जावे। नगर-निवासी राजा और रंक, धनी और निर्धन सभी उनसे विनयपूर्वक कहते—

"भगवन्! पधारिये-पधारिये! आहार पानी शुद्ध है"

किन्तु वह किसी की ओर दृष्टि न कर नगर में वैसे ही घूम कर वापिस चले गए। भगवान् को आहार के लिए नगर में इस प्रकार आते तथा वापिस जाते तीन दिन हो गए, किन्तु उन्होंने किसी के यहाँ आहार ग्रहण न किया। जनता समझ गई कि भगवान् ने अपने मन में कोई कठिन अभिग्रह किया हुआ है कि उक्त अवस्था वाला प्राणी हम को अमुक प्रकार का आहार देगा तो लेंगे अन्यथा न लेंगे। जनता भगवान् का अभिग्रह जानने के लिए अत्यन्त चिन्तित थी, किन्तु इस गुत्थी को खोलने का कोई उपाय न था। इस प्रकार भगवान् को बिना आहार के विहार करते हुए लगभग पाँच मास बीत गए।

सेठ धनावा जो तीन दिन बाद घर वापिस आए तो चन्दनबाला को घर में न पाकर उनको बड़ी चिन्ता हुई। वह अपनी पत्नी के स्वभाव को जानते थे, अतएव किसी अनिष्ट की आशंका से उनका मन अन्दर ही अन्दर शंका-शील हो उठा। उन्होंने घर में सब दास-दासियों से पूछा, किंतु सेठानी के भय के कारण किसी ने भी उनको असली बात न बतलाई। अन्त में एक वृद्धा दासी ने डरते-डरते सेठ को वास्तविक बात बतला ही दी।

सेठजी ने जो सुना तो वह घबराए हुए उस कोठरी में गए। चन्दनबाला को उस दशा में देखकर उनको बड़ा दुःख हुआ। वह उसको भूखी-प्यासी



चन्दन बाला भौरें द्वार पर हाथ पैरों में जंजीरें बंधी हुई कच्छा पहने सिर मुंडे हुये भगवान महावीर स्वामी को सूप में रक्खे हुए कुलकी के दाँनों का अहार दे रही है ।

तथा जंजीरों से बँधी देखकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए कि पहले क्या करें। पहिले उनको उसके भोजन की चिंता हुई। वह घर में दौड़े गए, किंतु घर में उस समय भोजन कुछ भी तैयार नहीं था। केवल थोड़ी-सी कुलथी उबली हुई एक सूप में रखी थी। सेठ उस सूप को ही लेकर चन्दनबाला के पास रख आए और हथकड़ियों और बेड़ियों को काटने का उपाय करने फिर चले गए।

चन्दनबाला अपने भौंरे के सम्मुख हाथ-पैर बँधी हुई रो रही थी। यद्यपि उसके मुख से कौमार्य्य दमक रहा था, किन्तु रोते-रोते उसके नेत्र सूज गए थे। उसका सिर मुंडा हुआ था। वस्त्र के नाम पर वह केवल एक कच्छा ही पहिने हुई थी। इस समय दोपहर ढल रहा था और उसे निराहार रहते तीन दिन बीत गए थे, फिर भी वह उन उबले हुए कुलथी के दानों को किसी सत्पात्र को आहार-दान दिये बिना खाना न चाहती थी। वह एक पैर कमरे के अन्दर तथा दूसरा पैर बाहर रखे किसी अतिथि के आने की प्रतीक्षा कर रही थी कि भगवान् महावीर उधर से पधारे। वह उनको देखकर प्रसन्न हो गई। उसने उनसे कहा—

"भगवन्! आहार पानी शुद्ध है। पधारिये, पधारिये।"

जैसा कि पीछे पता लगा, भगवान् का अभिग्रह यह था कि किसी ऐसी कुमारी राजकन्या के हाथ से सूप में रखी उबली हुई कुलथी का आहार ही लेंगे, जिसके हाथ-पैर जंजीर से बँधे हुए हों, जिसका सिर मुंडा हुआ हो, वस्त्र के नाम पर जो केवल एक कच्छा ही पहिने हुए हो, उस समय दोपहर ढल चुके और उसे निराहार रहते तीन दिन बीत गए हों। उसका एक पैर कमरे के अन्दर तथा दूसरा पैर कमरे के बाहिर हो। वह पहले हँसे ओर पीछे रो पड़े।

भगवान् महावीर स्वामी अपने अभिग्रह की लगभग सभी बातें वहाँ मिलती देख कर रुके, किन्तु उनको वहां फिर भी एक बात की त्रुटि दिखलाई पड़ी। भगवान् चाहते थे कि आहार देने वाली राजकन्या पहले प्रसन्नवदन हो, किन्तु बाद में रो पड़े। वह चन्दनबाला का प्रसन्न देखकर आगे को बढ़ गए। किन्तु चन्दनबाला अपनी आशा पूरी न होती देखकर फूट-फूट कर रोने लगी। उसको रोती देखकर भगवान् ने वापिस आकर अपने दोनों हाथ उसके

सामने फैला दिये। उसने बड़े प्रेम से एक-एक ग्रास बनाकर उनके हाथों में रखते हुए उनको उस उबली हुई कुलथी का आहार कराया। उस समय आकाश में दुन्दुभि बजने लगी। सब ओर जय-जयकार का शब्द होने लगा और सुमन-वृष्टि होने लगी। इस प्रकार अनेक नगरो में विहार करने के बाद पाँच मास बाद भगवान् महावीर स्वामी ने आहार ग्रहण किया।

चन्दनबाला के हाथ से भगवान् द्वारा आहार लिये जाने का समाचार बात की बात में सारे कौशाम्वी भर में फैल गया। अब तो मूला सेठानी और उस रथवान की पत्नी ने भी आकर उसको सिर झुकाया। समाचार पाकर राजा शतानीक भी अपनी पत्नी महारानी मृगावती सहित उसके दर्शन को आया। महारानी मृगावती भी वैशाली के राजा चेटक की ही कन्या थी। चन्दनबाला उसकी भानजी थी। उसने चन्दनबाला को तुरन्त पहचान लिया और बोली—

"अच्छा बेटी! तू इस दशा में और सेठ धनावा के घर?"

"हाँ मौसी! मुझे मेरा भाग्य यहीं घसीट लाया।"

"मुझे बेटी! चम्पापुर पर तेरे मौसा के चढाई करने का बड़ा दुःख है। मैंने उस युद्ध को रोकने का बहुत यत्न किया, किन्तु तेरे पिता तथा मौसा के विशेष मनोमालिन्य के कारण युद्ध अनिवार्य हो ही गया। फिर भी मैंने अपने बटे उदयन से यह वचन ले लिया है कि वह गद्दी पर बैठते ही तेरे भाई दृढवर्मा को फिर अंगराज बना कर चम्पापुरी के राजसिंहासन पर बिठलावेगा। किंतु बेटी, तू यहाँ किस प्रकार आ पहुँची और तूने यहाँ आकर मुझे अपने आने का समाचार क्यों नहीं भिजवाया?"

इस पर चन्दनबाला ने चम्पापुर से अब तक की सारी घटना सुनाकर उससे कहा—

"मौसी, में दासी हूँ। दासी को भला स्वतन्त्रतापूर्वक समाचार भेजने की सुविधा कहाँ होती है!"

"नही बेटी! अब तुम दासी नहीं, अब तो तुम मेरी भानजी हो। तुमको मेरे साथ ही रहना होगा।"

यह कहकर रानी मृगावती चन्दनबाला को अपने साथ अपने राजमहल ले आई।

जैसा कि आगे लिखा जावेगा इस घटना के कुछ ही मास बाद भगवान् महावीर स्वामी को केवल ज्ञान हो गया। चन्दनबाला यह समाचार सुनते ही उनके समीप पहुँची। उसने जाते ही उनसे दीक्षा ले ली। भगवान् महावीर स्वामी की स्त्री-शिष्याओं में सबसे प्रथम उसने ही दीक्षा ली थी। अतएव बाद में उनके आर्यासंघ की प्रधान आचार्या महासती चन्दनबाला ही हुईं। उनके शासन में ३६००० जैन-साध्वियां थीं, जिनको 'आर्यिकाएं' कहा जाता था। अन्त में महासती चन्दनबाला ने वह परम उत्तम पद प्राप्त किया, जहां जाना सभी योगी और मुनि अपना अहोभाग्य मानते हैं।

३३

वैशाली में साम्राज्यविरोधी भावना

मगध की गद्दी पर बिम्बसार के बैठने तथा मगध द्वारा वैशाली गणतंत्र के गणपति की पुत्री से विवाह की इच्छा प्रदर्शित करने का लिच्छवियों के मन पर अत्यन्त विपरीत प्रभाव पड़ा। वह बिम्बसार को साम्राज्याकांक्षी तथा गणतन्त्र का शत्रु मानने लगे। राजा शतानीक द्वारा अंग के राजा दधिवाहन के राज्य के नाश का भी वह बिम्बसार को ही प्रधान कारण समझते थे। उनका कहना था कि बिना बिम्बसार के उकसाए शतानीक स्वयं जैनी होते हुए अपने सगे साढ़ू के राज्य पर कभी आक्रमण न करता। वैशाली का गणतंत्र पहिले शतानीक तथा दधिवाहन दोनों से समान प्रेम मानता था, क्योंकि वह दोनों ही गणपति राजा चेटक के जामाता थे, किन्तु चम्पा के पतन के बाद उसकी सहानुभूति शतानीक की अपेक्षा दधिवाहन के पुत्र दृढ़वर्मा की ओर अधिक हो गई। इसके अतिरिक्त उस आपत्ति के समय दृढ़वर्मा ने चम्पा से भागकर वैशाली ही में अपने नाना के पास शरण भी ली थी। आन्तरिक सम्बन्ध के अतिरिक्त लिच्छवी लोग दृढ़वर्मा को शरणागत मान कर भी उसकी रक्षा करने के लिये दृढ़निश्चय थे। दृढ़वर्मा के सम्बन्ध में प्रायः परामर्श राजा चेटक के राजमहल में ही हुआ करता था, जहां उसका अप्रतिहत प्रवेश था। एक बार राजा चेटक अपने महल में रानी सुभद्रा के पास बैठे हुए कुछ सोच-विचार में लीन थे कि दृढ़वर्मा ने आकर उनसे कहा—

"नाना जी! आपने बहिन चंदनबाला तथा मेरी माता जी के विषय में कुछ सुना?"

"यह तो पता लग गया बेटा! कि वह दोनों युद्ध के समय एक भौंरे में छिप गई थी, जहां से राजा शतानीक का रथवान उनको ढूंढ कर अपने साथ कौशाम्बी ले गया।"

"इससे आगे के समाचार का पता मैंने लगा लिया है नाना जी !"

"वह क्या है बेटा !"

"वह बड़ा करुणाजनक है।"

"क्या उन पर और भी भारी विपत्ति आई ?"

"जी हाँ ! मेरी माता ने अपने शील की रक्षा करते हुए आत्मघात करके प्राण दे दिये।"

इस पर राजा चेटक एकदम चौंक कर बोले—

"हाय ! क्या प्यारी बेटी धारिणी का प्यारा मुख अब मुझे देखने को नहीं मिलेगा ?" और यह कहकर राजा चेटक शोक करने लगे। महारानी सुभद्रा तो इस समाचार को सुनकर फूट-फूट कर रोने लगीं। दृढ़वर्मा भी उस समय अपने आँसू न रोक सका। स्वस्थ होने पर राजा चेटक बोले—

"अच्छा फिर चन्दनबाला का कुछ पता चला ?"

"उसके संबन्ध में मेरे चर अभी-अभी कुछ हर्ष-विषाद मिश्रित संवाद कौशाम्बी से लाये हैं।"

"हर्ष विषाद दोनों से ही मिश्रित ?"

"जी नाना जी ! उस रथवान ने बहिन चन्दनबाला को कौशाम्बी के बाज़ार में धनावा नामक एक धर्मात्मा सेठ के हाथ दासी के समान बेच दिया।"

"हाय ! मेरी प्यारी धेवती दासी के समान बेची गई !"

यह कहकर महारानी सुभद्रा फिर विलाप करने लगीं। राजा चेटक बोले—

"फिर क्या हुआ दृढ़वर्मा ?"

"सेठ धनावा की सेठानी मूलादेवी चन्दनबाला से बहुत द्वेष करती थी। एक दिन सेठ तीन दिन के लिये बाहिर गया तो मूलादेवी ने उसके केश कटवा कर उसके सारे वस्त्र उतार कर उसे केवल एक कच्छा पहिनाया। फिर उसके हाथों में हथकड़ियाँ तथा पैरों में बेड़ियाँ डलवा कर उसे एक ऐसे भौंरे में बन्द कर दिया, जहाँ से कितना ही चिल्लाने पर भी उसकी आवाज़ सुनाई न दे।"

दृढ़वर्मा के यह कहने पर रानी सुभद्रा और भी विलाप करके कहने लगीं—

"हाय मेरी फूल सी बच्ची को ऐसे-ऐसे कष्ट सहने पड़े !"

तब दृढ़वर्मा बोला—

"नानी जी कष्टमिश्रित संवाद समाप्त हुआ अब । आप हर्षजनक समाचार सुनिये ।"

राजा—"अच्छा फिर चन्दनबाला के साथ उस भौंरे में क्या बीती ?"

दृढ़वर्मा—वह तीन दिन तक उस भौंरे में रही । जब तीसरे दिन सेठ धनावा ने आकर उसे ऐसी दशा में देखा तो वह बहुत दुःखी होकर हक्का-बक्का रह गया । सेठानी मूलादेवी चन्दनबाला को भौंरे में बन्द करके अपने पीहर चली गई थी । अतः घर में न तो खाने-पीने का ही कोई सामान था और न हथकड़ी-बेड़ियों की चाबी ही थी । सेठ ने सोचा कि जंजीरें कटवाने से पूर्व इसके भोजन का कुछ प्रबन्ध किया जावे । किन्तु उस समय घर में कुछ कुलथी ही उबली हुई एक सूप में रखी हुई थी । धनावा उस कुलथी को सूप समेत चन्दनबाला के सामने रख कर किसी लुहार को बुलाने गये, जिससे हाथ पैर की जंजीरों को कटवाया जा सके । चन्दनबाला भौंरे के दरवाजे में खड़ी-खड़ी किसी सत्पात्र के आने की प्रतीक्षा करने लगी कि कोई आवे तो उसे दान देकर भोजन करूँ ।"

तब राजा चेटक बोले—

"वाह बेटी चन्दना ! इस भारी आपत्ति के समय तीन दिन भूखी रह कर भी दान दिये विना न खा सकी ?"

दृढ़वर्मा—नाना जी ! चन्दना ने हमारे कुल का उद्धार कर दिया । आप आगे की बात तो सुनिये ।

चेटक—अच्छा ! तो जल्दी कहो बेटा ।

दृढ़वर्मा—उन दिनों भगवान् महावीर स्वामी को किसी अभिग्रह के कारण पाँच मास से आहार नहीं मिला था और वह विना आहार घूमते-घामते उसी दिन कौशाम्बी पहुँचे, जब चन्दनबाला को भौंरे में डाला गया था ।

कौशाम्बी वाले उनको आहार देने को उत्सुक थे, किन्तु उनके अभिग्रह का पता लगने का कोई साधन न था। अतएव वह नगर में प्रतिदिन आते तथा वापिस चले जाते थे। जब चन्दनबाला एक पैर भौंरे के अन्दर तथा एक पैर बाहिर रखे किसी अतिथि के आने की प्रतीक्षा कर रही थी तो भगवान् महावीर स्वामी उधर से आए। चन्दना ने जोर से कहा—"भगवन्! आहार पानी शुद्ध है। पधारिये, पधारिये।" भगवान् इस आवाज को सुनकर पहिले तो उसको देखकर रुके किन्तु बाद में वह कुछ सोचकर फिर आगे बढ़ गए।

राजा चेटक—उनके अभिग्रह का कुछ पता लगा?

दृढ़वर्मा—जी हां! उनका निश्चय था कि वह किसी ऐसी कुमारी राजकन्या के हाथ से ही सूप में रखी उबली हुई कुलथी के दानों का आहार लेंगे, जो तीन दिन से भौंरे में भूखी-प्यासी बन्द हो, जिसके हाथ-पैरों में जंजीर हो, जिसका सिर मुँडा हुआ हो और वस्त्र के नाम पर जिसने केवल एक कच्छा पहिना हुआ हो, जिसका एक पैर भौंरे के अन्दर तथा दूसरा बाहिर हो तथा जो पहिले हँसकर फिर रोने लगे।

रानी सुभद्रा—यह सारी बातें तो मेरी बच्ची की ही थीं। जान पड़ता है मेरे धेवते ने अपनी बहिन के उद्धार के लिये ही ऐसा अभिग्रह किया था।

दृढ़वर्मा—नानी जी! भगवान् के संबन्ध में ऐसी बात कहकर उनका अपमान मत कीजिये। आप उनको चाहे जो समझें, वह तो राग-द्वेष से बहुत ऊपर है। उनके लिये उनका अपना कोई संबन्धी नहीं है। उन्होंने चन्दना के किसी पिछले जन्म के विशेष पुण्य के कारण ही ऐसा अभिग्रह किया था। किन्तु चन्दना में अभिग्रह की एक बात की फिर भी कमी थी। वह हँस तो रही थी, किन्तु रो नहीं रही थी। अतएव भगवान् महावीर स्वामी अभिग्रह की सारी बातें मिलती देखकर तथा एक बात के न मिलने से आगे को चल पड़े।"

रानी सुभद्रा—तब तो बेचारी बड़ी निराश हुई होगी?

दृढ़वर्मा—अजी, वह उसी दम फूट-फूट कर रोने लगी।

राजा चेटक—तब तो भगवान् का अभिग्रह उसने अचानक ही पूरा कर दिया।

दृढ़वर्मा—जी, इसीलिये भगवान् फिर लौट आये और उन्होंने अपने दोनों हाथ उसके सामने फैला दिये। चन्दनबाला ने उन्हीं कुलथी के दानों का एक-एक ग्रास बनाकर उनके हाथ में दिया और भगवान् ने पाँच मास के बाद अपना अभिग्रह पूरा होने पर कौशाम्बी में चन्दनबाला के हाथ से आहार लिया।

राजा चेटक—फिर क्या हुआ ?

दृढ़वर्मा—फिर तो इस घटना का शोर सारी कौशाम्बी में मच गया। आकाश से देवों ने फूल बरसाए और कहा—"धन्य यह पात्र और धन्य यह दान।" कौशाम्बी के सभी स्त्री-पुरुष चन्दनबाला के दर्शन को आने लगे। इस समाचार का पता पाकर राजा शतानीक तथा मौसी मृगावती भी उसके दर्शन को आए मौसी उसे पहचान कर अपने साथ ले गईं। तब से चन्दनबाला मौसी के पास कौशाम्बी में है। मौसी ने अपने पुत्र उदयन से यह प्रतिज्ञा कराई है कि वह मुझे मेरा राज्य वापिस दिला देगा।

वह इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि दौवारिक ने कहा—

"राजाधिराज गणपति राजा चेटक की जय।"

राजा—क्या है दौवारिक ?

दौवारिक—देव ! एक दूत कौशाम्बी से आया है। वह कहता है कि उसे महाराज को एक गुप्त संदेश देना है। अतः उसे दरबार में बुलाने से पूर्व प्रथम राजमहल में मिलने की अनुमति दी जावे।

रानी सुभद्रा—उसे मेरे सामने ही बुलाइये प्राणनाथ ! संभव है वह बेटी चन्दना का कुछ और संदेशा लाया हो।

राजा—अच्छा, दौवारिक ! तुम दूत को यहीं भेज दो।

दौवारिक यह सुनकर चला गया और थोड़ी देर में एक दूत को लेकर फिर अन्दर आया। दूत ने आकर महाराज को प्रणाम करके कहा—

"राजाधिराज गणपति राजा चेटक की जय।"

"तुमको किसने भेजा है ?"

"देव ! मुझे महाराज उदयन ने भेजा है। उन्होंने देव के लिये एक पत्र दिया है।"

महाराज—क्या चिरंजीव उदयन कौशाम्बी-नरेश बन गया ? राजा शतानीक का क्या हुआ ?

दूत—देव ! महाराज शतानीक के उपासना करते-करते ही प्राण निकल गए। इसलिये महाराज उदयन अब कौशाम्बी-नरेश बन गए हैं। उन्होंने राज-गद्दी पर बैठते ही प्रथम आप ही को यह पत्र भेजा है।

यह कहकर दूत ने अपने वस्त्रों में से एक पत्र निकाल कर राजा के हाथ में दिया। पत्र अच्छी तरह से एक कीमती वस्त्र में बन्द था। राजा ने उसके बन्द काटकर उसे पढ़ना आरंभ किया। तब महारानी सुभद्रा बोली—

"पत्र को जोर से पढ़िये महाराज !"

"अच्छा सुनो, मैं पढ़ता हूँ।"

"सिद्ध श्री शुभ स्थान वैशाली नगरी में महामान्य पूज्य नाना जी राज-राजेश्वर गणपति राजा चेटक को कौशाम्बी से वत्स-नरेश उदयन की सादर चरण-वन्दना। नानाजी ! मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि पिताजी ने किसी कुमंत्रणा के वश में पड़कर चम्पा पर आक्रमण किया, जिसमें मौसा दधिवाहन मारे गये। मैंने निश्चय किया है कि पिताजी के इस पाप का मैं मार्जन करूँगा। बहिन चन्दनबाला आजकल मेरे पास है। उसने भगवान् महावीर स्वामी के कठिन अभिग्रह को पूर्ण करके जो उन्हें आहार दान दिया है उससे उसने तीनों लोकों में अक्षय कीर्ति का संपादन किया है। उसके संबन्ध में आप निश्चिन्त रहें। आजकल उसको वैराग्य बहुत अधिक बढ़ा हुआ है। उसका निश्चय है कि वह गृहस्थ के चक्कर में नहीं पड़ेगी और भगवान् महावीर स्वामी को केवल ज्ञान होते ही उनसे दीक्षा लेकर साध्वी बन जावेगी। उसे आप भगवान् को केवल ज्ञान होने यहीं रहने दें।

"मैंने सुना है कि भाई दृढ़वर्मा आप के ही पास हैं। मैंने उनको उनका राज्य वापिस देने का निश्चय किया है। आप उनसे कह दें कि वह अपनी बची-खुची सेना को लेकर चम्पापुरी पर अधिकार करके वहां जम कर बैठ जावें। मैंने वहां से अपनी सेना को बुलाने का आज्ञापत्र भेज दिया है। कुछ थोड़े से सैनिक वहां प्रबन्ध के लिये अवश्य है, किन्तु उनको आज्ञा दे दी गई है कि वह दृढ़वर्मा के सैनिकों का कोई प्रतिरोध न कर उनके आने पर उन्हें नगर का शासन सौंप दें। पूजनीया नानाजी को मेरी चरण-वन्दना कहें।"

आपका स्नेही दौहित्र
उदयन

रानी सुभद्रा—बेटा उदयन तो सच्चा धार्मिक निकला। बेटे दृढ़वर्मा ! मेरी बधाई।

राजा चेटक—अंगराज के रूप में मैं भी बेटा दृढ़वर्मा तुमको बधाई देता हूँ।

इस पर दृढ़वर्मा ने नाना तथा नानी के चरण छूकर कहा—

"यह सब सफलता मुझे आपके ही आशीर्वाद से प्राप्त हुई है।"

राजा चेटक—तुम्हारी समस्या के सुलझ जाने से लिच्छवियों की एक इच्छा तो पूरी हो गई।

दृढ़वर्मा—क्या लिच्छवियों की अभी कोई और इच्छा शेष है ?

राजा चेटक—लिच्छवियों में आजकल वत्स देश तथा मगध पर आक्रमण करने का आन्दोलन किया जा रहा है। वह दोनों को ही साम्राज्या-कांक्षी मानकर उनके अधिकाधिक विरोधी बनते जा रहे हैं। अब दृढ़वर्मा के अपना राज्य प्राप्त कर लेने से वत्स देश के प्रति उनकी विरोधी भावना शान्त हो जावेगी। किन्तु मगध के बिम्बसार की राजनीतिक शक्ति को कुचलना वज्जी गणतन्त्र का प्रत्येक नागरिक अपना कर्तव्य समझता है। मैंने मगध तथा वैशाली के युद्ध को रोकने का बहुत यत्न किया, किन्तु जान पड़ता है कि हमको मगध पर आक्रमण करना ही पड़ेगा।

३४

चित्र पर आसक्ति

अपराह्न का समय है। राजगृह के पांचों पर्वतों के ऊपर सूर्य की ढलती हुई किरणें एक बड़ा सुन्दर दृश्य उत्पन्न कर रही है। राज दरबार-आगत सज्जनों से ठसाठस भरा हुआ है। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार अपने राजसिंहासन पर बैठे ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, जैसे तारागण से घिरा हुआ चन्द्रमा सुशोभित होता है। उनके चारों ओर महिलाएँ उन पर चमर ढुला रही हैं। वंदीजन उनका यशोगान कर रहे हैं। उसी समय द्वारपाल ने आकर सम्राट् से निवेदन किया—

"राजराजेश्वर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

सम्राट्—क्या है द्वारपाल ?

द्वारपाल—देव ! भरत नामक एक चित्रकार देव के दर्शन की अभिलाषा से द्वार पर खड़ा हुआ है। वह कहता है कि मुझे आज राजगृह के समस्त चित्रकारों को पराजित करके अपनी कला द्वारा सम्राट् की सेवा करनी है।

सम्राट्—इतना आत्मविश्वास है उसे अपनी कला पर ! अच्छा, उसे आदरसहित अन्दर ले आओ।

थोड़ी देर में ही भरत ने राजसभा में उपस्थित होकर अभिवादन किया और कहा—

"राजराजेश्वर मगधराज सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

सम्राट्—कहो नवयुवक ! कहां से आ रहे हो ?

भरत—वैशाली से आ रहा हूं देव।

सम्राट्—क्या कार्य करते हो ?

भरत—देव ! मैं चित्रकार हूं। वैशाली में मैंने वहां के सभी चित्रकारों को राजसभा में बुलाकर अपनी कला के द्वारा पराजित किया था। देव! अल्पतम

समय में वास्तविक चित्र बनाने में आज इस दास से प्रतिद्वन्द्विता करना सुगम कार्य नहीं है।

सम्राट्—हां, चित्रकार ! वैशाली राजसभा में की हुई तुम्हारी प्रतिद्वंद्विता के संबंध में हम सुन चुके हैं, किन्तु तुम तो वहां गणपति महाराज चेटक के अत्यधिक प्रेमपात्र थे। तुमने वैशाली को क्यों छोड़ा ?

भरत—प्राणों के संकट से देव !

सम्राट्—क्यों, प्राणों का संकट वहां क्यों आ पड़ा ?

सम्राट् के यह कहने पर भरत ने अपने रेशमी थैले में से चेलना का चित्र निकाल कर सम्राट् को देते हुए कहा—

"देव ! यह चित्र महाराजा चेटक की सब से छोटी पुत्री चेलना का है। महाराज ने इस चित्र को देखकर मुझे गुप्त रूप से मारने की आज्ञा दी थी। किन्तु मुझे पता लग गया और मैं शीघ्रता में अपना सारा सामान वहीं छोड़कर केवल यह चित्र लेकर वहां से अपने प्राण लेकर भाग खड़ा हुआ।"

सम्राट् चित्र को देखकर एकदम चकित हो गए और भरत से बोले—

"अच्छा भरत ! तुमको हम आश्रय देते हैं। तुम्हारी कला आदर पाने योग्य है।"

सम्राट् ने यह कहकर राजसभा विसर्जित कर दी। उपस्थित सभासद् अपने-अपने स्थान को जाने लगे और सम्राट् वहां से उठकर अपने प्रमोदभवन में आए।

महाराज के प्रमोदभवन में अनेक प्रकार की विलास-सामग्री उपस्थित थी। दीवारों पर अनेक प्रकार के चित्र लगे हुए थे। एक ओर बीचों-बीच कुछ सुन्दर आसन लगे हुए थे। महाराज एक आसन पर आकर बैठ गये और उस चित्र को देखकर मन ही मन विचार करने लगे। वे बड़ी देर तक मन में कुछ विचार करते रहे। उन्होंने चित्र को देखकर कहा—

"कैसा सुन्दर रूप है इस राजकुमारी का ! यद्यपि इसके सौंदर्य की ख्याति आज भारत के समस्त देशों में फैली हुई है, किन्तु मुझे इसके इतनी सुन्दरी होने

का ध्यान तक न था। इसका रूप तो मुझे बरबस अपनी ओर खैंचे लेता है। ऐसा जान पड़ता है जैसे इसके केशों की मांग का जाल कामी पुरुषों के लिये वास्तविक जाल है। उसके सिर का चूड़ामणि उसकी शोभा को और भी अधिक बढ़ा रहा है। इस चूड़ामणि से युक्त यह केशराशि तो उत्तम रत्नयुक्त एक काले नाग से प्रतिस्पर्द्धा कर रही है। इसके माथे पर लगी हुई यह चमकदार बिन्दी इसके रूप की शोभा को दुगना बढ़ा रही है। इससे इसका मुख ऐसा लगता है जैसे आकाश में पूर्ण चन्द्रमा खिला हुआ हो। इसके भ्रूभंग से इसके ललाट पर जो ओंकार सा बन गया है वह ओंकार न होकर जगद्विजयी कामदेव का बाण जैसा दिखलाई देता है। इसके नेत्र का कटाक्ष कामीजनों को उसी प्रकार वश में कर लेता है, जैसे संगीत मृगो को अपने वश में कर लेता है। इसके कानों में पड़े हुए दोनों कुण्डल ऐसे सुन्दर दिखलाई देते हैं, जैसे सूर्य और चन्द्रमा दोनों उसकी सेवा करने को उसके कान में आकर लटक गये हों। इसके नेत्र कमल के समान सुन्दर तथा मृगी के समान चंचल हैं। इसका मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर दिखलाई देता है। किन्तु जब यह बोलती होगी तो इसका मुख आकाश की शोभा को धारण करता होगा। इसके मुख में पान की लाली बादलों की लालिमा की, दांतों की चमक चन्द्र-किरण की तथा इसका शब्द मेघध्वनि की समानता करते होंगे। इसकी गर्दन में पड़ी हुई तीनों रेखाएं कैसी सुन्दर हैं। इसके वक्षस्थल की सुन्दरता का तो वर्णन ही नहीं किया जा सकता। इसकी नाभि की गहनता एक ऐसे तालाब का भ्रम उत्पन्न करती है, जिसमें कामदेव-रूपी हस्ती गोता लगाकर बैठ गया हो, अन्यथा उसमें रोमावलीरूप भ्रमर-पंक्ति कहां से आ जाती। इसके कमल के समान मनोहर कर अति मनोहर दीख पड़ते हैं। कटिभाग तो इसका बहुत ही पतला है। इसके कोमल चरणों में पड़े हुए नूपुर इसकी शोभा को और भी अधिक बढ़ा रहे हैं। यदि मुझे इसका परिचय न मिल गया होता तो इसके मनोहर रूप को देखकर मैं यही सोचता कि ऐसी अतिशय शोभायुक्त यह कन्या कोई किन्नरी है अथवा विद्याधरी? यह रोहिणी है अथवा कमलनिवासिनी कमला? यह इन्द्राणी है अथवा कोई

मनोहर देवी ? यह नागकन्या है अथवा कामदेव की प्रिया रति है ? इसका रूप मेरे मन को बरबस अपनी ओर खैंचे लेता है। किंतु यह तो ऐसे व्यक्ति की कन्या है जो मुझ से सब प्रकार से घृणा करता है। यद्यपि मेरा महामात्य वर्षकार संसार के प्रत्येक कार्य को कर सकता है, किन्तु वह इस प्रकार के कार्य में मुझे सहायता नहीं देगा। वह देशभक्त है, साम्राज्यकामी है। अतएव मगध के साम्राज्य को बढ़ाना उसके जीवन का व्रत है, किन्तु मेरे भोग-विलासों के विषय में वह आचारवान् व्यक्ति मुझे तनिक भी सहायता नहीं देगा। ऐसी स्थिति में क्या किया जावे ? मेरा हृदय तो अपने वश में नहीं रहा। इस महिला-रत्न को प्राप्त किये बिना मेरा सारा साम्राज्य निःसार है।"

इस प्रकार विचार करते-करते सम्राट् अचेत हो गये।

३५

मगध के दो राजनीतिज्ञ

अभयकुमार अब बालक नहीं था। वह अठारह-उन्नीस वर्ष का युवक बन चुका था। उसकी उठान अच्छी थी, अत: इस अठारह-उन्नीस वर्ष की आयु में भी वह पच्चीस-तीस वर्ष का युवक दिखलाई देने लगा था। युवराज होने के कारण उसे राज्य के सभी उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य करने पड़ते थे। उसके कारण महामात्य वर्षकार तथा सम्राट् बिम्बसार दोनों का ही कार्य बहुत हल्का हो गया था। उसको सदा यह ध्यान रहता था कि पिता को कोई कष्ट न हो। उनकी शारीरिक स्थिति पर वह अनेक प्रसिद्ध वैद्यों के होते हुए भी स्वयं ध्यान दिया करता था।

इधर कुछ सप्ताह से वह देखता है कि पिता उदास रहते हैं। उसने कई बार उनसे इस उदासी का कारण पूछा भी, किन्तु उन्होंने सदा ही बात टाल दी। अभयकुमार ने कई चिकित्सकों से भी उनकी स्वास्थ्य-परीक्षा कराई, किन्तु वह भी इस विषय में कुछ सहायता न कर सके। अन्त में उसको भरत चित्रकार द्वारा दिये हुए चित्र का ध्यान आया। यह सोचते ही उसने भरत को बुलवा भेजा। भरत आते ही अभिवादन करके उनके सामने खड़ा हो गया। अभयकुमार उससे बोले—

"कहो चित्रकार! राजगृह में आपको किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं?"

भरत—जब सम्राट् तथा युवराज दोनों की मुझ पर कृपा है तो मुझे कष्ट क्यों होने लगा, युवराज!

अभय—तुमको अपने रहने का मकान तो पसंद आया?

भरत—वह तो युवराज ऐसा जान पड़ता है जैसे उसे आपने मेरे ही लिये बनवाया हो। उसमें मेरी सारी आवश्यकताएं पूर्ण हो जाती हैं। एक कमरे में मैंने अपनी चित्रशाला बना ली है, जिसमें राजगृह के बड़े-बड़े

गण्यमान्य व्यक्तियों का स्वागत करने का मुझको सौभाग्य प्राप्त होता रहता है। उसको मैंने अपने बनाये चित्रों से खूब सजा रखा।

अभयकुमार—तब तो सम्राट् भी आपकी चित्रशाला में आते रहते होंगे।

भरत—जी युवराज! सम्राट् अभी तक तीन-चार बार कृपा कर चुके हैं।

अभय—क्या सम्राट् आपसे कुछ चित्र भी बनवा रहे है?

भरत—जी, उनको तो केवल एक ही चित्र पसंद है। वह तो उसी को विभिन्न मुद्राओं में बनवाया करते हैं।

अभय—वह चित्र किस का है?

भरत—वह बज्जी गणतंत्र के गणपति लिच्छवी राजा चेटक की सबसे छोटी पुत्री चेलना का चित्र है युवराज!

अभय—उसी का चित्र तो तुमने अपनी प्रथम भेंट के समय सम्राट् को दिया था?

भरत—यही बात है देव!

इस पर अभयकुमार मन ही मन कुछ सोचने लगे। वह तुरंत समझ गये कि पिता लिच्छवी राजकुमारी पर आसक्त हैं। उनकी समझ में यह तुरंत आगया कि सम्राट् की चिन्ता का वास्तविक कारण यही है। उन्होंने पिता के कष्ट के वास्तविक कारण का पता लगने पर प्रथम उस सम्बंध में अपने कर्तव्य पर विचार किया। वह सोचने लगे कि पिता का कष्ट तो दूर करना ही चाहिये। अन्त में उन्होंने इस विषय में महामात्य वर्षकार से परामर्श करने का निश्चय किया। उन्होंने चित्रकार को बिदा करके अपना रथ मंगवाया और उसपर बैठ कर महामात्य से मिलने चले।

उस समय लगभग एक पहर रात्रि गई होगी। महामात्य एक बहुत बड़े महल में निवास करते थे। उनके राजमहल के सामने सैनिक पहरा रहता था। किन्तु युवराज के रथ को देखते ही सैनिक उनको सैनिक ढंग से अभिवादन करके

एक ओर हट गये। सामने एक बड़ा सा चत्वर था, जिसमें एक साथ पंद्रह-बीस रथ खड़े हो सकते थे। चत्वर के बाद एक मंजिल का महल था, जिसमें आठ-दस कमरे थे। इनमें से एक में महामात्य का कार्यालय, एक में उनका शयनकक्ष तथा एक अन्य कमरे में उनका मंत्रणागृह था। युवराज पहुँचे तो महामात्य अपने कार्यालय में बैठे कुछ राजपत्रों पर आज्ञाएं लिख रहे थे। युवराज को इस असमय आए देखकर महामात्य बोले—

"आइये युवराज ! आज इस समय कैसे कष्ट किया ?"

"कुछ आवश्यक परामर्श करना था महामात्य !"

"कहिये ! मैं प्रस्तुत हूं ।"

"बात यह है कि मैं कई सप्ताह से पिता जी को कुछ चिन्तित-सा पाता हूँ। क्या आपने भी इस बात पर लक्ष्य किया है ?"

"लक्ष्य क्या करता, उनकी चिन्ता तो बिल्कुल स्पष्ट है, युवराज !"

"तो आपको उनकी चिन्ता के कारण का भी पता होगा ?"

"मैं समझता हूं कि उनकी चिन्ता का कारण वैशाली की राजकुमारी का वह चित्र है जो उनको अयोध्या के चित्रकार भरत ने उस दिन दिया था।"

"तो क्या आपने उनकी चिन्ता के निवारण करने का कुछ उपाय भी सोचा ?"

"उपाय तो इसका केवल एक ही है कि सम्राट् के लिये उस राजकुमारी को प्राप्त किया जावे, किन्तु यह कुछ सरल कार्य नहीं है। इस चित्र के आने के पूर्व भी मैं इस राजकुमारी को सम्राट् के लिये प्राप्त करने का यत्न कर चुका हूं। क्योंकि मेरी नीति यह है कि मगध साम्राज्य और उसकी मित्रता का विस्तार यथासंभव बिना युद्ध के किया जावे। मगध के उत्तर में वैशाली गणतंत्र एक प्रबल राज्य-संगठन है। वह मगध का पूर्णतया विरोधी है। मैं सोचता था कि यदि वहां की राजकुमारी से सम्राट् का विवाह हो जाता तो वैशाली का गणतंत्र हमारा मित्र राष्ट्र बन जाता। किन्तु लिच्छवी गणतंत्र का गणपति राजा चेटक जैनी होने के कारण हमसे घृणा करता है। आजकल तो लिच्छवी

लोगों का उत्साह इतना बढ़ा हुआ है कि वह मगध पर आक्रमण करके हमारे यहां भी गणराज्य की स्थापना करना चाहते हैं, फिर उनसे विवाह-संबन्ध की बात कैसे चलाई जा सकती है।

अभयकुमार—महामात्य ! मुझे आपकी बुद्धि की प्रशंसा करनी ही पड़ती है। आप बहुत दूर से बात को ताड़ लेते हैं। जिस बात का पता मुझे अत्यन्त यत्न करने पर चल सका, आप उसको पहले ही जान चुके थे। इतना ही नहीं, वरन् आप उद्योग तो उसके लिये उससे भी पूर्व कर चुके थे। किन्तु, महामात्य ! आप जहां अपना उद्योग इस विषय में सफल होते न देखकर चुप होकर बैठ गये, वहां मैं इस विषय में निराश नहीं हूँ। मेरा विश्वास है कि यदि हम तनिक होशियारी से काम लें तो इस विषय में सफलता निश्चय से प्राप्त की जा सकती है।

वर्षकार—मैं आपका आशय नहीं समझा, युवराज ! वैशाली गणतंत्र इस समय मगध पर आक्रमण करने की तैयारी बड़े जोर-शोर से कर रहा है। सोन तथा गंगा दोनों ही नदियों के उस पार के घाटों पर बड़े-बड़े युद्धपोत सेनाओं को इस पार उतारने के लिये तैयार खड़े हैं। समस्त वज्जी गणतंत्र के युद्ध-कारखानों में धड़ाधड़ शस्त्रास्त्र बनाये जा रहे हैं। सैनिकों की नई भर्ती करके उनको बड़े वेग से सैनिक शिक्षा दी जा रही है। फिर अंग देश का राजा दृढ़वर्मा तथा वत्स देश का राजा उदयन भी मगध के विरोधी तथा वैशाली के राजा चेटक के सबंधी हैं। मगध और वैशाली में युद्ध होने पर वह वैशाली को अवश्य पूरी सहायता देंगे। ऐसी स्थिति में तुमको आशा की किरण कहां से दिखलाई दी, यह मैं नहीं समझा युवराज !

अभयकुमार—मेरा विचार तो महामात्य यह है कि उस राजकुमारी को वैशाली से उड़ा कर मगध ले आया जावे।

महामात्य अभयकुमार के मुख से इन शब्दों को सुनकर एकदम चौंक पड़े और बोले—

"कैसी बात करते हो, युवराज ! क्या सर्प के बिल में घुस कर

सर्पिणी का अपहरण किया जा सकता है ? क्या सिंह की मांद में जाकर उसके बच्चे को पकड़ा जा सकता है ? वैशाली नगर की रक्षा के प्रबंध से मैं भली प्रकार परिचित हूँ युवराज ! मैं कई बार वेष बदल-बदल कर वहाँ के दुर्ग तथा रक्षा-मार्गों को अपनी आँखों से देख चुका हूं । कैसा ही चतुर व्यक्ति भी उनसे बचकर सकुशल बाहर नहीं निकल सकता युवराज !"

अभयकुमार—किन्तु महामात्य ! मैं तो उनका स्पर्श भी करना नहीं चाहता। मैं तो इस कार्य के लिये नया ही सुरंग मार्ग बनवाना चाहता हूं ।

अभयकुमार की इस बात को सुनकर महामात्य बहुत प्रसन्न हुए और कहने लगे—

"हाँ, यह आपने वास्तव में मौलिक सूझ की बात कही। अच्छा, इस कार्य के लिये वैशाली किसको भेजा जावे ?"

अभयकुमार—मैं समझता हूं कि इस कार्य को मेरे अतिरिक्त और कोई भी संपादन नहीं कर सकता।

महामात्य—यह कैसी बात कहते हो युवराज ! इस बात के लिये तुम अपने प्राणों को संकट में डालोगे ?

अभयकुमार—मेरे प्राणों पर संकट नही आ सकता महामात्य। मैं रत्नों के एक जैन व्यापारी का वेष बनाकर वैशाली जाऊँगा और वहां सबको अपने वश में करके राजकुमारी को सुरंग के मार्ग से ले आऊँगा। आप अभी से एक ऐसी सुरंग बनवाना आरंभ कर दें जो गंगा के इस पार से होती हुई वैशाली के उस मकान में समाप्त हो, जिसको मैं वैशाली में अपने रहने के लिये ठीक करूं ।

महामात्य—अब मैं समझा। युवराज ! आपकी योजना ठीक है और इस प्रकार इस योजना द्वारा हम न केवल सम्राट् को चिन्तामुक्त कर सकेंगे, वरन् वैशाली की शत्रुता को भी मित्रता के रूप में परिणत कर सकेंगे। मैं आपका इस योजना के लिये बधाई देता हूं। किन्तु आपको इस योजना में अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता है, क्योंकि तनिक सी असावधानी होने पर ही प्राणों पर संकट आ जाना निश्चित है।

अभयकुमार—उसके लिये आप निश्चित रहें महामात्य ! मैं लिच्छवियों को इस प्रकार वश में कर लूँगा, जिस प्रकार सपेरा सांपों को वश में कर लेता है। हां, आपको मुझे एक सहायता और देनी होगी।

महामात्य—वह क्या ?

अभयकुमार—श्रीमान् पिता जी से जाने के संबंध में अनुमति की, क्योंकि उनकी अनुमति तथा आशीर्वाद के विना मेरा जाना उचित न होगा।

अभयकुमार—आपका यह कहना यथार्थ है कुमार ! मैं सम्राट् से मिल कर तुम्हारी इस विषय की कठिनाई को दूर कर दूंगा। युवराज ! आप जानते हैं कि सम्राट् पुत्र-प्रेम के कारण तुमको जाने की अनुमति बड़ी कठिनता से देंगे, किन्तु मैं उनको राजनीतिक दांवपेच समझा कर इस विषय में उनकी अनुमति ले ही लूँगा। अब मैं आपके प्रस्थान करने से पूर्व अनेक गुप्तचरों को वैशाली भेज रहा हूं, जिससे उनके द्वारा न केवल वहां के समाचार समय-समय पर मिलते रहें, वरन् उनके द्वारा तुम भी यहां समाचार भेज सको तथा आवश्यकता पड़ने पर वह वहां आपके काम भी आ सकें।

अभयकुमार—आपका वह विचार बड़ा सुन्दर है महामात्य ! अच्छा अब रात बहुत हो गई है। आप मुझे विश्राम करने की अनुमति दें।

यह कहकर युवराज अपने रथ पर बैठकर अपने निवास-स्थान को चले गए।

३६

रत्नों का व्यापारी

"मुझे आशा नहीं थी कुमार ! कि आप अपने अभिनय का इस उत्तम रीति से सम्पादन कर सकेंगे।"

"फिर आपने मुझे कुमार कहा ! अभी से अपने पाठ को भूल गये, आप माणिकचन्द जी !"

माणिकचन्द—मैं क्षमा चाहता हूँ सेठ रत्नप्रकाश जी।

रत्नप्रकाश—हां, अब आये आप ठीक मार्ग पर। किन्तु हीरालाल जी का कार्य भी कम अच्छा नहीं रहा। वास्तव में रत्न-शास्त्र का जितना सुन्दर ज्ञान उनको है, उतना हममें से किसी को नहीं है।

हीरालाल—किन्तु रत्नप्रकाश जी ! आपका प्रभाव राजा चेटक पर बहुत ही अच्छा पड़ा। वह आपको समस्त जंबूद्वीप के बड़े से बड़े धन-कुबेरों में मानने लगे है।

सम्पतलाल—अजी भला, रत्नप्रकाश जी द्वारा भेंट की हुई रत्नों की माला में क्या इतना भी प्रताप न होता।

रत्नप्रकाश—किन्तु सम्पतलाल जी ! अब अपनी योजना की अब-तक की सफलता का समाचार भी घर भेज देना चाहिये।

सम्पतलाल—यह बहुत आवश्यक है रत्नप्रकाश जी ! अच्छा प्रथम आप अध्ययन-कक्ष में जाकर अपना पत्र लिख लें।

रत्नप्रकाश—यह आपने ठीक कहा।

यह कहकर रत्नप्रकाश उन तीनों को वहीं छोड़कर बगल के अध्ययन-कक्ष में जाकर पत्र लिखने लगे। उन्होंने निम्नलिखित पत्र लिखा—

"आदरणीय !

आपकी कृपा से हम लोग रत्नों का व्यापार करने वाले जौहरी तो बन

ही गये थे। हम लोगों ने हीरा, पन्ना, मरकत, मुक्ता, माणिक, पुखराज मणि, नीलमणि, प्रवाल आदि रत्नों को लेकर अपने को व्यापारियों के एक समूह के रूप में संगठित किया, जिसका नेता-सेठ मुझे बनाया गया। घर से आकर मार्ग में हम लोग प्रत्येक बड़े नगर में ठहर कर रत्नों का न केवल व्यापार करते थे, वरन् प्रत्येक जैन संस्था का निरीक्षण करके उसकी बड़ी भक्तिपूर्वक आर्थिक सहायता भी किया करते थे। त्रिकाल सामायिक तथा पंच परमेष्ठि स्तोत्र का पाठ करना तो हमने अपना नित्य नियम बना लिया था। इस प्रकार समस्त देश में अपने जैनत्व को प्रसिद्ध करते हुए कुछ दिन बाद हम वैशाली जा पहुंचे। यहां हम प्रथम एक उपवन में ठहरे। इस उपवन में एक जैन संस्था भी थी। यहां हमने जैन विधि से बड़े ठाठ से उपासना की। इससे यहां के जैनियों में बात की बात में यह समाचार फैल गया कि कुछ विदेशी जैन धनकुबेर व्यापार के लिये वैशाली आये हुए हैं।

कुछ समय उपवन में विश्राम कर हमने कुछ उत्तमोत्तम रत्नों को चुना। अब हमने गणपति राजा चेटक की सभा में जाने की तैयारी की। राजसभा में साथ जाने के लिये हमको कुछ स्थानीय जैन सेठ भी मिल गये। राजा चेटक की सभा को संघागार कहते है। उनकी राजसभा मगध की राजसभा से कम बड़ी नहीं है। उसमें नौ सहस्र नौ सौ निन्नानवे राजाओं के बैठने के पृथक्-पृथक् आसन हैं। गणपति राजा चेटक का आसन उन सबसे अधिक विशाल तथा सुन्दर है। राजा चेटक ने हम लोगों के आने का समाचार पाकर हम लोगों को अत्यन्त सम्मानपूर्वक अन्दर बुलवाया। हमने भी उनको अपने छांटे हुए रत्नों की एक माला भेंट की। यहां के जैन सेठ हमारे साथ थे ही। उन्होंने हमको अत्यन्त धार्मिक जैनी के रूप में राजा से मिलाया। राजा चेटक के साथ कुछ मधुर वार्तालाप करके हमने उनसे कहा—

"राजाधिराज ! हम रत्नों के व्यापारी हैं। अनेक देशों में भ्रमण करते हुए हम यहां आ पहुंचे हैं। हमारी इच्छा आपके नगर में कुछ दिन ठहरकर यहां के स्थान देखने की है। किन्तु हमारे पास निवास-स्थान कोई नही है। हमको

इस राजमन्दिर के समीप किसी मकान में ठहरने की अनुमति दी जावे।"

इस पर राजा चेटक ने हमको अपने राजभवन के पास उसी हर्म्य में ठहरने की अनुमति दे दी, जिसमें पहिले भरत चित्रकार रहा करता था। अब हम अपने समस्त सामान तथा सेवकों सहित उस मकान में आ गये हैं।

हमारा विचार इस स्थान पर एक चैत्यालय बनवाने का है, जिससे हम यहां अत्यन्त समारोहपूर्वक जिनेन्द्र भगवान् का पूजन नित्य कर सकें।

सूचनार्थ निवेदन है।

भवदीय
"रत्नप्रकाश"

रत्नप्रकाश ने इस पत्र को एक चर के द्वारा राजगृह के महामात्य वर्षकार के पास भेज दिया।

रत्नप्रकाश ने पांच-सात दिन के अन्दर ही अपने निवास-स्थान में एक अत्यन्त मनोहर चैत्यालय बनवा लिया। अब वह उसमें अत्यन्त समारोह-पूर्वक जिन भगवान् का पूजन प्रातः सायं करने लगे। कभी तो वह बड़े-बड़े मनोहर स्तोत्रों से भगवान् की स्तुति किया करते थे। कभी-कभी वह उन सेठों के साथ जिनेन्द्र भगवान् का पूजन किया करते थे। कभी-कभी तो उनको पूजन करते-करते ऐसा आनन्द आ जाता कि वह कृत्रिम तौर से भगवान् के सामने नृत्य भी करने लगते थे। कभी-कभी वह अपनी स्तुति-प्रार्थना आदि में उत्तमोत्तम शब्द करने वाले बाजों का प्रयोग भी किया करते थे। कभी वह जैन पुराणों को भी जोर-जोर से बांचा करते थे। जिस समय वह इस प्रकार भजन, पूजन आदि किया करते तो उनका शब्द रनवास में बराबर जाया करता था। इससे इनके स्तोत्र आदि को राजमहल की महिलाएं भी सुना करतीं और मन ही मन उनकी जिन-भक्ति की प्रशंसा किया करती थीं।

३७

चेलना से विवाह

अपराह्न का समय है। मजदूर अपने-अपने कार्य में लगे हुए हैं। राजा चेटक की राजसभा पूर्णतया भरी हुई है। नगरनिवासी व्यापारी लोग अपने-अपने कार्य में लगे हुए है। घरों में केवल स्त्रियां ही स्त्रियां रह गई हैं, जो अपने घर के काम-धन्धों से फुर्सत पाकर दो-दो, चार-चार की टोलियों में बैठी हुई आपस में गप्पें हांक रही है। राजा चेटक का महल भी सुनसान है। राज-सेवक अपने कार्य को समाप्त कर के सभी जा चुके है। दासियां अपना-अपना कार्य समाप्त करके कोई ऊंघ रही है तथा कोई सो रही हैं। राज-माता स्वाध्याय में लगी हुई हैं। केवल एक कमरे में से कुछ फुसफुस का शब्द सुनाई पड़ रहा है। उनमें से एक बोली—

"बहिन चेलना! मैंने भगवान् का ऐसे भक्तिभाव से पूजन करने वाले धार्मिक पुरुष अभी तक कभी नहीं सुने।"

"बहिन ज्येष्ठा! इनके मधुर कण्ठ से गाये हुए जिनेन्द्र भगवान् के स्तोत्रों को सुनकर मैं भी प्रायः ऐसा ही सोचा करती हू।"

ज्येष्ठा—"मेरे मन में तो कई बार यह इच्छा उत्पन्न होती है कि मैं न केवल उनके चैत्यालय को जाकर स्वयं देखूँ वरन् उनको भगवान् की स्तुति करते हुए भी अपनी आंखों से जाकर देखूं।"

चेलना—"इच्छा तो मेरी भी ऐसी ही होती है।"

ज्येष्ठा—किन्तु अपरिचित व्यक्तियों के पास जाते कुछ संकोच होता है।

चेलना—ऐसे स्वधर्मी भाइयो के साथ तो संकोच की कोई बात नहीं।

ज्येष्ठा—अच्छा, तो चल देख आयें।

चेलना--अच्छा, चल।

ऐसा कहकर वे दोनों बहिनें बाहिर के वस्त्र पहनकर उठकर बाहिर की ओर चल दीं। राजमहल से निकल कर वह अपने सामने के उसी महल में आईं, जिसमें युवराज-अभयकुमार सेठ रत्नप्रकाश का वेष बनाये हुए रहते थे। राजकुमारियाँ उस महल में जाकर सीधे एक ओर बने हुए चैत्यालय में गईं। चैत्यालय बहुत छोटा, किन्तु अत्यंत कलापूर्ण ढंग से बना हुआ था। उसके बीचों-बीच एक छोटी-सी वेदी के ऊपर एक बहुत छोटा सिंहासन था, जिसकी लंबाई लगभग नौ इंच थी। सिंहासन सोने का बना हुआ था। सिंहासन पर भगवान् पार्श्वनाथ की एक सोने की रत्नमयी प्रतिमा स्थापित की हुई थी। प्रतिमा पद्मासन थी और उसके दोनों घुटनों की लंबाई लगभग आठ इञ्च थी। उसके सिर पर शेषनाग के सातों फन अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे। प्रतिमा के रत्नों से अत्यधिक प्रकाश निकल रहा था। प्रतिमा के ऊपर एक छोटा-सा बड़ा सुन्दर छत्र लगा हुआ था और छत्र के दोनों ओर चमर लगे हुए थे। प्रतिमा के दोनों ओर वेदी के दोनों थम्भों पर चमर लिये हुए इन्द्र की मूर्तियाँ लगी हुई थीं जो नृत्य करने की मुद्रा में थीं। चैत्यालय के दृश्य को देखकर दोनों राजकुमारियाँ आनन्द से विभोर हो गईं। वह अपने दोनों हाथ जोड़कर निम्नलिखित शब्दों में भगवान् की स्तुति करने लगीं—

"णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥

चत्तारि मंगलं, अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहू मंगलं, केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा, अरिहन्त लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि, अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

श्री ऋषभः ॥१॥ अजितः ॥२॥ संभवः ॥३॥ अभिनन्दनः ॥४॥ सुमतिः ॥५॥ पद्मप्रभः ॥६॥ सुपार्श्वः ॥७॥ चन्द्रप्रभः ॥८॥ पुष्पदन्तः ॥९॥ शीतलः ॥१०॥ श्रेयांसः ॥११॥ वासुपूज्यः ॥१२॥ विमलः ॥१३॥ अनन्तः ॥१४॥ धर्मः ॥१५॥

शान्तिः ॥१६॥ कुन्थुः ॥१७॥ अरः ॥१८॥ मल्लिः ॥१९॥ मुनिसुव्रतः ॥२०॥ नमिः ॥२१॥ नेमिः ॥२२॥ पार्श्वनाथः ॥२३॥ महावीरः ॥२४॥ इति वर्तमान-कालसंबन्धिचतुर्विशतितीर्थंकरेभ्यो: नमो नमः ॥

अद्य मे सफलं जन्म, नेत्रे च सफले मम ।
त्वामद्राक्षं यतो देव, हेतुमक्षयसम्पदः ॥१॥
अद्य मे सफलं जन्म, प्रशस्तं सर्वमङ्गलम् ।
संसारार्णवतीर्णाऽहं, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥२॥
अद्य कर्माष्टकज्वालं, विधूतं सकषायकम् ।
दुर्गतेर्विनिवृत्ताऽहं, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥३॥
अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे, शुभाश्चैकादश स्थिताः ।
नष्टानि विघ्नजालानि, जिनेद्र तव दर्शनात् ॥४॥
अद्य मिथ्यान्धकारस्य, हन्ता ज्ञानदिवाकरः ।
उदितो मच्छरीरेऽस्मिन्, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥५॥
अद्याहं सुकृतीभूता, निर्धूताशेषकलमषा ।
भुवनत्रयपूज्याऽहं, जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥६॥

इस प्रकार स्तुति करके दोनों बहिनें चैत्यालय में भगवान् की प्रदक्षिणा देने लगीं।

अभयकुमार तो राजगृह से आये ही इन राजकुमारियों के लिये थे। वह सदा ही राजमहल के द्वार पर दृष्टि रखने का प्रबन्ध किये रहते थे। जब उनको समाचार मिला कि राजमहल से निकल कर दो राजकुमारियाँ उनकी ओर को ही आ रही है, तो वह भी भगवान् के दर्शन करने को शीघ्र तैयार हो गये। राजकुमारियों के दर्शन करते समय वह भी मन्दिर में जा पहुँचे और चैत्यालय के बाहिर के बरामदे में जाकर शास्त्र-स्वाध्याय करने लगे। राज-कुमारियों ने भगवान् के दर्शन करके उनकी तीन परिक्रमा दीं और फिर उनकी दीवारों को देखती हुई बाहिर के कक्ष में स्वाध्याय करते हुए अभयकुमार के पास से निकलीं। उनके समीप आने पर राजकुमार बोले—

"आपको यह चैत्यालय पसंद आया ?"

इस प्रश्न को सुनकर ज्येष्ठा ने कुछ-कुछ लज्जित सी होकर उत्तर दिया—

"भला, इतने सुन्दर चैत्यालय को देखकर किसका मन प्रसन्न न होगा ? यह चैत्यालय आपने ही बनवाया है ?"

अभयकुमार—मकान तो सब यहीं का है। हाँ, वेदी, मूर्ति आदि पूजन का समस्त सामान मैं राजगृह से अपने साथ लाया हूँ।

जेष्ठा—अच्छा आप राजगृह के निवासी हैं ?

चेलना—तो क्या आप प्रतिष्ठित प्रतिमा को बराबर अपने साथ रखते हैं ?

अभयकुमार—ऐसा ही है राजकुमारी !

ज्येष्ठा—तो प्रतिष्ठित प्रतिमा को साथ रखने में तो आपको बड़ी भारी दिक्कत होती होगी ? क्योंकि प्रतिष्ठित प्रतिमा की अनेक मर्यादायें होती हैं, जिनका मार्ग में पालन करना पड़ता है।

अभयकुमार—तो राजकुमारी जी ! यह जीवन उन मर्यादाओं का पालन करने के लिये ही तो है और किसलिये है ?

ज्येष्ठा—आप लोग श्री जिनेन्द्र भगवान् की अत्यन्त भक्ति-भाव से स्तुति एवं उपासना करते है, इसलिये आप धन्य हैं। आप लोगों के समान सच्चा भक्त इस पृथ्वीतल पर दूसरा कोई दिखाई नहीं देता। आपका ज्ञान तथा रूप सभी अप्रतिम है। कृपा कर आप बतलावें कि राजगृह कहाँ है। वह किस देश में है ? वहाँ का राजा कौन है ? और वह किस धर्म का पालन करता है ?"

अभयकुमार—राजकुमारियो ! यदि आपको मेरा परिचय जानने की इच्छा है तो आप सुनें।

"समस्त लोक का मन हरने वाला, लाख योजन चौड़ा, गोल और तीन लोक में शोभायमान जम्बू द्वीप है। वह जम्बू द्वीप कमल के समान सुशोभित है। क्योंकि जिस प्रकार कमल के पत्ते होते हैं, उसी प्रकार जम्बू द्वीप में भरत, हैमवत, हरि, विदेह, रम्यक, हैरण्यवत तथा ऐरावत नाम वाले सात क्षेत्र हैं। जिस प्रकार कमल में पराग होता है उसी प्रकार इस जम्बू द्वीप में नक्षत्ररूपा

पराग मौजूद हैं। जिस प्रकार कमल में कली होती है उसी प्रकार इस जम्बू द्वीप में भी सुमेरु पर्वतरूपी कली बनी हुई है। जिस प्रकार कमल में मृणाल होता है, उसी प्रकार इस जम्बू द्वीप में भी शेषनागरूपी मृणाल लगा हुआ है। जिस प्रकार कमल पर भ्रमर रहते हैं उसी प्रकार इस जम्बू द्वीप में भी मनुष्य-रूपी भ्रमर इसके ऊपर गूंजते रहते हैं। यह जम्बू द्वीप दूध के समान उत्तम निर्मल जल से भरे हुए तालाबों से जीवों को नाना प्रकार के अनेक आनन्द प्रदान करने वाला है। यह जम्बू द्वीप राजा के समान जान पड़ता है। क्योंकि जिस प्रकार राजा अनेक बड़े-बड़े राजाओं से सेवित होता है उसी प्रकार यह द्वीप भी अनेक प्रकार के महीधरों अर्थात् पर्वतों से सेवित है। जिस प्रकार राजा कुलीन वंश का होता है उसी प्रकार यह जम्बू द्वीप भी कुलीन अर्थात् (कु) पृथ्वी में लीन है। जिस प्रकार राजा शुभ स्थिति वाला होता है उसी प्रकार यह जम्बू द्वीप भी अच्छी तरह स्थित है। जिस प्रकार राजा महादेशी अर्थात् बड़े-बड़े देशों का स्वामी होता है, उसी प्रकार यह जम्बू द्वीप भी महादेशी अर्थात् विस्तीर्ण है। जिस प्रकार लोक अलोक का मध्यभाग है, उसी प्रकार यह जम्बू द्वीप भी समस्त द्वीपों तथा तीन लोक के मध्य भाग में है।

"इस जम्बू द्वीप के मध्य में अनेक शोभाओं से शोभित, गले हुए सोने के समान देह वाला, देदीप्यमान, अनेक प्रकार की कान्ति वाला सुमेरु पर्वत है। उस मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में उत्तम धान्यों को उपजाने वाला, मनोहर, अनेक प्रकार की विद्याओं से पूर्ण, सुखों का स्थान भरत क्षेत्र है। यह भरत क्षेत्र साक्षात् धनुष के समान है। जिस प्रकार धनुष में बाण होते हैं उसी प्रकार इसमें गंगा तथा सिन्धु नदी के रूप में दो बाण हैं। यह भरत क्षेत्र अनेक प्रकार के बड़े-बड़े देशों से व्याप्त, पुर तथा ग्रामों से सुशोभित, अनेक मुनियों से पूर्ण, पुण्य की उत्पत्ति का स्थान तथा अत्यन्त शोभायमान है। जिस प्रकार शरीर के मध्य में नाभि होती है उसी प्रकार इस भारतवर्ष के मध्य में मगध नामक एक देश है। उस मगध देश में अनेक ऐसे ग्राम पास-पास बसे हुए हैं, जो धन-धान्य तथा गुणी मनुष्यों से व्याप्त तथा सम्पत्तिमान् हैं।

वहाँ अत्यन्त निर्मल जल से भरे हुए, काले-काले हाथियों से व्याप्त अनेक सरोवर ऐसे दिखलाई देते हैं, मानों स्वयं मेघ ही आकर उनकी सेवा कर रहे हैं। वहाँ के तालाब साक्षात् कृष्ण के समान मालूम होते हैं। जिस प्रकार श्रीकृष्ण कमलाकर—कमला (लक्ष्मी) के आकर (खान) है, उसी प्रकार तालाब भी कमलों के आकर (खान) हैं। उस मगध देश में राजघरों से सुशोभित, अनेक प्रकार की शोभाओं वाला, धन्य-धान्य से पूर्ण, अनेक जनों से व्याप्त राजगृह नामक एक नगर है। वहाँ न तो अज्ञानी पुरुष हैं, न शीलरहित स्त्रियाँ हैं और न निर्धन पुरुषों का निवासस्थान है। वहाँ के पुरुष कुवेर के समान ऋद्धि के धारण करने वाले तथा स्त्रियाँ देवांगनाओं के समान हैं। वहां स्वर्ग के विमानों के समान सुवर्ण के अनेक घर बने हुए हे। वह राजगृह नगर बड़े-बड़े सुवर्णमय कलशों से शोभित है। उसमें अनेक ऐसे ऊँचे-ऊँचे सौध हैं जो अपनी ऊँचाई से आकाश का स्पर्श करने वाले तथा देदीप्यमान हैं। वहाँ की भूमि अनेक प्रकार के फलों से मनुष्यों के चित्त को सदा आनन्दित करती रहती है। उस मगध देश तथा राजगृह नगर के स्वामी महाराज श्रेणिक बिम्बसार हैं। वह प्रजाओं का नीतिपूर्वक पालन किया करते हैं। राजा श्रेणिक जैन धर्म के परम भक्त हैं। अभी उनकी आयु छोटी है, किन्तु तो भी वह अनेक गुणों के भंडार हैं। वह रूप में कामदेव के समान, बल में विष्णु के समान तथा ऐश्वर्य में इन्द्र के समान हैं। हे राजकन्याओ ! हम लोग उन्हीं के नगर के रहने वाले व्यापारी हैं। हमने अपनी छोटी-सी आयु में इस भूमण्डल की चारों दिशाओं की यात्रा की है। हम सभी कलाओं के अच्छे जानकार हैं। भूमण्डल भर में हमने अनेक राजाओं को देखा, किन्तु जैसी जिनेन्द्र की भक्ति, सत्य, गुण, तेज हमने महाराज श्रेणिक में देखा वैसा कहीं नहीं देखा। उनके प्रताप से उनके सभी शत्रु अपने-अपने मनोरम नगरों को छोड़-छोड़ कर वन में रहने लगे। राजा श्रेणिक के जैसा कोषबल भी आज भारत के किसी अन्य राजा के पास नहीं है। उनके समान धर्मात्मा, गुणी तथा प्रतापी इस पृथ्वी पर दूसरा राजा नहीं है। हमको यह सौभाग्य प्राप्त है कि हम उन महाराज

श्रेणिक के कृपापात्र हैं और उनके महल में जब चाहें तब जा सकते हैं।"

युवराज अभयकुमार उन दोनों राजकन्याओं के सामने ज्यों-ज्यों राजा श्रेणिक के रूप तथा गुण की प्रशंसा करते जाते थे त्यों-त्यों उन कन्याओं के ऊपर एक नशा जैसा चढ़ता जाता था। क्रमश: वह राजा श्रेणिक के गुणों को सुनकर अत्यन्त मुग्ध हो गईं। उनके मन में यह इच्छा उठने लगी कि हम किस प्रकार वर रूप में राजा श्रेणिक को प्राप्त करें। वह राजा श्रेणिक के गुणों पर एकदम रीझ गईं। तब अत्यन्त प्रसन्न होकर अत्यन्त सकुचाते हुए ज्येष्ठा बोली—

"श्रेष्ठिवर्य ! किसी महापुरुष के ऐसे लोकोत्तर गुणों का वर्णन हमारे सामने करने से क्या लाभ, जबकि वह हमारे लिये अप्राप्य है। हम पिता के वश में हैं। न जाने हमारे पिता के उन मगधेश के साथ कैसे संबन्ध हों, वरन् हम तो यह सुनती हैं कि हमारे गणतन्त्र तथा मगधराज का आजकल युद्ध होने वाला है। ऐसी स्थिति में ऐसे लोकोत्तर गुणों के धारक पुरुष की इच्छा करना हमारे लिये उस बौने के समान है जो ऊँचे आम के वृक्ष से अपने हाथ से ही फल तोड़ना चाहता हो।"

अभयकुमार—राजकुमारी ! तुमने ऐसी क्या बात कह दी ? मनुष्य सर्वशक्तिमान् है। यदि आपके मन में राजा श्रेणिक को प्राप्त करने की इच्छा है तो मेरे पास ऐसी विद्या है कि मैं आपको तुरन्त ही राजगृह नगर ले चल सकता हूं। आप केवल थोड़ा साहस करके चलने की हां-भर कर दीजिये।

इस पर ज्येष्ठा ने लजाते हुए कहा—"हम तो आपकी बातचीत से उन नरश्रेष्ठ के आधीन हो चुकी हैं। आपके उपाय में सहयोग करने में हमको प्रसन्नता होगी।"

अभयकुमार—"तो आप उठकर इस बायें हाथ के मार्ग में प्रवेश करें। मैं आप को राजगृह नगर में लिये चलता हूं।"

इस समय तक अभयकुमार के मकान से लेकर वैशाली के बाहर गंगा-तट तक सुरंग बनकर तैयार हो चुकी थी। सुरंग का द्वार बायें हाथ की एक कोठरी में खुलता था। ज्येष्ठा तथा चेलना जब उस कमरे में आईं तो वह

सुरंग में अंधकार देख कुछ घबरा सी गई। ज्येष्ठा बड़ी थी और समझदार भी अधिक थी। उसने मनमें सोचा कि मुझे इस मार्ग से जाना उचित नहीं है। वह अभयकुमार से बोली—

"श्रेष्ठिवर्य ! आप चेलना को लेकर तनिक इस सुरंग के मार्ग से आगे बढ़ें। मैं अपना रत्नहार लेती आऊँ, वह मुझे बहुत प्यारा है।"

यह कहकर ज्येष्ठा तो वहां से चली गई, किन्तु अभयकुमार ने चेलना को तुरंत ही अंदर रखी हुई एक छोटी सी डोली में बिठला लिया। वह चारों जन अपनी कोठरी तथा सुरंग के मार्ग को अन्दर से बन्द करके उस डोली को स्वयं ही उठा कर ले चले। क्रमशः वह लोग सुरंग से बाहिर आ गये। यहां अत्यन्त तेज घोड़ों वाले रथ उनके लिये तैयार खड़े थे। वह उन रथों पर बैठकर अत्यन्त तेजी से राजगृह नगर की ओर चले। रथ के थोड़ी दूर आगे बढ़ने पर कुमारी चेलना को अपने माता-पिता की याद सताने लगी और वह रोकर कहने लगी—

"श्रेष्ठिवर्य ! मुझे अपनी माता की याद आ रही है। आप मुझे वापिस वैशाली ले चलें।"

यह सुनकर अभयकुमार बोले—

"राजकुमारी ! अब तो पीछे वापिस लौटना किसी प्रकार संभव नहीं है। क्योंकि तुम्हारे पिता हमारे बिना कहे आने पर रुष्ट होकर हमारे साथ तुमको भी जान से मरवा देंगे। इसलिये तुम मन में थोड़ा धैर्य धारण करो। जब तुम कामदेव के समान सुन्दर राजा श्रेणिक के दर्शन करोगी तो तुम सारे दुःख भूल जाओगी।"

यह सुनकर कुमारी चेलना ने रोना बन्द कर दिया और वह लोग राजगृह की ओर अपनी यात्रा पर चल दिये।

इस समय वैशाली की सेनाएं मगध पर चढ़ी जा रही थीं। वह बड़ी शीघ्रता से गंगातट पर एकत्रित हो रही थीं। इन लोगों के श्रेष्ठिवेष के कारण इनको वणिक् समझ कर इनसे कोई-भी नहीं बोला। क्रमशः यह लोग गंगा नदी को नावों पर पार करके मगध राज्य मे कुशलपूर्वक आ पहुंचे। यहां से

युवराज ने एक शीघ्रगामी दूत द्वारा सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के पास यह समाचार भिजवा दिया कि वे कुमारी चेलना के साथ आ रहे हैं। इस समाचार से सारे राजगृह में बड़ा भारी उत्सव मनाया गया। कुमार का स्वागत करने के लिये सारे नगर को नये सिरे से सजाया गया। सम्राट् स्वयं भी अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर अत्यन्त ऐश्वर्य के साथ उनका स्वागत करने के लिये नगर के बाहिर निकले। अपने बाजों का शब्द सुनते ही कुमार बहुत प्रसन्न हुए। जब उन्होंने सम्राट् को आते देखा तो वह रथ से नीचे उतर कर उनके चरणों में गिर पड़े। सम्राट् ने उनको उठाकर छाती से लगा लिया। कुमारी चेलना को एक अत्यन्त सजी हुई पालकी में बिठला दिया गया। अब इस जुलूस ने अत्यन्त मंथर गति से नगर की ओर बढ़ना आरम्भ किया। नगर के द्वार पर पहुंचने पर सम्राट् को तोपों की सलामी दी गई। यहां जनता का एक बड़ा भारी समूह विद्यमान था। उसने सम्राट् को देखकर उच्च शब्द से विजय घोष किया—"सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

"युवराज अभयकुमार की जय।"

नगर में स्थान-स्थान पर युवराज की आरतियां उतारी गई। अनेक स्थानों पर उनका पान आदि से सत्कार किया गया। अन्त में राजमहल के समीप आने पर जुलूस रोक दिया गया। कुमारी चेलना की पालकी के रनवास के द्वार पर आने पर सम्राट् की माता महारानी इन्द्राणी देवी ने उसका स्वागत किया। फिर वह उसको अत्यन्त सजे हुए विवाह-मण्डप मे ले गई। यहां उनका सम्राट् के साथ विधिपूर्वक विवाह कर दिया गया। विवाह वेदी पर सम्राट् ने घोषणा की कि वह महारानी चेलना को पटरानी पद पर अभिषिक्त करते है।

इस प्रकार युवराज अभयकुमार की चतुरता से सम्राट् को लिच्छवी कुमारी चेलना देवी की प्राप्ति हुई। अब सम्राट् चेलना देवी को एक अत्यन्त उत्तम महल में ठहराकर आनन्दपूर्वक समय व्यतीत करने लगे। रानी चेलना भी सम्राट् को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह उनके संपर्क से शीघ्र ही अपने माता के वियोग-दुःख को भूल गई।

३८

वैशाली तथा मगध की संधि

मध्याह्न का समय है। सूर्यदेव अपनी प्रखर किरणों से संसार को तपा रहे हैं। धूप के मारे गाय-भैंस आदि सभी पशु छाया को खोज-खोज कर उसके नीचे जा बैठे हैं। पक्षी भी इस समय चुग्गे की खोज से हटकर वृक्षों पर विश्राम कर रहे हैं। किन्तु गंगा जी के दोनों तट पर दो प्रबल सेनाएँ इस समय भी आमने-सामने खड़ी हुई हैं। उत्तर की ओर लिच्छवियों की प्रधानता में अष्टकुल की चतुरंगिणी सेनाएं युद्ध के लिये तैयार खड़ी हैं और गंगा के दक्षिणी तट पर प्रतापी मगध-नरेश श्रेणिक बिम्बसार की विजयी सेनाएं नावों को तैयार करके गंगा को पार करने की तैयारी कर रही हैं। इधर लिच्छवी युवक मगध की साम्राज्य-कामना को जड़मूल से उखाड़ देने के लिये कृतसंकल्प हैं, तो उधर मगध-सेनाएं अपने सम्राट् के शत्रुओं के दमन करने के उत्साह में आगे बढ रही हैं। गंगा के दोनों तट पर बड़े-बड़े सैनिक यानों तथा बजड़ों में सैनिक लोग भर-भर कर एक-दूसरे पर आक्रमण करने ही वाले थे कि मगध की सेनाओं ने अपने सम्राट् श्रेणिक बिंबसार तथा महारानी चेलना को आते हुए देखकर जोर से जय-ध्वनि की।

"सम्राट श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

"लिच्छवी कुमारी महारानी चेलना देवी की जय।"

वैशाली की सेनाएं मगध-सैनिकों के इस जयघोष को सुनकर हक्की-बक्की सी रह गई। वह यह सुन चुके थे कि उनके गणपति महाराजा चेटक की सबसे छोटी कन्या कुमारी चेलना अतिशय रूपवती है। वह यह भी सुन चुके थे कि मगधराज उससे विवाह करना चाहते थे, किन्तु राजा चेटक ने उनके जैनी न होने के कारण उनको अपनी कन्या देने से इंकार कर दिया था। फिर उनको यह भी समाचार मिला था कि कुमारी चेलना देवी मध्याह्न के समय अपने

कमरे में सोते-सोते ही गायब हो गईं। इस संबंध में अनेक प्रकार की किंवदन्तियां सुनी जाती थीं। कुछ का कहना था कि उसके रूप पर आसक्त होकर गन्धर्वराज ने उसका अपहरण किया है। कुछ का कहना था कि स्वयं देवराज इन्द्र उसको गुप्त रूप से उसके पलंग समेत उठा कर ले गये हैं। इस प्रकार उस के संबंध में जितने मुंह उतनी बातें सुनने में आती थीं, किंतु आज मगध-सैनिकों के मुख से 'लिच्छवी कुमारी महारानी चेलना देवी की जय' सुनकर उनको पता चल गया कि उनके गणपति की पुत्री अब प्रतापी मगधराज की पटरानी हैं। अतएव अब उनके मन में यह तर्क-वितर्क होने लगा कि क्या उनका मगध के विरुद्ध शस्त्र उठाना उचित होगा। इसी सोच-विचार के कारण उनके ऊपर उठने वाले शस्त्र अपने आप ही नीचे को झुक गये।

इसी समय मगध-सेना की ओर से एक तेज नौका सफेद पताका उड़ाती हुई लिच्छवी सेना की ओर जाती हुई दिखलाई दी। इस नौका को देखकर दोनों सेनाएं अत्यधिक आश्चर्य में पड़ गईं। इस नौका को अपनी ओर आते देखकर लिच्छवियों ने तुरन्त उसको मार्ग दे दिया। उसी समय लिच्छवी सेना के महाबलाधिकृत का युद्धपोत सामने दिखलाई दिया। श्वेत पताका वाली नौका को उनके युद्धपोत पर पहुंचाया गया। उस नौका में पांच मगध सैनिक थे। बज्जी-गणतंत्र के महबलाधिकृत के सामने जाने पर उनमें इस प्रकार वार्तालाप हुआ।

महाबलाधिकृत—आपका श्वेत पताका उड़ाते हुए हमारी सेना में आने का क्या उद्देश्य है ?

एक सैनिक—महोदय, हम मगध की पट्ट राजमहिषी महारानी चेलना देवी का एक संदेश लाये हैं, जिसे हम उनके पिता गणपति महाराज चेटक को ही देना चाहते हैं।

महाबलाधिकृत—अच्छा, आप लोग थोड़ा अपनी नौका पर ठहरें। इसका प्रबंध अभी किया जाता है।

यह कहकर महाबलाधिकृत सुमन स्वयं अपने युद्धपोत से उतरकर गंगा तट पर आये। गणपति राजा चेटक का शिविर पास ही था। महाबलाधिकृत

सुमन ने उनके पास आकर उनसे कहा—

"देव ! मगध सेना से श्वेतपताकाधारी नौका पर कुछ सैनिक आये हैं। वह कहते हैं कि वह मगध की राजमहिषी महारानी चेलना देवी का एक संदेश आपको देना चाहते हैं। मेरी सम्मति में तो उनको यहां बुलवा कर उनका संदेश सुन लेना चाहिये।"

राजा चेटक—किन्तु महाबलाधिकृत ! यह कैसा आश्चर्यदायक समाचार है। बेटी चेलना वैशाली के राजमहल से गायब होकर मगध की राजमहिष किस प्रकार बन गई ?

सुमन—तभी तो मेरी सम्मति है कि उनके संदेश को उन्हें बुलाकर सुन लिया जावे।

राजा—अच्छा, उनको बुलवाओ, किंतु आप महाबलाधिकृत, अभी यहीं रहें !

यह कहकर राजा ने श्वेतपताकाधारी नौका के पाँचों मगध-सैनिकों को अपने पास बुलाने के लिये एक सैनिक भेजा। सैनिक द्वारा यह संदेश पाते ही अपनी नौका से उतरकर पांचों मगध-सैनिक गंगा के तट पर चढ़ गये। उन्होंने राजा चेटक के शिविर में पहुंचकर उनको सैनिक ढंग से अभिवादन किया। तब राजा चेटक बोले—

"आप लोग हमसे क्या कहना चाहते हैं ?"

एक सैनिक—देव ! मगध की राजमहिषी एवं आपकी पुत्री महारानी चेलना देवी ने आपसे हाथ जोड़कर निवेदन किया है कि उनको आपके दर्शनों की बड़ी भारी इच्छा है। यदि आप एक नौका पर बैठकर भागीरथी की मध्य धारा में आ जावें तो महारानी भी अपने पति सम्राट् बिम्बसार के साथ वहां आकर आपके दर्शन करने को तैयार हैं।

इस पर राजा चेटक बोले—

"आप लोग थोड़ी देर तक बगल के डेरे में ठहरें। आपको अभी उत्तर मिलेगा।"

सैनिकों के बगल के तम्बू में चले जाने पर महाबलाधिकृत बोले—

"राजन् ! मेरी सम्मति में तो राजा श्रेणिक बिम्बसार तथा महारानी चेलना देवी से भेंट करना ही उचित होगा।"

राजा—किन्तु, निश्चय से इस भेंट में संधि-प्रस्ताव किया जावेगा। हम तो उस समय ही मगध के साथ युद्ध-घोषणा करने के पक्ष में नहीं थे, किन्तु लिच्छवी युवकों के उत्साह तथा मगध-द्वेष के कारण ही यह युद्ध-घोषणा की गई।

सुमन—तो इसमें हर्ज ही क्या है राजन् ! संधि-प्रस्ताव आवेगा तो संधि भी कर लेंगे। फिर अब तो मगध के साथ की हुई हमारी संधि क्षणिक संधि न होकर स्थायी संधि होगी।

राजा—अच्छा तो मगध-सैनिकों को बुलवा कर उनसे कह दिया जावे कि हम उनका प्रस्ताव स्वीकार करने को तैयार हैं।

इस पर बगल के तम्बू में से मगध-सैनिकों को बुलवा कर राजा चेटक बोले—

"मगध-वीरो ! हम आपका प्रस्ताव स्वीकार करते हैं। आप लोग जाकर समाचार दे दें कि हम अपने बजरे में महाबलाधिकृत को साथ लेकर मध्य भागीरथी में अभी आते हैं।"

राजा चेटक के यह वचन सुनकर पांचों मगध-सैनिक उनको सैनिक अभिवादन कर तुरंत ही वहां से वापिस अपनी नौका में आकर अपनी सेना में चले गये।

इन सैनिकों के चले जाने के बाद दोनों ओर की सेनाएँ अत्यन्त उत्सुकता के साथ भागीरथी के दोनों तटों की ओर देखने लगीं। थोड़ी ही देर में एक बड़े भारी सैनिक बजड़े को मगध-सेना की ओर से तथा दूसरे सैनिक बजड़े को लिच्छवियों की ओर से गंगा जी के मध्य भाग की ओर बढ़ते हुए देखा गया। मगध-के बजड़े के जल में आते ही मगध-सेना ने गगनभेदी स्वर में इस प्रकार उच्च घोष किया—

वैशाली तथा मगध की संधि

"सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय"

"सम्राज्ञी चेलना की जय"

सम्राट् बिम्बसार तथा महारानी अत्यधिक बहुमूल्य वस्त्र पहिने हुए थे। उनके वस्त्रों के ऊपर पड़े हुए उनके विविध प्रकार के रत्नजटित आभूषण इस समय के दृश्य को और भी आकर्षक बना रहे थे। उन दोनों के सिर पर मुकुट शोभा दे रहा था, जिसके रत्नों का प्रकाश सारे बजड़े में पड़ रहा था। वह दोनों बजड़े के ऊपरी भाग में खुले आकाश के नीचे एक रत्नजटित सिंहासन पर बैठे हुए थे। उनके सिर पर छत्र लगा हुआ था और कुछ सैनिक उनको चंवर ढुला रहे थे।

राजा चेटक भी अपने राजसी सम्मान के साथ अपने खुले बजड़े पर बैठे हुए थे। उनके पास महाबलाधिकृत सुमन बैठे हुए थे। क्रमशः दोनों बजड़े दोनों तट से बढ़ते हुए भागीरथी की मध्य धार में आगये। दोनों ओर के सैनिक उनको अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक देख रहे थे। जब दोनों बजड़े एक दूसरे के साथ मिल गये तो दोनों ओर की सेनाओं ने अपने-अपने राजा की फिर जय बोली।

राजा चेटक के नेत्र बड़ी उत्सुकता से अपनी पुत्री को देख रहे थे। यद्यपि उनको चेलना के गुप्त रूप से चले जाने तथा उसके एक अजैन के साथ विवाह करने पर दुःख था, किंतु उसके वर्तमान सौभाग्य से उनको संतोष भी था। उनको देखते ही प्रथम रानी चेलना बोली –

"पिता जी ! मै आपके चरणों में प्रणाम करती हूं।"

चेटक—अखण्ड सौभाग्यवती हो बेटी !

चेलना—मुझे अखण्ड सौभाग्यवती का आशीर्वाद देकर पिता जी फिर आप मेरे सौभाग्य-देवता के साथ युद्ध क्यों कर रहे हैं ? कृपया युद्ध बन्द कर दें। आप जानते हैं कि मगध की सेनाओं को जीतना कोई सुगम कार्य नहीं है। फिर आपके हमारे बीच में कोई ऐसे भारी मतभेद भी तो नहीं है, जिनके लिये युद्ध अनिवार्य हो। अतएव आप इस व्यर्थ के रक्तपात को रोक दें।

राजा चेटक—मैं सेनाओं को अभी पीछे हटने का आदेश देता हूं। आप दोनों अपने बजड़े से उतर कर हमारे बजड़े पर आकर हमारा आशीर्वाद ग्रहण करें।

इस पर चेलना ने अपने पति की ओर देखा। उनको उतरने के लिये तैयार देखकर वह उनका हाथ पकड़कर महाराजा चेटक के बजड़े की ओर बढ़ी। राजा चेटक ने अपने बजड़े पर आगे बढ़कर सम्राट् बिम्बसार तथा रानी चेलना को अपकी छाती से लगा लिया और बोले—

"मैं आप दोनों को आशीर्वाद देता हूं कि आपकी जोड़ी चिरजीवी हो।"

बिम्बसार—मैं आपका आशीर्वाद पाकर अपने को धन्य मानता हूँ।

इसके बाद रानी चेलना अपने पिता की छाती से लगकर उनसे मिल कर रोने लगी। राजा चेटक के नेत्रों में भी उसको देखकर आँसू आ गये। हृदय के उद्गार हल्के होने पर चेलना बोली—

"पिता जी ! मुझे दुःख है कि मैं आपकी जानकारी के विना अपने बाल-चापल्यवश घर से चली आई। मुझे क्षमा कर दीजिये।"

राजा चेटक—बेटी ! जो कुछ हुआ उसका शोक न करो। अब तो तुम इस बात का यत्न करो कि जिससे तुम्हारे पतिदेव को भी जैन धर्म में श्रद्धा हो जावे।

चेलना—पिता जी ! मैं तो इनको जैनी समझ कर ही घर से आई थी, किन्तु यहां आने पर मुझे पता चला कि यह जैन न होकर बौद्ध हैं। तथापि इन्होंने मुझे जैन धर्म का पालन करने की पूरी स्वतंत्रता दी हुई है। यह सदा ही मेरे सुख मे सुख तथा मेरे दुःख में दुःख मानते है।

राजा—बेटी, यह महापुरुष हैं। महापुरुषों का आचरण ऐसा ही हुआ करता है। अच्छा, अब तुम अपने बजड़े पर जाओ।

चेलना—पिता जी ! मेरी पूजनीया माता को मेरी चरणवन्दना कहें।

इसके पश्चात् राजा चेटक ने रानी चेलना तथा सम्राट् बिम्बसार दोनों को फिर हृदय से लगाकर अपने बजड़े पर जाने की अनुमति दी। उनके अपने बजड़े पर आने पर दोनों ओर से खुशी के बाजे बजने लगे और जय-जयकार की ध्वनि होने लगी। दोनों बजड़ों के अपनी-अपनी सेना में चले जाने पर गंगा के दोनों तट की सेनाएं हट गईं और युद्ध बन्द हो गया।

३६

सेनापति जम्बूकुमार

सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार का सभा-भवन खचाखच भरा हुआ था कि सेनापति भद्रसेन ने उनसे निवेदन किया।

भद्रसेन—मैं श्रीमान् से कुछ निवेदन करने की अनुमति चाहता हूं।

सम्राट्—अवश्य कहिये सेनापति जी ! आप क्या कहना चाहते हैं ?

भद्रसेन— देव ! मै अत्यन्त वृद्ध हो गया हूं और पेट का रोग मेरा पीछा नहीं छोड़ रहा है। इसलिये मैं मगध राज्य के प्रधान सेनापति पद से अवकाश ग्रहण करना चाहता हूं।

सम्राट्—आपकी शारीरिक स्थिति का हमको पता है सेनापति ! हमने भी कई बार यह विचार किया कि आपसे अधिक कार्य लेकर हम आपके स्वास्थ्य के साथ कुछ न्याय नहीं कर रहे हैं, किन्तु आपके स्थान पर कोई उपयुक्त व्यक्ति न मिलने से इस विषय को हमने बराबर अभी तक टाला।

भद्रसेन—सम्राट् की इस चिन्ता को मैं पहले से ही समझता था। अतएव उसके संबंध में कुछ आपसे निवेदन करना है देव !

सम्राट्—मैं आपसे वही तो सुनना चाहता हूं।

भद्रसेन—देव ! आज आपके पास दो व्यक्ति ऐसे हैं जो मेरा स्थान ग्रहण करने योग्य हैं। यद्यपि यह दोनों ही नवयुवक हैं, किन्तु उनकी सैन्य-संचालन की योग्यता किसी प्रकार मुझ से कम नहीं है। इनमें एक व्यक्ति तो युवराज अभयकुमार हैं और दूसरे व्यक्ति हैं सेठ अर्हद्दास के पुत्र जम्बूकुमार। उन दोनों ही युवकों ने मेरे निरीक्षण में सैनिक शिक्षा प्राप्त करके सैन्य-संचालन में कुशलता प्राप्त की है। यदि महाराज सहमत हों तो इनमें से किसी को भी आप इस महान् मगध साम्राज्य का सेनापति-पद प्रदान कर सकते हैं।

सम्राट्—आपकी इस विषय में क्या सम्मति है वर्षकार जी !

वर्षकार—आर्य भद्रसेन का कथन यथार्थ है। उनको अब सेनापति-पद से मुक्ति दे देनी चाहिये। यदि युवराज अभयकुमार की अधीनता में श्रेष्ठिपुत्र जम्बूकुमार को प्रधान सेनापति बनाया जावे तो कोई हानि नहीं है।

सम्राट्—अच्छा, भद्रसेन जी ! आपको सेनापति-पद से मुक्ति दी जाती है, आप जम्बूकुमार को हमारे सामने उपस्थित करें।

भद्रसेन—जम्बूकुमार यहां सभा में ही उपस्थित है सम्राट् !

सम्राट् से यह ककर भद्रसेन जी ने जम्बुकुमार की ओर देखा। जम्बूकुमार उनके संकेत को समझ कर अपने स्थान से उठकर सम्राट् के पास आया। वह सम्राट् के चरणों में प्रणाम करके उनके सम्मुख खड़ा हो गया। उसको देखकर सम्राट् कहने लगे—

"क्यों जम्बूकुमार ! तुम मगध जनपद के प्रधान सेनापति-पद के उत्तरदायित्व को वहन कर सकोगे ?"

जम्बूकुमार—सम्राट् की कृपा की सहायता से सभी कुछ किया जा सकता है देव !

सम्राट्—अच्छा, हम तुम को मगध जनपद के प्रधान सेनापति-पद पर नियुक्त करते हैं। तुम को युवराज अभयकुमार के निर्देश में कार्य करना होगा। यह प्रधान सेनापति-पद का खड्ग है। तुम इसको ग्रहण करके इस पद की शपथ लो।

इस पर जम्बूकुमार ने उस तलवार को अभिवादन करके अपने हाथ में लेकर उसका चुम्बन किया। फिर उन्होंने इस प्रकार शपथ ली—

'मैं सेठ अर्हद्दास का पुत्र जम्बूकुमार इस बात की शपथ लेता हूं कि मगध राज्य के प्रधान सेनापति-पद के उत्तरदायित्व का पूर्ण निष्ठा के साथ पालन करूंगा और सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार तथा उनके उत्तराधिकारियों की प्रत्येक आज्ञा का पालन करूंगा।"

इसके पश्चात् सम्राट् ने जम्बूकुमार के वस्त्र पर प्रधान सेनापति का पदक लगा कर उसको राजसभा में प्रधान सेनापति के लिये नियत स्थान प बिठलाया।

इसी समय दौवारिक ने राजसभा में प्रवेश करके कहा—

"सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय हो।"

सम्राट्—क्या है दौवारिक।

दौवारिक—देव! केरल देश के विद्याधर राजा मृगांक का एक दूत सम्राट् की सेवा में उपस्थित होना चाहता है।

सम्राट्—उसे अत्यन्त आदरपूर्वक लिवा लाओ।

सम्राट् के यह कहने पर दौवारिक वापिस चला गया। उसके जाने के थोड़े समय पश्चात् दक्षिण देश की वेषभूषा से भूषित एक अधेड़ व्यक्ति ने सभा में प्रवेश करके कहा—

"मगध सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

राजा—क्यों महाशय! कहिये हमारे संबंधी राजा मृगांक ने हमारे लिये क्या संदेश दिया है। वह कुशलपूर्वक तो हैं।

दूत—देव! विद्याधर राजा मृगांक अपने समस्त परिजनों सहित अत्यन्त कुशलपूर्वक हैं। किन्तु आजकल उनके ऊपर हंसद्वीप (लंका) के राजा रत्नचूल ने आक्रमण किया है। अतएव राजा मृगांक ने आपसे सहायता की याचना की है और आपके नाम यह पत्र दिया है।

यह कहकर दूत ने एक पत्र राजा श्रेणिक के हाथ में दे दिया। पत्र पढ़कर राजा कुछ चिन्ता में पड़ गये। तब महामात्य वर्षकार बोले—

इसमें चिन्ता की क्या बात है देव! आप जम्बूकुमार के सेनापतित्व में सेना को अभियान करने की आज्ञा दें और अपने श्वशुर की सहायता करें।"

सम्राट्—मैं यही सोच रहा था कि जम्बूकुमार को उसकी नियुक्ति के प्रथम दिन ही इतना बड़ा उत्तरदायित्व दिया जावे अथवा नहीं?

वर्षकार—मैं तो इसमें कोई हानि नहीं देखता। फिर इस प्रका जम्बूकुमार को भी अपनी योग्यता दिखलाने का अवसर मिल जावेगा।

इस पर जम्बूकुमार ने उठकर कहा—

"यदि मुझे इस प्रकार अपनी योग्यता दिखलाने का अवसर मिलेगा तो मैं इसमें अपना सौभाग्य समझूंगा।"

सम्राट्—अच्छा यदि तुम्हारी भी यही इच्छा है तो यहां से एक अक्षौहिणी सेना लेकर एक सप्ताह के अन्दर-अन्दर यात्रा आरंभ कर दो।

इस घटना के एक सप्ताह बाद जम्बूकुमार ने मगध सेना को लेकर दक्षिण की यात्रा आरंभ कर दी। जम्बूकुमार ने दक्षिण में जाकर अत्यन्त वीरतापूर्वक शत्रु-सेना का संहार किया। उन्होंने अपने हाथ से आठ सहस्र योद्धाओं का संहार किया। मगध की इस विजय से सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की कीर्ति उस प्रदेश में भी बहुत अधिक बढ़ी। राजा मृगांक ने तो इससे अपने ऊपर इतना अधिक उपकार माना कि उन्होंने अपनी पुत्री बिलासवती का राजा श्रेणिक के साथ वाग्दान कर उनको अनेक प्रकार की वस्तुएँ भेंट में भेजीं।

४०

रानी चेलना का धर्म-संघर्ष

अर्ध रात्रि का समय है। चन्द्रमा अपनी सोलहों कलाओं से आकाश में चमक रहा है। चन्द्रमा का प्रकाश इतना उज्ज्वल है कि बहुत कम तारे उसके प्रकाश में दिखलाई दे रहे हैं। चन्द्रमा का प्रकाश राजगृह नगर के ऊपर पड़ता हुआ ऐसा उत्तम दिखलाई दे रहा है, जैसे समस्त मगध के ऊपर दुग्ध की वर्षा हो रही हो। सारा नगर गहन निद्रा में सोया पड़ा है, किन्तु सम्राट् बिम्बसार के शयनकक्ष से अभी तक भी प्रकाश की एक हल्की सी रेखा दिखलाई दे रही है, जिससे पता चलता है कि सम्राट् अभी तक जग रहे हैं। शयनककक्ष के अन्दर भोग-विलास की पूरी सामग्री उपस्थित है। दीवारों पर सुन्दर-सुन्दर चित्र टंगे हुए हैं। कमरे के ठीक बीचों-बीच एक बहुत बड़े पलंग पर राजा श्रेणिक तथा रानी चेलना लेटे हुए चन्द्रमा की शोभा को देख रहे हैं। रानी कुछ उदास है। राजा उसको हंसाने का बारबार प्रयत्न कर रहे हैं, किन्तु अत्यधिक यत्न करने पर भी वह उसको हंसाने में अभी तक भी सफल नहीं हो सके। अन्त में राजा बोले—

"रानी क्या बात है ? मैं तुमको प्रायः उदास पाता हूँ। आज तो तुम मुझे विशेष रूप से उदास दिखलाई दे रही हो। जब से वैशाली तथा मगध का युद्ध बंद हुआ है, मैं तुमको प्रायः उदास ही पाता हूँ।"

रानी—कुछ ऐसी खास बात तो नहीं है प्राणेश्वर !

राजा—आज मैंने तुहहारे मन की बात पूछने का पूर्ण निश्चय कर लिया है। तुमको मेरे सिर की सौगंध है, जो वास्तविक बात न बतलाओ।

रानी—आप शपथ देते हैं तो बात बतलानी ही पड़ेगी। किन्तु वह ऐसी है राजन् कि वह आपके या मेरे किसी के भी वश की नहीं है।

राजा—तो भी मैं सुनूं तो सही कि क्या बात है।

रानी—अच्छा महाराज ! आपका आग्रह ही है तो सुनिये । वैशाली से मुझे राजगृह लाने को फुसलाते समय युवराज ने यह बतलाया था कि आप जैनी हैं, किन्तु यहां आकर मैं देखती हूँ कि आपका घर परम पवित्र जैन धर्म से रहित है । आपके यहां बौद्ध धर्म की पूरी सत्ता जमी हुई है । मैं प्राय: यही सोचा करती हूं कि पुत्र अभयकुमार ने यह बहुत बुरा किया जो वैशाली में छल से जैन धर्म का वैभव दिखलाकर मुझ भोली-भाली को ठग लिया । माना कि आपका वैभव अलौकिक है, किन्तु जैन धर्म के बिना मुझे वह सब निःसार दिखलाई देता है, क्योंकि यदि संसार में धर्म न होकर धन मिले तो उस धन का न मिलना ही अच्छा । किन्तु यदि धन के बिना धर्म मिले तो वह धर्म समस्त सुखों का मूल है, धर्म के बिना सांसारिक सुख का केन्द्र चक्रवर्तीपना भी किसी काम का नहीं । मैं बारबार यही सोचा करती हूँ कि मैंने पिछले जन्म में कौन सा घोर पाप किया, जो इस जन्म में मुझे जैन धर्म से विमुख होना पड़ा । हाय ! इस प्रकार तो मेरा क्रमशः जैन धर्म से संबंध छूट ही जावेगा । स्त्रियों को कवियों ने इसीलिये अबला कहा है कि वह बिना सोचे-समझे दूसरों की बातों पर विश्वास कर लेती हैं और पीछे पछताती हैं ।

यह कहकर रानी चेलना सुबक-सुबक कर रोने लगी । तब राजा बोले—

"रानी, तुम्हारी इस चिन्ता का समाचार मुझे कई बार मिल चुका है । इसीलिये मैंने यह कठोर आज्ञा प्रचारित कर दी है कि तुम्हारे धर्म-ध्यान एवं धर्माचरण में किसी प्रकार की बाधा न डाली जावे । हां, यह तुम्हारा भ्रम है कि संसार भर का भला जैन धर्म ही कर सकता है । संसार में यदि कोई धर्म है तो वह बौद्ध धर्म ही है । यदि जीवों को सुख मिल सकता है तो बौद्ध धर्म से ही मिल सकता है । भगवान् बुद्ध ही सच्चे देव हैं । वह समस्त ज्ञान एवं विज्ञान को जानते हैं । संसार में उनसे बढ़कर कोई देव उपास्य एवं पूज्य नहीं है । जो लोग अपने आत्मा के हित की आकांक्षा करते हैं उन्हें भगवान् बुद्ध की ही पूजा, भक्ति तथा स्तुति करनी चाहिये । प्रिये ! भगवान्

बुद्ध की कृपा से ही जीवों को वास्तविक धर्म का पता लगकर सब प्रकार के सुखों की प्राप्ति होती है।

राजा के मुख से बुद्ध तथा बौद्ध धर्म की इतनी अधिक प्रशंसा सुनकर रानी ने उत्तर दिया—

"प्राणनाथ ! आप जो बौद्ध धर्म की इतनी प्रशंसा कर रहे हैं सो वह इतनी प्रशंसा के योग्य नहीं है। उससे जीवों का लेशमात्र भी हित नहीं हो सकता । संसार में सर्वोत्तम जैन धर्म ही है। जैन धर्म छोटे-बड़े सब प्रकार के जीवों पर दया करने का उपदेश देता है, जब कि गौतम बुद्ध स्वयं मांसाहार करते हैं। जैनियों के अभी तक के तेईसों तीर्थङ्कर सर्वज्ञ थे। अब चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर भी केवल ज्ञान प्राप्त करके सर्वज्ञ हो जावेंगे और सब जीवों को जन्म, जरा तथा मरण के दुःख से छूटने का उपदेश देंगे।"

राजा—भगवान् महावीर तो तुम्हारे भानजे हैं न रानी !

रानी—भानजे हैं नही, वरन् थे। जब तक वह गृहस्थ में थे वह मेरे भानजे थे और मैं उनकी मौसी थी, किन्तु अब तो वह सभी सांसारिक बंधनों को छोड़कर मुनि-दीक्षा लिये हुए हैं, केवल ज्ञान हो जाने के बाद वह मुझ सहित सारे मुमुक्षु जीवों के गुरु होंगे। जैन धर्म में कर्मफल का दाता कोई यमराज अथवा धर्मराज नहीं माना गया है। वह जैसा कर्म करता है वैसा ही फल पाता है। जैन धर्म में वही यथार्थ उपदेशदाता सच्चा आप्त माना गया है, जो बाह्य तथा आभ्यन्तर सभी प्रकार के परिग्रह का त्याग कर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह रूप पंच महाव्रत का पालन करता हो, जिसको केवल ज्ञान हो चुका हो, जो निर्ग्रन्थ हो, तथा उत्तम क्षमा आदि दश धर्मों को अपने जीवन में चरितार्थ करने वाला हो । प्राणनाथ ! मैंने संक्षेप में जैन धर्म का वर्णन किया है, इसका विस्तारपूर्वक वर्णन तो कुछ समय पश्चात् केवल ज्ञान होने पर भगवान् महावीर स्वामी ही करेंगे। मेरा विश्वास है कि जो जीव इस जैन धर्म से विमुख होकर घृणा करते हैं उनको कदापि भाग्यशाली नहीं कहा जा सकता।

राजा श्रेणिक रानी चेलना के मुख से इस प्रकार जैन धर्म का स्वरूप सुनकर चुप हो गये। उन्होंने रानी से केवल यही कहा—

"रानी ! मैं पहिले ही कह चुका हूं कि तुमको जो कुछ श्रेयस्कर जान पड़े तुम वही करो, किन्तु अपने चित्त में किसी प्रकार का मैल न लाओ। मैं नहीं चाहता कि तुमको किसी प्रकार का दुःख हो।"

महाराज के मुख से ऐसा अनुकूल उत्तर पाकर रानी चेलना अत्यन्त प्रसन्न हो गई। अब वह निर्भय होकर जैन धर्म का पालन करने लगी। उसने अपने महल में ही एक जैन मंदिर बनवा लिया और वहां अत्यन्त भक्ति-भाव से उपासना करने लगी। वह प्रत्येक अष्टमी तथा चतुर्दशी को निर्जल व्रत रखती थी। पर्वों के अवसर पर वह प्रायः रात्रिजागरण भी किया करती थी। जैन शास्त्रों का स्वाध्याय वह प्रतिदिन किया करती थी। उसको इस प्रकार धर्म पर आरूढ देखकर समस्त रनवास उसकी धर्मभावना का प्रशंसक हो गया। रानी चेलना ने कुछ ही दिनों के अंदर समस्त रनवास को जैनी बना लिया।

राजा श्रेणिक बौद्ध मत के श्रद्धालु थे। अतएव राजगृह में कुछ बौद्ध साधु सदा ही बने रहते थे। उनको पता लगा कि रानी जैन धर्म की परम भक्त है और उसने सारे रनवास को जैनी बना लिया है तो राजगृह के प्रधान बौद्ध साधु संजय शीघ्र ही आकर राजा बिम्बसार से मिले। उन्होंने राजा से कहा—

"राजन् ! हमने सुना है कि आपकी रानी चेलना जैन धर्म की परम भक्त है तथा वह बौद्ध धर्म को एक घृणित धर्म मानती है। हमने यह भी सुना है कि वह बौद्ध धर्म को रसातल में पहुंचाने का पूरा प्रयत्न भी कर रही है। यदि यह बात सत्य है तो आप शीघ्र ही उसके प्रतीकार का कोई उपाय सोचें। अन्यथा बड़े भारी अनर्थ की संभावना है।"

बौद्ध गुरु संजय के ऐसे वचन सुनकर महाराज ने उत्तर दिया—

"पूज्यवर ! रानी को मैं बहुत कुछ समझा चुका। उसके ध्यान में एक भी बात नहीं आती। कृपाकर आप ही उसके पास जावें और उसे समझावें। यदि आप इस सम्बन्ध में विलम्ब करेंगे तो स्मरण रखिये कि बौद्ध धर्म की

अब खैर नहीं, क्योंकि निश्चय ही रानी बौद्ध धर्म को जड़ से उखाड़ने के लिये पूरा-पूरा प्रयत्न कर रही हैं।"

सम्राट् के इन वचनों से बौद्ध गुरु संजय को कुछ सांत्वना मिली। वह इस बात से यह सोचने लगे कि—

'चलो राजा तो बौद्ध धर्म का भक्त है।"

वह राजा से बोले—

"राजन् ! आप अपने मन में खेद न करें। हम अभी रानी को जाकर समझाते हैं। हमारे लिये रानी को समझा लेना कुछ कठिन नहीं है।"

बौद्ध साधु संजय राजा से यह कहकर रानी चेलना के पास आये। रानी ने जो उनको आते देखा तो उनको बड़े आदर से आसन देकर बिठलाया और स्वयं उनके सामने बैठ गई। रानी ने उनसे कहा—

"कहिये महाराज, आपने मेरे महल में पधारने का कष्ट कैसे किया ?"

तब संजय बोले—

"रानी ! हमने सुना है कि तू जैन धर्म को परम पवित्र धर्म समझती है और बौद्ध धर्म से घृणा करती है। यदि तेरा सचमुच में ही ऐसा विचार है तो यह उचित नहीं है। तू यह निश्चयपूर्वक समझ ले कि संसार में जीवों का हित करने वाला केवल बौद्ध धर्म ही है। जैन धर्म से जीवों का कल्याण कदापि नहीं हो सकता। देख यह जितनें नंगे साधु हैं वह सब पशु के समान हैं। जिस प्रकार पशु नग्न रहता है उसी प्रकार ये भी नग्न फिरते रहते हैं। पशु जिस प्रकार आहार न मिलने से उपवास करता है उसी प्रकार ये भी आहार के अभाव में उपवास करते हैं। पशु के समान यह विचारशक्ति, ज्ञान तथा विज्ञान से भी रहित होते हैं। यह साधु जैसे इस जन्म में दीन दरिद्री होते हैं उसी प्रकार पर-जन्म में भी इनकी यही दशा रहती है। उन्हें अन्न तथा वस्त्र अगले जन्म में भी नहीं मिलता। वह जिस प्रकार क्षुधा, तृषा आदि का कष्ट इस जन्म में उठाते हैं, उसी प्रकार उनको अगले जन्म में भी उठाना पड़ता है। हे रानी ! यह बात ध्यान देने की है कि क्षेत्र में जैसा बीज बोया जाता है उससे तदनुरूप ही फल उत्पन्न

होता है । जो जैसा कर्म करता है उसको वैसे ही फल की प्राप्ति होती है। हे रानी ! यह बात मत भूल कि यदि तू इन दरिद्र जैन मुनियों की सेवा-शुश्रूषा करेगी तो तुझे भी इनके समान अगले जन्म में दरिद्र एवं भिक्षुक बनना पड़ेगा। इसलिये तू अनेक प्रकार के भोग भोगने वाले एवं वस्त्र आदि से सुखी बौद्ध साधुओं की भक्तिपूर्वक सेवा किया कर। इनको ही अपना हितैषी मान, जिससे परभव में भी तुझे अनेक प्रकार के भोगों की प्राप्ति हो। हे पतिव्रते ! अब तुझे चाहिये कि तू शीघ्र ही अपने मन से जैन मुनियों की भक्ति को निकाल दे। बुद्धिमान् लोग कल्याणकर मार्ग पर ही चला करते हैं, सो सच्चा कल्याण करने वाला मार्ग भगवान् बुद्ध का ही है।"

बौद्ध-गुरु का उपदेश सुनकर रानी चेलना ने उनसे कहा—

"गुरु महाराज ! आपका उपदेश मैंने सुन लिया, किन्तु उसमें मुझे एक भारी शंका है। यदि आज्ञा हो तो कहूं।"

संजय—अवश्य रानी ! तेरी शंकाओं का निवारण करने के लिये ही तो हम तेरे पास आये हैं।

रानी—आप यह बात कैसे जानते हैं कि जैन मुनियों की सेवा करने से परभव में भी कष्ट भोगने पड़ेंगे और दीन-दरिद्री होना पड़ेगा तथा बौद्ध-गुरुओं की सेवा से मनुष्य अगले जन्म में सुख पावेगे।"

रानी के यह वचन सुनकर बौद्ध-गुरु संजय बोले—

"रानी ! तुझे हमारी इस बात में संदेह नहीं करना चाहिये। बुद्ध भगवान् के समान उनके सभी प्रधान शिष्य भी सर्वज्ञ होते हैं। अतएव परभव की बात बतलाना हमारे सामने कोई बड़ी बात नहीं। हम विश्वभर की बातें बतला सकते हैं।"

बौद्ध गुरु के यह वचन सुनकर रानी ने उन पर बहुत श्रद्धा प्रकट करके कहा—

"गुरु महाराज ! यदि आप अखण्ड ज्ञान के धारक सर्वज्ञ हैं तो आप कल मेरे महल में पधार कर मेरे यहाँ भोजन ग्रहण करें। आपको भोजन कराने के

उपरान्त मैं भक्तिपूर्वक आपके मत को ग्रहण करूँगी। आप इस विषय में लेशमात्र भी संदेह न करें।"

रानी के मुख से इन शब्दों को सुनकर बौद्ध साधुओं को अत्यन्त संतोष हुआ और वह रानी से कहने लगे—

"अच्छा रानी! अब हम जाते हैं और कल तेरे यहां भोजन के लिये आकर तुझे बौद्धमत ग्रहण करावेंगे।"

यह कहकर वह अपने अन्य साथियों सहित रानी के महल से चलकर राजा श्रेणिक के पास आये। उन्होंने उनको राजमहल के सारे वार्तालाप का समाचार सुनाया। उसको सुनकर राजा भी बहुत प्रसन्न हुए। अब तो उनको भी पूर्ण विश्वास हो गया कि अब रानी निश्चय से बौद्ध बन जावेगी। वह बौद्ध साधुओं को विदा करके रानी की अनेक प्रकार से प्रशंसा करते हुए रात को उसके पास आये और उससे बोले—

"प्रिये! आज तुम धन्य हो जो तुमने गुरुओं का उपदेश सुनकर बौद्ध धर्म धारण करने की प्रतिज्ञा कर ली। शुभे! इस बात का ध्यान रहे कि बौद्ध-धर्म से बढ़कर मनुष्य का हितकारी संसार में अन्य कोई धर्म नहीं है। कल तुम गुरुओं के लिये उत्तम भोजन तैयार कराना।"

यह कहकर राजा सो गये और रानी चेलना ने अगले दिन बौद्ध गुरुओं के लिये अनेक प्रकार के उत्तम भोजन तैयार कराये। लड्डू, खाजा आदि अनेक प्रकार के मिष्टान्नों के साथ-साथ छहों प्रकार के रसों के उत्तम पदार्थ तैयार कराये गये। राजा श्रेणिक ने गुरुओं के बिठलाने का प्रबंध करके बौद्ध गुरुओं को बुलाने के लिये अत्यन्त विनयपूर्वक निमंत्रण भिजवाया।

राजमहल का निमंत्रण पाकर बौद्ध साधु अपने पात्र, चीवर आदि ठीक करके राजमंदिर की ओर चले। रानी चेलना ने उनको राजमंदिर में प्रवेश करते देखकर उनका बहुत सम्मान किया। बौद्ध गुरुओं के अपने आसन पर बैठ जाने पर रानी ने उनके चरणों का प्रक्षालन किया। उसके पश्चात् उनके सामने सोने-चांदी के थाल रखकर उनमें अनेक प्रकार के लड्डुओं, खीर, श्रीखण्ड,

भात, मूंग के लड्डू आदि स्वादिष्ट पदार्थों को परोस दिया गया। भोजन परसा आने पर रानी ने उनसे भोजन आरंभ करने की प्रार्थना की।

रानी के प्रार्थना करने पर गुरुओं ने भोजन करना आरंभ किया। उन्होंने सभी प्रकार के पदार्थों को खाना आरंभ किया। इधर तो बौद्ध साधु भोजन में लगे हुए थे उधर रानी ने अपनी एक दासी के द्वारा बौद्ध गुरु संजय के बायें पैर के जूते को उठवाकर उसके बहुत छोटे-छोटे टुकड़े करवाये। रानी ने उनको चूने के पानी में औटा कर फिर खट्टी छाछ में डलवा कर उनमें खूब मसाला मिलवा कर उनका रायता बनवा दिया। बाद में उसे भी बौद्ध गुरुओं के सामने थोड़ा-थोड़ा करके परोस दिया गया।

जब भोजन करते-करते साधुओं की तबियत मधुर खाद्य पदार्थों से अकुला गई तो उन्होंने उसको एक अद्भुत चटनी समझ कर सेवन किया। वह छाछ-मिश्रित उन टुकड़ों को खा गये। गुरुओं के भोजन कर चुकने पर रानी ने उनको ताम्बूल, इलायची आदि दिये। इसके पश्चात् वह रानी से कहने लगे—

"रानी ! तेरी प्रार्थना पर हम लोगों ने तेरे राजमहल में आकर भोजन कर लिया। अब तू शीघ्र ही बौद्ध धर्म ग्रहण कर अपने आत्मा को पवित्र बना। अब तुझे जैन धर्म से सम्बन्ध छोड़ देना चाहिये।"

इस पर रानी ने विनयपूर्वक उनसे कहा—

"महाराज ! आपने जो मेरे यहाँ भोजन किया, उसके लिये मैं आपकी आभारी हूँ। आप अपने स्थान पर पधारें। मैं वही आपके पास आकर आपसे बौद्ध-धर्म की श्रद्धा ग्रहण करूँगी।"

रानी चेलना के यह वचन सुनकर बौद्ध साधु अत्यन्त प्रसन्न होकर वहाँ से चल दिये। किन्तु जिस समय वह द्वार पर आये तो अपने पैर के बायें जूते को न पाकर एकदम घबरा गय। प्रथम तो वह एक दूसरे का मुँह देखने लगे, फिर उन्होंने उसे इधर-उधर ढूँढा। किन्तु जब उनको जूता कहीं भी न मिला तो वह फिर वापिस रानी के पास आकर उससे बोले—

"रानी ! हमारे पैर का बांया जूता नहीं मिल रहा। जान पड़ता है कि

उसे हँसी में छिपा दिया गया है। रानी ! गुरुओं के साथ तुमको इस प्रकार की हँसी नहीं करनी चाहिये।"

बौद्ध-गुरुओं के यह वचन सुनकर रानी हँस कर बोली—

"महाराज ! जब आप किसी व्यक्ति के तीनों जन्मों का हाल जानने योग्य ज्ञान के धारक हैं तो क्या आप अपने उस ज्ञान की सहायता से अपने जूते को नहीं खोज सकते ?"

रानी के मुख से इन शब्दों को सुनकर साधु लोग बड़े लज्जित हुए। अंत में उनको यह कहना ही पड़ा कि—

"सुन्दरी ! हमको ऐसा ज्ञान नही है कि हम इस बात को जान लें कि हमारे जूते कहाँ हैं। कृपा कर आप ही हमारे जूते बतलावें।"

बौद्ध-गुरुओं के यह वचन सुनकर रानी को क्रोध हो आया। वह उनसे बोली—

"महापुरुषो ! जब आप जैन-धर्म को जानते तक नहीं, तो आपने उसकी निंदा कैसे की ? बिना समझे बोलने वाले मनुष्य को पागल कहा जाता है। आप लोग गुरुपद के योग्य कदापि नही है। आप लोग भोले-भाले प्राणियों को ठगने वाले, असत्यवादी, मायाचारी एवं पापी हैं।"

रानी के मुख से ऐसे वचन सुनकर बौद्ध-गुरु बगलें झांकने लगे। उनसे कोई भी उत्तर देते न बना। अन्त में वह केवल यही बोले—

"रानी ! आप कृपा कर हमारे जूते दे दें, जिससे हम अपने स्थान को चले जावें।"

बौद्ध-गुरुओं के यह वचन सुनकर रानी बोली—

"महानुभाव ! आपकी चीज आपके ही पास है। आप विश्वास रखें वह किसी दूसरे के पास नहीं है।"

रानी चेलना के यह वचन सुनकर संजय बहुत नाराज़ होकर रानी से बोले—

"रानी ! तू यह क्या कहती है ? हमारी चीज हमारे पास कहाँ है ?

क्या हम उसको खा गये ? तुझको हम साधुओं के साथ इस प्रकार का व्यवहार नहीं करना चाहिये ।"

संजय के इन वचनों को सुनकर रानी बोली —

"गुरुओ ! आप घबरावें नहीं । मैं अब भी कहती हूँ कि आपकी चीज आपके ही पास है । यदि आप नहीं मानते तो मैं उसे आपके पास से निकाल कर दिखला सकती हूँ ।"

रानी के इन वचनों से संजय सहित सभी बौद्ध साधु बड़े चक्कर में पड़े । वह बार-बार यही सोचने लगे कि रानी कहती क्या है ? यह क्या बात हो गई ? अब उनको संदेह होने लगा कि 'क्या उसने हमको जूतों का भोजन करा दिया ।' ऐसा विचार करते-करते उनको क्रोध के साथ-साथ वमन भी हो गया ।

वमन के साथ निकले हुए उन्होंने जूतों के टुकड़ों को भी देखा । अब तो उनके होश गुम हो गये और वह रानी की बार-बार निंदा करने लगे । अब वह रानी द्वारा तिरस्कृत होकर अत्यन्त लज्जित हुए और वहाँ से सीधे सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के पास गये । वहाँ जाकर उन्होंने राजा को अपने अपमान का सारा वृत्तांत सुनाया । वहाँ से वह चुपचाप अपने विहार में आ गये ।

४१

जैन धर्म का परिग्रहण

"प्रिये ! मुझे तुमको यह संवाद देते हुए प्रसन्नता हो रही है कि अब की बार हमारे नगर में कुछ बौद्ध साधुओं का एक संघ आया है। उनमें कई एक साधु अत्यधिक तपस्वी तथा बड़े भारी ज्ञानी हैं। उनके ज्ञान में समस्त संसार झलकता है। उनका ध्यान अत्यन्त उच्च कोटि का होता है। जब कोई उनसे किसी प्रकार का प्रश्न करता है तो वे ध्यान में अतिशय लीन होने के कारण बड़ी कठिनता के उसका उत्तर देते है। ध्यानावस्था में उनका आत्मा एकदम मुक्त हो जाता है। वह अत्यन्त उत्तम धार्मिक तत्त्व के उपदेशक हैं। तप के कारण उनके शरीर से कान्ति जैसी निकलती है।"

राजा के इन शब्दों को सुनकर रानी अत्यन्त प्रसन्न हुई। वह उनसे अत्यन्त विनय से बोली—

"कृपानाथ ! यदि आपके गुरु ऐसे पवित्र और ध्यानी है तो कृपा कर मुझे भी उनके दर्शन कराइये। जिससे ऐसे परम पवित्र महात्माओं के दर्शन से मैं भी अपने जन्म को पवित्र करूँ। आप इस बात पर विश्वास रखें कि यदि मेरी दृष्टि में बौद्ध धर्म की सच्चाई जम गई और वह साधु सच्चे साधु निकले तो मैं तत्काल ही बौद्ध धर्म ग्रहण कर लूँगी। मुझे जैन धर्म से चिपके रहने में कोई विशेष आग्रह नहीं, किन्तु मैं बिना परीक्षा किये किसी दूसरे के कथनमात्र से जैन धर्म का परित्याग नही कर सकती। क्योंकि जो व्यक्ति हेयोपादेय को जाने बिना तथा बिना समझे-बूझे केवल दूसरे के कथनमात्र से अपने मार्ग का परित्याग कर दूसरे के बतलाये हुए मार्ग पर चल पड़ते हैं उनको शक्तिहीन मूर्ख कहा जाता है। ऐसे व्यक्ति अपने आत्मा का कल्याण नहीं कर सकते।"

इसको सुनकर राजा बोले—

"रानी ! तुम्हारा कथन पूर्णतया तर्कसंगत है। मै तुम्हारी इस बात से बहुत प्रसन्न हूँ। अच्छा, आज तुम और हम दोनों जाकर गुरुओं के ध्यानावस्था में दर्शन करेंगे।"

यह कहकर राजा वहाँ से चले गये। उन्होंने साधुओं के पास ध्यान लगाने का संदेश भेजकर रानी को पालकी पर बैठा कर वहाँ जाने को कहला दिया। बौद्ध साधु एक विशेष प्रकार से तैयार किये गये मण्डप में ध्यान लगा कर बैठ गये। जिस समय वह ध्यान में बैठे थे रानी भी उनके दर्शनों के लिये पालकी में बैठकर आ गई। उसने उनसे कुछ प्रश्न भी किये, किन्तु उन्होंने ध्यानमग्न होने के कारण रानी के किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया।

रानी के प्रश्नों को सुनकर उनका एक शिष्य बोला—

"माता ! ये समस्त साधु इस समय ध्यान में लीन है। इनका आत्मा इस समय परम तत्त्व में लीन है। इसलिये यह देहमुक्त होने पर भी सिद्ध है। इसीलिये इन्होंने आपके प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया।"

शिष्य के यह शब्द सुनकर रानी चुप हो गई, किन्तु उसने उसी समय अपनी एक दासी के कान में कुछ कहकर उस मण्डप में आग लगवा दी और एक ओर खड़ी होकर इस दृश्य को देखती हुई कुछ समय बाद अपने राजमंदिर चली आई।

उधर मण्डप में अग्नि लगते ही सब साधु ध्यान छोड़-छोड़ कर मण्डप के नीचे से भाग निकले। जो लोग कुछ समय पूर्व ध्यानारूढ हो निश्चल बठे थे वही अब व्याकुल होकर इधर-उधर दौड़ने लगे। रानी के इस कृत्य से उनको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने राजा श्रेणिक के पास जाकर उनको यह वृत्तांत सुनाया। बौद्ध-गुरुओं के मुख से इस सारे समाचार को सुनकर महाराज को भी बहुत बुरा लगा। अतएव वह अत्यन्त क्रोध में भरकर रानी के पास आये और उससे बोले—

"रानी ! मण्डप में जाकर तूने यह अतिनिन्द्य तथा नीच काम कैसे कर डाला ? यदि तेरी बौद्ध धर्म पर श्रद्धा नही है और तू बौद्ध साधुओं को

ढोंगी समझती है तो तू उनकी भक्ति मत कर। किन्तु मण्डप में आग लगाकर उन विचारों के प्राण लेने का यत्न करना तेरी कौन सी बुद्धिमत्ता थी ? तू जो अपने को जैनी बतला कर जैन धर्म की डींग मारा करती है, सो तेरी वह डींग सर्वथा व्यर्थ मालूम पड़ती है। कहां तो जैन धर्म का दयाप्रधान रूप, जिसमें एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के सभी जीवों की रक्षा की जाती है, और कहां तेरा यह दुष्ट व्यवहार, जो तूने साधु पुरुषों के प्राण लेने का यत्न किया। अपने इस व्यवहार से तूने उस दयामय धर्म का पालन कहाँ किया ? अब तेरा यह कहना कि मैं जैन हूँ, केवल अपलापमात्र ही है। इस दुष्ट कर्म से तुझे कोई जैनी नहीं मान सकता।"

महाराज के इस प्रकार के कठोर शब्द सुनकर रानी चेलना ने उनसे बड़ी विनय तथा शांति से इस प्रकार निवेदन किया—

"कृपानाथ ! आप मुझे क्षमा करें। यदि आपकी अनुमति हो तो मैं आपको एक विचित्र कथानक सुनाना चाहती हूँ। आप कृपया उसे ध्यानपूर्वक सुनें। उसको सुनकर आप यह निश्चय कर सकेंगे कि इस कार्य में मेरा अपराध कितना है।"

रानी के इस वचन को सुनकर राजा बोले—

"अच्छा ! रानी कहो, तुम कौन सा कथानक सुनाना चाहती हो।"

इस पर रानी बोली—

"प्राणनाथ ! इसी जम्बूद्वीप में एक वत्सदेश है, जिसकी राजधानी का नाम कौशांबी है। वह कौशांबी उत्तमोत्तम बाग-बगीचों तथा देवतुल्य मनुष्यों से स्वर्गपुरी की शोभा को धारण करती है। कौशांबी में सागरदत्त नाम का एक सेठ रहता था, जिसकी सेठानी का नाम वसुमती था। उसी कौशांबी में सुभद्र-दत्त नाम का एक अन्य सेठ भी रहता था, जिसकी पत्नी का नाम सागर-दत्ता था।

"उन दोनों सेठों में आपस में बड़ी भारी मित्रता थी। एक बार उन दोनों ने अपनी-अपनी पत्नियों को गर्भवती देखकर आपस में यह निश्चय किया कि यदि दोनों

में से एक के पुत्र तथा दूसरे के पुत्री हो तो दोनों का विवाह कर दिया जावे, जिससे उन दोनों के प्रेम का उनकी सन्तान भी निर्वाह करें। कालान्तर में सेठ सागरदत्त के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम वसुमित्र रखा गया। इस पुत्र का आकार नाग जैसा था। सेठ सुभद्रदत्त के एक कन्या हुई, जिसका नाम नागदत्ता रखा गया। युवावस्था प्राप्त करने पर उन दोनों का आपस में विवाह कर दिया गया। विवाह के पश्चात् दोनों दम्पती आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

एक बार नागदत्ता की माता सागरदत्ता अपनी पुत्री को अनेक प्रकार के आभूषण पहिरे देखकर रोने लगी। पुत्री द्वारा रोने का कारण पूछने पर वह उससे कहने लगी—

"बेटी ! कहा तो तेरा मनोहर रूप, सौभाग्य, उत्तम कुल तथा मनोहर गति और कहां भयंकर शरीर का धारक बिना हाथ-पैर का तेरा पति नाग ? बेटी ! मुझे सदा तेरे इसी अशुभ भाग्य की चिन्ता सताती रहती है।"

माता को इस प्रकार रुदन करती देखकर पुत्री नागदत्ता का चित्त भी पिघल गया। वह उसको सांत्वना देती हुई विनयपूर्वक बोली—

"माता ! तू इस बात के लिये तनिक भी खेद न कर। मेरा पति यद्यपि दिन भर नाग बना रहता है, किन्तु रात्रि होने पर वह प्रथम तो एक सन्दूक मे घुस जाता है और फिर उसमे से निकल कर उत्तम मनुष्याकार बन जाता है। फिर वह रात भर मनुष्य बना हुआ मेरे साथ शयन करता है।"

पुत्री के मुख से इस विचित्र घटना को सुनकर माता सागरदत्ता आश्चर्य करने लगी। तब उसने अपनी पुत्री नागदत्ता से कहा—

"बेटी ! यदि यह बात सत्य है तो तू उस सन्दूक को किसी परिचित स्थान में रखकर मुझे पहिले से बतला देना। तब मैं तेरी बात मानूंगी।"

पुत्री नागदत्ता ने अपनी माता की यह बात स्वीकार कर ली। एक दिन उसने उस सन्दूक को किसी ऐसे स्थान पर रख दिया, जो उसकी माता ने उसे पहिले से बतलाया था। इसके पश्चात् वह अपने मनुष्याकार पति के

साथ अपने प्रकोष्ठ में चली गई। उसके अपने प्रकोष्ठ में जाने पर सागरदत्ता ने उस संदूक को निर्जीव समझकर एकदम जला दिया। तब उसका जामाता वसुमित्र फिर सदा के लिये मनुष्याकार बन गया।

"उसी प्रकार हे दीनबन्धो ! जब मैं बौद्ध-गुरुओं के दर्शन करने गई तो वहां एक ब्रह्मचारी ने मुझ से कहा कि बौद्ध गुरुओं का आत्मा इस समय मोक्ष में है और इनके ये शरीर इस समय निर्जीव पड़े हैं। मैंने सोचा कि यदि ऐसी स्थिति है तो ऐसा यत्न करना चाहिये जिससे बौद्ध-गुरुओं को शारीरिक वेदना फिर सहन न करनी पड़े। यह सोचकर मैंने उनके शरीरों को निर्जीव समझ कर उनमें आग लगवा दी। क्योंकि इस बात को सभी जानते हैं कि जब तक आत्मा का इस शरीर के साथ सम्बन्ध रहता है, तब तक उसे अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं, किन्तु ज्यों ही इसका शरीर से सम्बन्ध छुट जाता है इसका सभी दुःखों से पीछा छुट जाता है। इस प्रकार हे नाथ ! अपने शरीरों के सर्वथा जल जाने से वह समस्त गुरु सिद्ध हो जाते। मैंने तो उनको दुःख से सर्वथा छुड़ाने के लिये ही यत्न किया था। अपनी समझ में मैंने जैन धर्म के सिद्धांत के विरुद्ध कुछ भी कार्य नहीं किया। प्रभो ! अब आप स्वयं विचार कर लें कि इसमें मैंने क्या अपराध किया ?

"सभी बौद्ध गुरु मण्डप में आग लगते ही भागकर बाहिर आ गए। इससे यह सिद्ध है कि उनका वह ध्यान सच्चा ध्यान नहीं था। ध्यान के बहाने से वह भोले जीवों को ठग रहे थे। मोक्ष कोई ऐसी सुलभ वस्तु नहीं जो सब किसी को अनायास ही मिल जावे। मोक्ष प्राप्त करने की जो प्रणाली जैन आगम में बतलाई गई है वही उत्तम और सुखप्रद है। आपको अपने चित्त को शांत करके बौद्ध साधुओं के ढोंग को समझ लेना चाहिये।"

रानी चेलना के इन युक्तिपूर्ण वचनों से राजा श्रेणिक को कुछ भी उत्तर देते न बना। यद्यपि रानी के सामने उनको निरुत्तर होना पड़ा, किंतु अपने गुरुओं का पराभव देख उनके चित्त में अशांति बनी ही रही। उनके मन में बराबर यह विचार बना रहा कि रानी ने बौद्ध-गुरुओं को जलाने का यत्न

करके बड़ा भारी अपराध किया है। उन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि रानी से गुरु-अवमानना का बदला अवश्य लिया जावेगा।

एक दिन सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार एक बड़ी भारी सेना साथ लेकर शिकार खेलने गए। वहां उन्होंने वन में यशोधर नामक एक जैन महामुनि को खड्गासन से ध्यानारूढ पाया। मुनि यशोधर परम ज्ञानी, आत्मस्वरूप के सच्चे वेत्ता तथा परम ध्यानी थे। उनका मन सर्वथा उनके वश में था। मित्र-शत्रुओं पर उनका समभाव था। वह त्रिकालदर्शी तथा समस्त मुनियों में उत्तम थे। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की दृष्टि उन मुनिराज पर पड़ी। उन्होंने इससे पूर्व कभी किसी जैन मुनि को नही देखा था। उन्होंने उनको देखकर अपने एक पार्श्ववर्ती सैनिक से पूछा—

"देखो भाई! स्नान आदि के संस्कार रहित एवं मूण्ड मुंडाए यह कौन व्यक्ति खड़ा है? मुझे शीघ्र कहो।"

पार्श्वचर बौद्ध था। उसने महाराज को इन शब्दों में उत्तर दिया—

"कृपानाथ! आप क्या इसे नहीं जानते? यही महाभिमानी तो महारानी चेलना का गुरु जैन मुनि है।"

महाराज की तो यह इच्छा थी ही कि वह महारानी के गुरु से बदला लें। पार्श्वचर का वचन सुनकर उनकी प्रतिहिंसा की अग्नि प्रज्वलित हो गई। उनको तुरन्त रानी द्वारा किये हुए अपने गुरु के अपमान का स्मरण हो आया। अतएव उन्होने एक क्षण विचार करके अपने साथ आये हुए सभी शिकारी कुत्तों को मुनिराज पर छोड़ दिया।

कुत्ते बड़े भयानक थे। उनकी दाढ़ें बड़ी लम्बी थीं। डीलडौल में भी वे सिंह के समान ऊँचे थे। किन्तु मुनिराज के समीप पहुंचते ही उनकी सारी भयानकता दूर हो गई। ज्यों ही उन्होंने मुनिराज की शान्त मुद्रा देखी, वह मंत्रकीलित सर्प के समान शांत हो गए। वह मुनिराज की प्रदक्षिणा देकर उनके चरण-कमलों में बैठ गए।

सम्राट् इस दृश्य को दूर से देख रहे थे। उन्होंने जो कुत्तों को क्रोधरहित

होकर मुनिराज की प्रदक्षिणा करते देखा तो मारे क्रोध के उनके नेत्र लाल हो गए। वह सोचने लगे कि यह साधु नहीं, वरन् कोई धूर्त, वंचक मन्त्रकारी है। इस दुष्ट ने मेरे बलवान् कुत्तों को मन्त्र द्वारा कील दिया है। मैं अभी इसको दण्ड देता हूँ।

यह विचार करके राजा म्यान से तलवार खींचकर मुनिराज को मारने को चले। महाराज मुनि को मारने चले तो एक अत्यन्त भयानक कृष्ण सर्प फण ऊँचा किये हुए उनके मार्ग में आ गया। राजा ने सर्प को देखते ही जान से मार डाला और फिर उसको अपने धनुष से उठा कर मुनिराज के गले में डाल दिया। मुनिराज गले में सर्प पड़ जाने पर भी अपने ध्यान में वैसे ही निश्चल खड़े रहे।

राजा श्रेणिक अब शिकार का कार्यक्रम स्थगित करके वापिस राजगृह आये। वहाँ उन्होंने अपने गुरुओं को यह सारा समाचार सुना दिया। श्रेणिक द्वारा एक जैन मुनि का अपमान किये जाने से उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई।

लगभग एक प्रहर रात्रि गई होगी। रानी चेलना अपना सामायिक समाप्त कर उठी ही थी कि राजा श्रेणिक अत्यन्त प्रसन्न होते हुए उसके पास आकर बोले—

"रानी! तूने जो मेरे गुरु का अपमान किया था, उसका बदला लेने का मुझे तेरे गुरु से आज अवसर मिला।"

राजा के यह वचन सुनते ही रानी सन्नाटे में आ गई। उसने एकदम घबरा कर पूछा—

"आपने क्या किया महाराज? मुझे शीघ्र बतलाइये? मेरे हृदय की बेचैनी बढ़ती जाती है।"

"कुछ भी नहीं रानी! तेरे गुरु मुनिराज जंगल में खड़े ध्यान कर रहे थे कि मैंने धनुष से उठाकर एक मरा हुआ सर्प उनके गले में डाल दिया।"

राजा के यह वचन सुनते ही मुनि पर घोर उपसर्ग जान कर उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। क्रमशः उसकी हिचकियाँ बँध गईं और

वह फूट-फूट कर रोने लगी। वह रोते-रोते कहने लगी—

"राजन् ! तुमने यह क्या महापाप कर डाला। अब आपका अगला जन्म कभी भी उत्तम नहीं बन सकता। हाय ! अब मेरा जन्म सर्वथा निष्फल है। राजमंदिर में मेरा भोग भोगना भी महापापकर है। हाय ! मेरा सम्बन्ध ऐसे कुमार्गी व्यक्ति के साथ क्यों हुआ ? युवावस्था प्राप्त होने पर मैं मर ही क्यों न गई ? हाय ! अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? कहाँ रहूँ ? हाय! यह मेरा प्राण-पखेरू इस शरीर से क्यों नहीं विदा हो जाता ? प्रभो ! मैं बड़ी अभागिन हूँ। अब मेरा किस प्रकार हित होगा। छोटे से छोटे गाँव, वन अथवा पर्वत में रहना अच्छा, किन्तु जिन-धर्मरहित अति वैभवयुक्त इस राजभवन में रहना ठीक नहीं। हाय दुर्दैव ! तुझे मुझ अभागिन पर ही यह वज्र-प्रहार करना था !"

इस प्रकार रानी बड़ी देर तक बिलख-बिलख कर रोती रही। रानी के इस रुदन से राजा का पत्थर जैसा कठोर हृदय भी पिघल गया। अब उनके मुख से प्रसन्नता तिरोहित हो गई। वह एकदम किंकर्तव्यविमूढ होकर रानी को इस प्रकार समझाने लगे—

"प्रिये ! तू इस बात के लिये तनिक भी शोक न कर। वह मुनि अपने गले से मरे हुए सर्प को फेंक कर कभी के वहाँ से चले गये होंगे। मरे हुए सर्प का गले से निकालना कोई कठिन कार्य नहीं है।"

महाराज के यह वचन सुनकर रानी बोली—

"नाथ ! आपका यह कथन भ्रम पर आधारित है। यदि वह मुनिराज वास्तव में मेरे गुरु हैं तो उन्होंने अपने गले से मृत सर्प कभी भी नहीं निकाला होगा। प्राणनाथ ! अचल सुमेरु भले ही चलायमान हो जावे, समुद्र भले ही अपनी मर्यादा छोड़ दे, किन्तु जैन मुनि के ऊपर जब ध्यान की अवस्था में कोई उपसर्ग आ जाता है तो वह बड़े से बड़े उपसर्ग को भी सहन ही करते हैं, उसका स्वयं निवारण नहीं करते। जैन मुनि पृथ्वी के समान क्षमा-भूषण से विभूषित होते हैं। वे समुद्र के समान गंभीर, वायु के समान निष्परिग्रह, अग्नि के समान कर्म को भस्म करने वाले, आकाश के समान निर्लेप, जल के समान स्वच्छ चित्त

के धारक एवं मेघ के समान परोपकारी होते हैं। प्राणेश्वर ! आप विश्वास रखें कि मेरे गुरु निश्चय से परम ज्ञानी, परम ध्यानी तथा दृढ़ वैरागी होंगे। किन्तु यदि वे इसके विपरीत परीषहों से भय करने वाले, अति परिग्रही, व्रत तप आदि से शून्य, मद्य-मांस एवं मधु के लोभी होंगे तो वह मेरे गुरु नहीं हो सकते। इसीलिये आपके अत्यन्त यत्न करने पर भी जैन धर्म तथा जैन साधुओं में मेरी श्रद्धा कम नहीं हुई। मैं किसी अन्य धर्म पर आक्षेप नहीं करती, किन्तु तथ्य यह है कि जैन मुनि के जैसे पवित्र आचरण और किसी धर्म के साधु के नही होते।"

रानी चेलना के इन शब्दों को सुनकर राजा का हृदय भय के मारे काँप गया। वह और कुछ न कहकर केवल इतना ही कह सके—

"प्रिये ! तूने इस समय जो कुछ कहा है वह बिल्कुल सत्य दिखलाई देता है। यदि तेरे गुरु इतने क्षमाशील हैं तो हम दोनों उनको इसी समय रात्रि में जाकर देखेंगे और उनका उपसर्ग दूर करेंगे। मैं अभी तेज चलने वाली सवारी का प्रबन्ध करता हूँ।"

इस पर रानी बोली—

"नाथ ! अब आपके मुख से फूल झड़े हैं। यदि आप स्वयं न भी जाते तो मैं स्वयं अवश्य जाती। आपने यह बात बिल्कुल मेरे मन की कही। अब आप चलने में शीघ्रता करें।"

यह कहकर रानी चलने की तैयारी करने लगी। राजा ने उसी समय एक तेज घोड़ों वाली गाड़ी तैयार करा कर कुछ थोड़े से सैनिक लेकर वन की ओर प्रयाण आरंभ कर दिया। वह दोनों थोड़ी देर में ही मुनिराज यशोधर के समीप जा पहुँचे।

इधर राजा मुनिराज के गले में सर्प डाल कर गये, उधर मुनि महाराज ने अपने ध्यान को और भी गाढ़ा करके मन में इस प्रकार चिन्तन करना आरम्भ किया—

"इस व्यक्ति ने जो मेरे गले में सर्प डाला है, सो मेरा बड़ा उपकार

किया, क्योंकि इससे मेरे अशुभ कर्म और भी शीघ्रतापूर्वक नष्ट हो जावेंगे। संचित कर्मों की उदीरणा के लिये परीषह सहन करने का अवसर बड़े भाग्य से मिलता है। यह सर्प डालने वाला मेरा बड़ा उपकारी है, जो इसने परीषहों की सामग्री मेरे लिये एकत्रित कर दी। यह शरीर तो मुझ से सर्वथा भिन्न है। यह कर्म से उत्पन्न हुआ है। किन्तु मेरा आत्मा समस्त कर्मों से रहित, पवित्र एवं चैतन्य स्वरूप है। क्लेश तो शरीर को होता है, आत्मा को नहीं। यद्यपि यह शरीर अनित्य, महान् अपावन, मल-मूत्र का घर तथा घृणित है तथापि विद्वान् लोग न जाने क्यों इसे अच्छा समझते हैं। वह इत्र-फुलेल आदि सुगंधित पदार्थों से इसका संस्कार करते हैं। शरीर से आत्मा के निकल जाने पर यह शरीर एक पग भी नहीं चल सकता। इसलिये इस शरीर को अपना समझना निरी मूर्खता है। मनुष्य जो यह कहते हैं कि शरीर में सुख-दुःख आदि होने पर आत्मा सुखी-दुःखी होता है यह बात भी उनकी सर्वथा निर्मूल है। क्योंकि जिस प्रकार छप्पर में आग लगने पर केवल वह छप्पर ही जलता है तदन्तर्गत आकाश रहीं जलता, उसी प्रकार शारीरिक सुख-दुःख मेरे आत्मा को सुखी-दुःखी नहीं बना सकते। मै अपने आत्मा को ध्यान-बल से चैतन्यस्वरूप, शुद्ध, निष्कलंक समझता हूँ। यह शरीर तो जड़, अशुद्ध, अस्थि, मांस तथा चर्ममय, मल-मूत्र आदि का घर तथा अनेक क्लेश देने वाला है। इसको मुझे कभी भी नहीं अपनाना चाहिये।"

मुनिराज यशोधर इस प्रकार की भावनाओं का चिन्तन करते हुए उसी प्रकार सर्प को गले में धारण किये हुए परीषह सहन करते रहे और इधर राजा-रानी उनके दर्शन करने शीघ्रतापूर्वक चले आ रहे थे। उन्होंने जब मुनिराज के समीप आकर उनको ज्यों का त्यों ध्यान में मग्न देखा तो आनन्द तथा श्रद्धा के मारे उनके शरीर में रोमांच हो आया। राजा ने सब से प्रथम मुनिराज के गले से उस सर्प को निकाला। रानी जब से घर से निकली थी मार्ग में चीनी बखेरती जाती थी। यहां तो उसने पर्याप्त बखेरी। चीनी की गंध के कारण मुनिराज के शरीर पर चढ़ी हुई चींटियां उनके शरीर से उतर कर

चीनी पर चली गईं। उन्होंने मुनिराज के शरीर को काट-काट कर खोखला कर दिया था। अतएव रानी ने उनके शरीर को उष्ण जल में भिगोये हुए कोमल वस्त्र से धोया। फिर रानी ने उनकी जलन को कम करने के लिये उनके शरीर पर चन्दन आदि शीतल पदार्थों का लेप किया। इस प्रकार मुनिराज के उपसर्ग को अपने हाथों से दूर करके वे दोनों उनको नमस्कार कर आनन्दपूर्वक उनके सामने भूमि पर बैठ गये। राजा मुनिराज की ध्यान-मुद्रा पर आश्चर्य कर रहे थे। वह उनके दर्शन से बहुत ही संतुष्ट हुए।

मुनिराज रात्रि भर उसी प्रकार ध्यान में लीन खड़े रहे और राजा-रानी जागरण करते हुए उनके सामने उसी प्रकार बैठे रहे। रात्रि समाप्त होने पर जब सूर्य का प्रकाश चारों ओर फैल गया तो रानी ने मुनिराज के चरणों का प्रक्षालन किया। फिर उसने मुनिराज की फिर से तीन प्रदक्षिणा कीं और उनकी पूजा कर इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगी—

"प्रभो! आप समस्त संसार में पूज्य एवं अनेक गुणों के भंडार हैं। आपके गले में सर्प डालने वाले तथा आपको फूलों का हार पहिनाने वाले दोनों ही आपकी दृष्टि में समान हैं। भगवन्! आप इस संसाररूपी समुद्र को पार कर चुके हैं तथा औरों को भी इसके पार उतारने वाले हैं। आप सभी जीवों के कल्याणकारी हैं। करुणासिंधो! अज्ञानवश जो कुछ आपकी अवज्ञा करके हम से आपका अपराध हो गया है उसे आप क्षमा करें। यद्यपि मैं जानती हूँ कि आप राग-द्वेष से रहित तथा किसी का भी अहित न करने वाले हैं, तथापि आपकी अवज्ञा-जनित हमारा अशुभ कार्य हमें संताप दे रहा है। प्रभो! आप मेघ के समान सभी जीवों का उपकार करने वाले, धीर, वीर एवं शुभ भावना वाले हैं।"

रानी के इस प्रकार मुनि की स्तुति कर चुकने पर उनको राजा तथा रानी दोनों ने ही फिर भक्ति-भाव से प्रणाम किया। मुनिराज इस समय तक अपना ध्यान छोड़ कर बैठ गये थे। उन्होंने उन दोनों से कहा—

"आप दोनों की धर्म-वृद्धि हो।"

मुनिराज के मुख से इन शब्दों को सुनकर राजा पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा। वह मन ही मन इस प्रकार विचार करने लगे—

"ओहो ! यह मुनिराज तो वास्तव में बड़े भारी महात्मा हैं। इनके लिये शत्रु और मित्र वास्तव में समान हैं। इनके गले में सर्प डालने वाला मैं तथा उनकी परम भक्त रानी दोनों पर ही इनकी एक सी कृपा है। यह मुनि धन्य हैं, जो गले में सर्प पड़ने के अनेक कष्ट सहन करते हुए भी इन्होंने उत्तम क्षमा को न छोड़ा। हाय ! मैं बड़ा नीच व्यक्ति हूँ, जो मैंने ऐसे परम योगी की अवज्ञा की। संसार में मेरे समान वज्रपापी कोई न होगा। हाय ! अज्ञानवश मैंने यह कैसा अनर्थ कर डाला। अब इस पाप से मेरा छुटकारा कैसे होगा ? अब तो मुझे नियम से नरक आदि घोर दुर्गतियों में जाना होगा। अब मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? इस कमाये हुए पाप का प्रायश्चित्त किस प्रकार करूँ ? अब तो इस पाप को धोने का केवल यही उपाय है कि मैं शस्त्र से स्वयं अपना मस्तक काट कर इन मुनिराज के चरणों में चढ़ा कर अपने समस्त पापों का शमन करूँ।"

राजा श्रेणिक बिम्बसार का इस प्रकार विचार करते हुए लज्जा से मस्तक झुक गया। मारे दुःख के उनके नेत्रों में आँसू आ गये।

मुनिराज बड़े भारी ज्ञानी थे। उन्होंने राजा के मन के समस्त संकल्प-विकल्प को जान लिया। अतएव वह महाराज को सांत्वना देते हुए बोले—

"राजन् ! तुमने जो अपने मन में आत्महत्या का विचार किया है, उससे प्रायश्चित्त न होकर और भी भीषण पाप होगा। आत्महत्या बड़ा भारी पाप है। पाप अथवा कष्ट के कारण जो लोग परभव में सुख मिलने की आशा में आत्महत्या करते हैं उनकी यह भारी भूल है। आत्मघात से कदापि सुख नहीं मिल सकता। इससे परिणाम संक्लेशमय हो जाते हैं। संक्लेशमय परिणामों से अशुभ कर्मों का बंध होता है और अशुभ कर्म के बंध से नरक आदि घोर दुर्गतियों में जाना पड़ता है। राजन् ! यदि तुम अपना हित करना चाहते हो ता तुम इस अशुभ संकल्प को छोड़ दो। यदि तुम्हें प्रायश्चित्त ही करना है तो

अपने आत्मा की निंदा करो। आत्म-हत्या से पापों की शांति नहीं हो सकती।"

मुनिराज के यह वचन सुनकर महाराज को बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। वह महारानी से कहने लगे—

"सुन्दरी! यह क्या बात हुई? मुनिराज ने मेरे मन की बात कैसे जान ली?"

तब रानी ने उत्तर दिया—

"नाथ! यह मुनिराज त्रिकालदर्शी हैं। आपके मन की बात तो क्या, यह आपके अगले-पिछले जन्मों का हाल भी बतला सकते है।"

रानी के यह वचन सुनकर राजा ने मुनि के मुख से धर्म का वास्तविक स्वरूप सुनकर जैन धर्म को धारण किया। उन्होंने उसी समय श्रावक के व्रत धारण किये और रानी सहित मुनिराज के चरणों की वन्दना कर उनके गुणों को स्मरण करते हुए आनन्दपूर्वक अपने घर वापिस आगये।

४२

बिम्बसार का परिवार

क्यों भाई धनदत्त ! यह क्या बात हुई ? राजा श्रेणिक तो गौतम बुद्ध के बड़े भारी भक्त थे, अब वह जैनी कैसे बन गये ?"

धनदत्त—'भाई, कुवेरदत्त ! मुझे भी यही आश्चर्य है। जब गौतम बुद्ध तप की अवस्था में सम्राट् के पास आये थे तो सम्राट् उनको अपना समस्त राजपाट देने को तैयार थे और जब वह बुद्ध बनकर आये तो वह उनके श्रद्धालु बन गये, किन्तु उनकी बौद्ध धर्म की वह समस्त श्रद्धा अब एक-दम जैन धर्म की ओर चली गई। क्यों भाई पुष्पदन्त, तुम्हारा इस विषय में क्या विचार है ?"

पुष्पदन्त—इसमें विचार कैसा ? यह सारी करामात उसी जैन रानी की है, जिसे युवराज अभयकुमार वैशाली से भगा लाये थे।

कुवेरदत्त—महारानी के विषय में ऐसा मत कहो भाई। वह ऐसी गुण-वती है कि सारी प्रजा उस पर अपनी जान तक देने को तैयार है। यद्यपि जनता उसको विदेह कुमारी समझती है, किन्तु वास्तव में वह प्रतापी लिच्छवी कुल में उत्पन्न वैशाली के गणतंत्र के प्रधान राजा चेटक की सबसे छोटी कन्या है।

धनदत्त—इतना ही नहीं। कौशाम्बीपति उदयन, चम्पापति दृढ़वर्मा, नाथ-वंशशिरोमणि भगवान् महावीर जैसे विश्वविख्यात व्यक्ति उसके भानजे हैं।

पुष्पदन्त—किन्तु महारानी चेलना को वैदेही रानी क्यों कहा जाता है ?

धनदत्त—यह तो सीधी सी बात है। वज्जी गणतंत्र के अष्टकुल में मिथिला का विदेह गण भी सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त जिस स्थान पर आज बज्जियों की राजधानी वैशाली बसी हुई है वह कभी पहिले मिथिला राज्य का भाग थी। इसलिये रानी चेलना को वैदेही रानी भी कहा जाता है।

पुष्पदन्त—किन्तु एक बात बड़ी आश्चर्यजनक है। रानी चेलना के सातों राजकुमार एक से एक बढ़कर सुन्दर हैं।

कुबेरदत्त—अजी उनमें सबसे बड़े कुरिणक का चेहरा तो तेज से बेहद दमकता है। सुनते हैं उसका लौकिक नाम अजातशत्रु रखा गया है।

धनदत्त—किन्तु, भाई सुनते हैं कि उस राजकुमार के ग्रह अपने पिता के लिये अच्छे नहीं हैं। जब यह गर्भ में था तो रानी चेलना को यह दौह्रद हुआ था कि वह राजा श्रेणिक को रक्त में लथपथ इस प्रकार देखे कि उसके वक्ष-स्थल से रक्त की अविरल धारा बह रही है।

पुष्पदन्त—उस दौह्रद को किस प्रकार पूर्ण किया गया ?

धनदत्त—उसको इन्द्रजाल विद्या द्वारा पूर्ण किया गया था।

कुबेरदत्त—रानी चेलना के द्वितीय पुत्र वारिषेण के धार्मिक जीवन की भी जनता में बहुत चर्चा है।

पुष्पदन्त—तो क्या उसके तृतीय पुत्र हल्ल तथा चतुर्थ पुत्र विदल्ल कुछ कम धार्मिक हैं ?

धनदत्त—आपकी यह बात ठीक है। रानी चेलना के सभी पुत्र एक से एक बढ़कर धार्मिक ᐧ। उसके पांचवें, छठे, तथा सातवें पुत्र जितशत्रु, गजकुमार तथा मेघकुमार विशेष पराक्रमी हैं।

कुबेरदत्त—अजी तो सम्राट् की कौशल रानी क्षेमा के पुत्र ही गुणों में कौन से कम सुन्दर तथा पराक्रमी हैं ?

धनदत्त—यह बात तुम्हारी ठीक है। बात यह है कि उच्चवंश की विशेषताएं इसी प्रकार प्रकट हुआ करती है।

पुष्पदन्त—तो क्या सम्राट् के महलों से बौद्ध धर्म तथा बौद्ध साधुओं का एकदम बहिष्कार हो गया ?

धनदत्त—नहीं, उनकी कौशल रानी तथा नन्दश्री अभी तक भी बौद्ध हैं। उनके कारण राज्य भवन में बौद्ध साधुओं का गमनागमन होता ही रहता है। किन्तु रानी चेलना तथा सम्राट् की जैन धर्म पर अटल श्रद्धा है, जिससे वहां जैन

मुनियों को प्रायः आहार दान दिया जाता है।

पुष्पदन्त—किन्तु यह आजकल युद्ध की तैयारी कैसी की जा रही है ?

धनदत्त—तैयारी क्या, युद्ध तो संभवतः आरंभ हो गया है।

कुवेरदत्त—यह युद्ध किसके साथ हो रहा है ?

धनदत्त—चम्पा के राजा दृढ़वर्मा के साथ।

कुवेरदत्त—इस युद्ध का कारण क्या है ?

धनदत्त—बात यह है कि दृढ़वर्मा की राजधानी चम्पापुर जैनियों का एक प्रसिद्ध तीर्थस्थान है।

कुवेरदत्त— उसमें जैनियों के तीर्थपने की क्या बात है ?

धनदत्त—वहां जैनियों के बारहवें तीर्थंकर भगवान् वासुपूज्य की निर्वाण भूमि है।

पुष्पदन्त—तो वहां तीर्थ होने के कारण अंग तथा मगध का युद्ध क्यों आरम्भ हो गया।

धनदत्त—बात यह है कि रानी चेलना वहां वासुपूज्य भगवान् के स्मृति-चिह्न बनवाना चाहती थी। किन्तु दृढ़वर्मा ने इसमें न केवल हस्तक्षेप किया, वरन् रानी चेलना के प्रति अत्यन्त अपमानजनक शब्दों का प्रयोग किया।

कुवेरदत्त—किन्तु दृढ़वर्मा तो रानी चेलना का भानजा है। उसने अपनी मौसी के सम्मान का भी ध्यान न रखा ?

धनदत्त—तो इसी का फल उसे चखाने के लिये तो प्रधान सेनापति जम्बूकुमार की अध्यक्षता में मगध सेना ने चम्पापुर पर चढ़ाई की है।

पुष्पदन्त—जैन राजा तो जैन राजा पर चढ़ाई किया नहीं करते। यह युद्ध कैसे आरम्भ हो गया।

धनदत्त—दृढ़वर्मा जैन नहीं वरन् बौद्ध है। उसके माता-पिता जैन थे, किन्तु दृढ़वर्मा निर्वासित जीवन में बौद्ध बन गया था।

कुवेरदत्त—तो उसकी सहायता तो उसके नाना राजा चेटक तथा मौसेरे भाई राजा उदयन कर रहे होंगे।

धनदत्त—मगध-महामात्य ने उनको राजा श्रेणिक के उनके साथ के संबन्ध को पुनः स्मरण करा कर उनको पहिले ही तटस्थ कर दिया है। वास्तव में उनके लिये तो राजा श्रेणिक तथा दृढ़वर्मा दोनों ही उनके सम्बन्धी हैं। फिर जैन होने के कारण राजा श्रेणिक दृढ़वर्मा की अपेक्षा उनके अधिक निकट हैं।

पुष्पदन्त—क्या यह युद्ध अधिक विकट हो सकता है ?

धनदत्त—विकट क्या हो सकता है ? अंग की मगध के मुकाबले शक्ति ही क्या है ? विजयी मगध-सेना का वेग वह एक सप्ताह संभाल ले तो बहुत समझो।

कुबेरदत्त—तो उसने मगध को युद्ध का निमन्त्रण किस बल पर दे दिया ?

धनदत्त—चींटी के जब मरने के दिन आते हैं तो उसके पंख निकल आते हैं।

कुबेरदत्त—क्या इस युद्ध को किसी प्रकार टाला नहीं जा सकता था ?

धनदत्त—सम्राट् अपमान को कडुवे घूंट के समान पी जाते तो इसको सुगमता से टाला जा सकता था।

पुष्पदन्त—अच्छा, आज समझा मैं इस युद्ध के रहस्य को।

चम्पा का पतन

"मुझसे तो यह विलम्ब सहन नहीं होता महामात्य ! आज सात दिन से चम्पा के दुर्ग से हमारे ऊपर तीरों की वर्षा की जा रही है, जैसे वह मगध सेना को गाजर-मूली ही समझते हों।"

"किन्तु इसमें तुम्हारी क्या हानि है सेनापति जम्बूकुमार ? तुमने नौकाओं में बालू भरकर उनकी ओट में अपनी सेना को खड़ा किया हुआ है। मुख्य सेना को तुमने शिविर में रखकर मोर्चे पर केवल इने-गिने सैनिकों से ही काम चलाया हुआ है।"

जम्बूकुमार—इसमें मगध सेना का बड़ा अपमान हो रहा है महामात्य ! लोग कहते हैं कि मगध सेना संसार भर में सबसे प्रबल होने पर भी चम्पा जैसे छोटे से दुर्ग पर किस प्रकार झख मार रही है।

महामात्य—किन्तु दुर्ग का पतन होने पर यह क्या कहेंगे ?

जम्बूकुमार—तब तो उनको यथार्थ बात को मानना ही पड़ेगा। किन्तु इसमें सन्देह नहीं महामात्य ! कि चम्पा का दुर्ग संसार के प्रबलतम दुर्गों में से एक है। उनके पास अन्न-जल की कोई कमी नहीं है। इस प्रकार तो हम एक वर्ष तक भी दुर्ग का घेरा डाले रहेंगे तो भी इस दुर्ग का पतन नहीं होगा।

अभयकुमार—किन्तु आपने यह भी पता लगाया कि इस दुर्ग को कौशाम्बी-नरेश ने जीत कर दधिवाहन को किस प्रकार मार डाला था ?

महामात्य—उस युद्ध में कौशाम्बी नरेश को दो कारणों से सफलता मिली थी। एक तो उन्होंने प्रकट युद्ध की अपेक्षा कूट युद्ध का आश्रय अधिक लिया था, दूसरे उस समय इस दुर्ग की भी इतनी अच्छी दशा नहीं थी। महाराज दधिवाहन समझते थे कि उनको कभी भी कोई युद्ध करना नहीं पड़ेगा। अतएव उन्होंने दुर्ग को अनेक स्थानों में अरक्षित छोड़ा हुआ था, किन्तु दृढ़वर्मा ने अपने पिता के सिंहासन पर न बैठकर निर्वासित जीवन व्यतीत करके राज्य

प्राप्त किया है, इसलिये उसके सामने यह स्पष्ट था कि उसका राजमुकुट कांटों का ऐसा ताज है। जिसकी बड़े यत्न से रक्षा करनी होगी। इसी कारण उसने राज्य प्राप्त करते ही प्रथम चम्पा दुर्ग की मरम्मत करा कर उसे सर्वथा अजेय बना दिया और पीछे राज्य की अन्य आवश्यकताओं पर ध्यान दिया। किन्तु चम्पा दुर्ग की प्राचीर की नीवें कहीं भी पांच गज से अधिक गहरी नहीं हैं। उसके चारों ओर बहने वाली जल की खाई तो नीव से भी ऊपर है।

जम्बूकुमार—आपने दुर्ग की प्राचीर के ऐसे गुप्त भेदों का किस प्रकार पता लगा लिया महामात्य ?

महामात्य—इसी प्रकार के भेदों का पता लगाने के लिये तो सेनापति, मैं आपकी सेना के पीछे-पीछे राजगृह से चल कर यहां आया हूं।

जम्बूकुमार—तो आप हमको दुर्ग पर खुला आक्रमण क्यों नहीं करने देते ?

महामात्य—इसका कारण युवराज अभयकुमार हैं।

जम्बूकुमार—क्या मैं युवराज महोदय से इस विषय में कुछ अधिक जान सकता हूं ?

अभयकुमार—बात यह है कि राजा को अपनी प्रजा का भी पूर्ण ध्यान रखना पड़ता है। मेरा यत्न यह है कि हमें कम से कम सैनिक मरवा कर चम्पा का दुर्ग मिल जावे।

जम्बूकुमार—तो क्या आपकी कोई ऐसी योजना है ?

अभयकुमार—इस विषय में महामात्य आपको बतलावेंगे।

महामात्य—अभी तक हम लगभग दो सहस्र मगध सैनिकों को विभिन्न प्रकार के वेष में चम्पा पुरी में भेज चुके हैं। वह राज्य के प्रत्येक क्षेत्र में भिन्न-भिन्न प्रकार का उद्योग अपना कर घुसे हुए हैं। उनमें से कुछ तो राज्य के शस्त्र-निर्माण विभाग में भी घुस चुके हैं।

जम्बूकुमार—किन्तु इतने सैनिक तो अन्दर पहुंच कर बहुत कुछ कर सकते हैं।

महामात्य—फिर भी उनको बाहिरी सहायता की आवश्यकता है।

जम्बूकुमार—वह सहायता आप उनको किस प्रकार पहुंचावेंगे महामात्य ?

महामात्य—मैंने दुर्ग के प्राचीर की सब प्रकार से भूमिगत परीक्षा करवा

कर उसके अनेक गुप्त मार्गों का पता लगा लिया है।

इस पर जम्बूकुमार बहुत ही प्रसन्न हो गया और बोला—

"अच्छा, महामात्य ! तब तो आप हमारी सारी सेना से भी अधिक कार्य अब तक कर चुके हैं।

महामात्य—इसलिये हम चम्पा दुर्ग पर कल प्रातःकाल रक्त की एक भी बूंद बहाये विना अधिकार कर लेंगे।

जम्बूकुमार—तब तो कल दुर्ग पर अधिकार करना अत्यन्त सुगम है। आप कल के लिये सब को काम बांट दें।

महामात्य—दुर्ग में तीन गुप्त मार्ग हैं, जिनमें से एक राजसभा में, दूसरा अन्तःपुर में तथा तीसरा प्रधान द्वार पर खुलता है। युवराज दो सहस्र सैनिक लेकर आज रात को तीसरे पहर के आरंभ में अन्तःपुर के गुप्त मार्ग से प्रवेश करेंगे। शेष दोनों मार्गों में एक-एक सहस्र सैनिक प्रवेश करके अपने-अपने स्थान पर गुप्त मार्ग के अन्दर रहते हुए संकेत शब्द की प्रतीक्षा करेंगे। जब युवराज दृढ़वर्मा को बंदी बना लेंगे तो एक तुरही का शब्द करने की व्यवस्था करेंगे। इस शब्द के सुनते ही गुप्तवेषी दो सहस्र सैनिकों का नायक अश्वजित् प्रधान द्वार को खोल देगा तथा शेष दोनों मार्गों के सैनिक भी अपने-अपने सुरंग मार्ग से निकल कर राजसभा तथा दुर्ग द्वार पर अधिकार कर लेंगे। प्रधान द्वार के खुलते ही तुम अपनी सेना लेकर एकदम नगर के अन्दर घुसकर सारे नगर पर अधिकार कर लेना।

जम्बूकुमार—यह तो आपकी बड़ी सुन्दर योजना है महामात्य ! तब तो हम लोग प्राचीर पर आक्रमण करने के लिये व्यर्थ ही घबरा रहे थे।

महामात्य—अच्छा, अब आप लोग थोड़ा विश्राम कर लें।

जम्बूकुमार—हां, अब तो यही उचित होगा।

यह कहकर जम्बूकुमार, अभयकुमार तथा महामात्य वर्षकार तीनों ही अपने-अपने शिविर में चले गये।

इस समय लगभग एक पहर रात्रि गई थी। एक पहर रात्रि और व्यतीत होने पर चार सहस्र सैनिकों ने प्राचीर के गुप्त मार्गों के द्वारा दुर्ग में प्रवेश

करना आरंभ किया। एक मार्ग से युवराज अभयकुमार दो सहस्र सैनिकों को लेकर स्वयं अन्तःपुर की ओर चले। एक अन्य मार्ग द्वारा एक सहस्र सैनिक राज सभा की ओर तथा तीसरे गुप्त मार्ग द्वारा एक सहस्र सैनिक प्रधान द्वार की ओर चले। चम्पापुरी में रहने वाले दो सहस्र मगध सैनिक भी अस्त्र-शस्त्रों से लैस होकर अपने को छिपाते हुए मुख्य-मुख्य नाकों पर लग गये। प्रधान सेनापति जम्बूकुमार अपनी समस्त सेना को तैयार करके मुख्य द्वार से कुछ दूरी पर खड़ा हुआ उसके खुलने की प्रतीक्षा करता रहा।

युवराज तो भूमिगत मार्गों के विशेषज्ञ थे ही, उन्होंने उस सारे मार्ग को लगभग आधे पहर में पार कर लिया। जिस समय वह अन्तःपुर में अपने सैनिकों के साथ पहुँचे तो दृढ़वर्मा वहां गहन निद्रा में सोया हुआ था। उन्होंने फुर्ती से दृढ़वर्मा को गिरफ्तार करके अन्तःपुर के सभी द्वारों पर अपने प्रहरियों को नियुक्त कर दिया। दृढ़वर्मा ने जब अपने को बेबस पाया तो उसने तुरंत ही अपनी अंगूठी में लगी हुई हीराकनी को चाट कर आत्महत्या कर ली।

उसी समय युवराज अभयकुमार ने तुरही बजवाई। उसका शब्द सुनते ही मगध सैनिकों ने प्रधान द्वार के पास सुरंग में से निकल कर उसे खोल दिया। उस समय प्रधान द्वार पर कुल पांच-छः सैनिक थे। उनको सुगमता से वश में कर लिया गया।

प्रधान द्वार के खुलते ही प्रधान सेनापति जम्बूकुमार ने मगध-सेना के साथ तुरन्त ही उसमें प्रवेश किया। अब तो सारे नगर पर अधिकार करके दृढ़वर्मा की समस्त सेना को बंदी बना लिया गया। युवराज अभयकुमार ने समस्त मगध सेना में यह कठोर आज्ञा प्रचारित कर दी थी कि नगर में किसी प्रकार की लूटपाट न की जावे।

इस प्रकार अत्यन्त शान्तिपूर्वक अंग देश पर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार का अधिकार हो गया। जिन बंदी सैनिकों ने सम्राट् के प्रति भक्ति की शपथ लेने का विचार प्रकट किया उनको मगध-सेना में भर्ती कर लिया गया।

इस प्रकार अंग देश का युद्ध समाप्त हो गया और रानी चेलना ने वहां श्री वासुपूज्य भगवान् की निर्वाण भूमि पर उनकी चरण-पादुकाएँ स्थापित कराईं।

४४

भगवान् महावीर स्वामी को केवल ज्ञान

अपराह्न का समय है। वैशाख शुक्लपक्ष की दशमी का दिन होने के कारण धूप में पर्याप्त उष्णता आ गई है। फिर भी ज्येष्ठ मास के जैसी तेजी नहीं आई है। वन एकदम शान्त है। उसमें पास के जृम्भक नामक गांव के कुछ थोड़े से पशु चरते हुए दिखलाई दे रहे हैं। पक्षी अपने-अपने बच्चों को घोंसलों में छोड़ कर आहार की खोज में यत्र-तत्र गए हुए हैं। ऋजुकूला नदी के जल पर पड़ती हुई सूर्य की किरणें उसके जल की नीलिमा को और भी अधिक चमका रही हैं। नदी के तट पर वन अत्यंत सघन है। उसमें बड़, पीपल, जामुन, पिलखन, शाल आदि के अनेक प्रकार के वृक्ष हैं, जिन पर अनेक प्रकार के पक्षी मीठा शब्द कर रहे हैं। नदी के तट पर शाल वृक्ष के नीचे पड़ी हुई एक शिला ऐसी सुन्दर दिखलाई दे रही है कि उसने एक प्रकार से नदी का घाट जैसा बनाया हुआ है। शिला लगभग अढ़ाई गज लम्बी तथा दो गज चौड़ी है। वह सफेद पत्थर की बनी हुई और एकदम समतल है। शिला के ऊपर एक महापुरुष पद्मासन से विराजमान हैं। उनके शरीर पर कोई भी वस्त्र नहीं है। उनका शरीर तप के कारण अत्यंत दुर्बल हो गया है। आज भी वह दो दिन के उपवास से हैं। उनके नेत्र आधे मुंदे तथा आधे खुले हुए हैं। उनकी दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर लगी हुई है। वह एकदम ध्यान में लीन हैं। इस समय वह अपने आत्मा के द्वारा अपने आत्मा का साक्षात्कार कर रहे हैं। यह महापुरुष भगवान् महावीर स्वामी हैं।

उस समय शीतल मन्द सुगन्ध पवन चल रही थी। वृक्षों में नई कोंपलें निकल रही थीं, फूल फूल रहे थे और बसन्त ऋतु की शोभा सारे वन में छा रही थी कि अचानक एक ओर से घुंघरू का शब्द आया। क्रमशः भगवान् के सन्मुख अनेक सुन्दर देवाङ्गनाएं आईं। उन्होंने भगवान् के सम्मुख डटकर

अपने कोयल जैसे कण्ठ से अनेक प्रकार के रागों का गाना प्रारम्भ किया। उनका प्रत्येक गीत कामोत्तेजक भावों को प्रकट करता था। साथ ही वह अनेक प्रकार की काम-चेष्टाएं करके भगवान् को लुभाने के लिये हाव-भाव प्रकट कर रही थीं। उनके पास अनेक प्रकार के वाद्य भी थे, जिनको वह स्वयं ही बजा रही थीं। उनको गाते-गाते बहुत समय व्यतीत हो गया, किन्तु भगवान् अपने ध्यान से टस से मस न हुए। जब वह अप्सराएं भगवान् को अपने संगीत से वश में न कर सकीं तो उनमें से कुछ ने अपने वस्त्रों को एक दम फेंक कर अपने शरीर को भगवान् के शरीर से रगड़ना प्रारम्भ किया। किन्तु भगवान् के ध्यान को वह तब भी भंग न कर सकीं। भगवान् ने कामदेव अथवा मार के इस भीषण आक्रमण को अत्यंत शांति से सहन किया। मार जब उनको अनेक प्रकार के सांसारिक भोगों के प्रलोभनों से वश में न कर सका तो अपनी उन सभी अप्सराओं को लेकर लज्जित होकर वहां से स्वयं ही भाग गया। भगवान् ने इस समय अपने ध्यान के प्रकर्ष से अपने आत्मा के अन्दर ऐसी भीषण अग्नि प्रज्वलित की, जिसमें उनके सभी घातिया कर्म नष्ट हो गए और उनको तीन लोक को हस्तामलकवत् प्रकाशित करने वाले केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। भगवान् को केवल ज्ञान होते समय उस सारे बन में एक बिजली जैसी चमक गई, जिससे जृम्भक गांव सहित ऋजुकूला नदी भी प्रकाशित हो गई।

केवल ज्ञान होने के उपरांत भगवान् कुछ देर तक तो ध्यानावस्था में रहे, किन्तु कुछ देर बाद उन्होंने ध्यान खोल दिया। उन्होंने जीवन में सब से अधिक मूल्यवान् वस्तु को प्राप्त कर लिया। उनके ज्ञान में भूत, भविष्य तथा वर्तमान की अनन्त पर्यायें एक साथ झलकने लगीं। उनका मुख इस प्रकार दमकने लगा, जैसे अनेक सूर्य एक स्थान पर एकत्रित होकर चमकते हों। उनके पांव भट्टी में तपाये गए पीतल के समान चमकदार हो गए। उनके नेत्रों से अग्नि-ज्वाला जैसी ज्योति निकलने लगी।

केवल ज्ञान होने पर देवताओं ने उनके समवशरण अथवा धर्मसभा

की रचना की, जिसमें मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका, देव, दानव तथा पशु-पक्षी सब अपने-अपने स्थान पर बैठकर उनका उपदेश सुनने लगे। भगवान् महावीर अहिंसा के साक्षात् अवतार थे। अतएव उनके समवशरण में आकर कोई भी व्यक्ति आपस में द्वेष-भाव नहीं करता था। सिंह और बकरी एक स्थान पर बैठकर उनका उपदेश सुनते थे। वह अर्द्धमागधी भाषा में उपदेश देते थे, किन्तु केवल ज्ञान होने पर कोई गणधर न होने के कारण वह उपदेश न दे सके।

उन दिनों राजगृह में सुमति नामक ब्राह्मण के पुत्र गौतमगोत्री इन्द्रभूति नामक एक बड़े भारी विद्वान् रहते थे। वह पांच सौ शिष्यों को छहों अङ्गों सहित चारों वेदों की शिक्षा दिया करते थे। उनके पास एक ब्राह्मणवेषी विद्यार्थी आकर इस प्रकार बोला—

"महाराज ! मेरे पूज्य गुरु भगवान् महावीर स्वामी ने मुझे एक श्लोक बतलाया है, किन्तु उसका अर्थ बतलाने के पूर्व वह अपने शुक्ल ध्यान में आरूढ़ हो गए। मैं अनेक स्थानों में इस श्लोक का अर्थ पूछने गया, किन्तु मुझे कोई भी न बतला सका। मैंने सुना है कि आपके समान इस संसार में कोई विद्वान् नहीं है। क्या आप कृपा कर मुझे इस श्लोक का अर्थ बतलावेंगे ?"

इन्द्रभूति—अच्छा वत्स ! कहो, वह कौन सा श्लोक है ?

विद्यार्थी—देव, श्लोक यह है—

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं सकलगणितगणाः सत्पदार्था नवैव,
विश्वं पञ्चास्तिकायव्रतसमितिविदः सप्ततत्त्वानि धर्मः।
सिद्धं मार्गस्वरूपं विधिजनितफलजीवषट्कायलेश्या,
एतान्यः श्रद्दधाति जिनवचनरतो मुक्तिगामी स भव्यः॥

विद्यार्थी के मुख से इस श्लोक को सुनकर इन्द्रभूति असमंजस में पड़ गये। यद्यपि वे वैदिक साहित्य के धुरंधर विद्वान् थे, किन्तु जैन सिद्धान्त का उन को लेशमात्र भी ज्ञान नहीं था। छः द्रव्य, पञ्चास्तिकाय, नव पदार्थ, सात तत्त्व,

छः काय के जीव तथा छः लेश्याएं उनके लिये पहेलियां थीं। बहुत कुछ सोच-विचार के पश्चात् वह ब्राह्मण-विद्यार्थी से बोले—

"यह कैसा अनर्गल श्लोक है। चल इसके सम्बन्ध में मैं तेरे गुरु से ही वार्तालाप करूंगा।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

यह कहकर ब्राह्मण-विद्यार्थी उनके उठने की प्रतीक्षा करने लगा।

इन्द्रभूति अपने अग्निभूति तथा वायुभूति नामक दो लघुभ्राताओं तथा पांचसौ शिष्यों सहित भगवान् महावीर के समवशरण की ओर चले। भगवान् के समीप पहुंच कर जो उन्होंने उनकी परमवीतराग मुद्रा को देखा तो उनका हृदय स्वयं ही नम्रीभूत हो गया। वह उनकी योगावस्था की आत्मविभूति को देखकर ऐसे प्रभावित हुए कि उन्होंने उनको साष्टांग प्रणाम कर उनसे निवेदन किया—

"भगवन्! मैं आपसे इस श्लोक का अर्थ जानना चाहता हूं।"

इस पर भगवान् बोले—

"वत्स! इस संसार में जितनी भी वस्तुएं हैं वे या तो सजीव हैं या निर्जीव हैं। जीव अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य सहित है, किन्तु यह अनादि काल से कर्म के बन्धन में पड़ा हुआ अपने को भूला हुआ है। यदि यह अपने स्वरूप को ठीक-ठीक पहचान कर ज्ञानपूर्वक तप करे तो यह इसी जन्म में समस्त कर्मों को नष्ट करके अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य को प्राप्त कर सकता है। यह जीवतत्त्व का वर्णन है।

इन्द्रभूति—भगवन्! जीवतत्त्व के अतिरिक्त अजीवतत्त्व कौन से हैं?

भगवान्—अजीवतत्त्व पांच हैं—

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। यही छः द्रव्य हैं।

जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण पाये जावें उसे पुद्गल कहते हैं। संसार के सभी दृश्य पदार्थ इसी पुद्गल के बने हुए हैं। प्राणियों का शरीर भी पुद्गल का ही बना हुआ है। इस जीव को शुभ और अशुभ कर्मों का फल देने वाली कर्मवर्गणाएं भी पुद्गल की ही बनी होती हैं।

इन्द्रभूति—तो भगवन् ! जब कर्म फल देने वाला द्रव्य भी पुद्गल है तो आपने धर्म तथा अधर्म को पृथक् द्रव्य क्यों कहा ?

भगवान्—यह धर्म तथा अधर्म द्रव्य पुण्य तथा पाप रूप न होकर दो अन्य ऐसे सूक्ष्म पदार्थ हैं, जिनको किसी सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा भी नहीं देखा जा सकता। यह दोनों द्रव्य समस्त लोकाकाश में व्याप्त हैं। धर्म द्रव्य जीव तथा पुद्गल को गमन करने में उसी प्रकार सहायता करता है, जिस प्रकार मछली की सहायता जल करता है। किन्तु जिस प्रकार जल मछली को चलने की प्रेरणा नहीं करता, उसी प्रकार धर्म द्रव्य भी जीव तथा पुद्गल को चलने के लिये प्रेरणा नहीं करता। प्रकाश की किरणें सूर्य से होकर इस पृथ्वी पर धर्म द्रव्य के माध्यम से ही आती हैं। जिस प्रकार धर्म द्रव्य जीव तथा पुद्गल के गमन में माध्यम बन कर सहायता करता है, उसी प्रकार अधर्म द्रव्य उन दोनों की ठहरने में सहायता करता है। इस विषय में ग्रीष्मकाल में किसी छायादार वृक्ष का उदाहरण लिया जा सकता है। चलने वाला पथिक यदि छाया में ठहरता है तो वह छाया उसको सहायता देती है, किन्तु यदि वह ठहरना नहीं चाहता तो वह उसको ठहरने की प्रेरणा भी नहीं करती।

इन्द्रभूति—आकाश तथा काल द्रव्य किस को कहते हैं भगवन् ?

भगवान्—जो सब द्रव्यों को रहने का स्थान दे उसे आकाश द्रव्य कहा जाता है। वस्तु का पर्याय बदलना काल द्रव्य का काम है। काल द्रव्य के कारण ही एक नई वस्तु कुछ समय पश्चात् पुरानी हो जाती है, किन्तु काल का यह निश्चय रूप है। उसका व्यवहार रूप पल, घड़ी, प्रहर, अहोरात्र, सप्ताह, मास, वर्ष आदि समय है। इन छहों द्रव्यों के प्रदेश संयुक्त होते हैं, किन्तु काल द्रव्य के अणु रत्नों के ढेर के रत्नों के समान पृथक्-पृथक् होते हैं। इसीलिये काल द्रव्य के अतिरिक्त शेष पांच द्रव्यों को अस्तिकाय कहा जाता है। इन छहों द्रव्यों के संक्षेप में जीव तथा अजीव यह दो भेद भी किये जा सकते हैं।

इन्द्रभूति—सात तत्त्व कौन से होते हैं ?

भगवान्—जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष ये सात तत्त्व होते हैं। जीव तथा अजीव का स्वरूप तुम को बतला दिया गया। शरीर में कर्म-वर्गणाओं के आने को आश्रव तथा कर्मों के जीव में बंध जाने को बंध कहते हैं। किन्तु जब जीव कर्मों को नष्ट करने के लिये यत्नशील होता है तो वह प्रथम आत्मा में कर्मों का आना उसी प्रकार रोकता है, जिस प्रकार किसी तालाब के जल को निकालने के लिये प्रथम उसमें पानी लाने वाले नल अथवा मार्ग को बन्द किया जाता है। शरीर में नई कर्मवर्गणाओं का आगमन रोकने को संवर तथा संचित कर्मों के नष्ट करने को निर्जरा कहते हैं। जब यह जीव समस्त कर्मों को नष्ट करके इस शरीर से छुटकारा पाकर आवागमन के चक्कर से छूट जाता है तो उसको मोक्ष की प्राप्ति होती है। इन सात तत्त्वों में पुण्य तथा पाप को मिलाने से उनको नव पदार्थ कहा जाता है।

इन्द्रभूति—उस श्लोक में बतलाये हुए षट्काय के जीव कौन-कौन से हैं ?

भगवान्—इन्द्रियां पांच होती हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा कर्ण। कुछ जीव ऐसे होते हैं जिनके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है—जैसे पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक तथा वनस्पतिकायिक जीव। इन पांचों प्रकार के जीवों को स्थावर जीव भी कहा है। शेष जीवों को त्रसकायिक जीव कहा जाता है; यही छः काय के जीव है।

इन्द्रभूति—भगवन् ! स्थावर तथा त्रसजीव किन्हें कहते है ?

भगवान्—जो जीव पैदा होते हों, बढ़ते हों, मरते हों, किन्तु चल-फिर न सकते हों उन्हें स्थावर जीव कहते हैं, तथा जो पैदा होते हों, बढ़ते हों किन्तु चल फिर सकते हों उन्हें त्रसजीव कहते हैं। त्रसजीव चार प्रकार के होते हैं—

द्वीन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय तथा पञ्चेन्द्रिय।

जिन जीवों के केवल स्पर्शन तथा रसना ये दो इन्द्रियां ही हों नाक, आंख तथा कान न हों उन को द्वीन्द्रिय कहा जाता है जैसे चावलों में पाया जाने वाला लट नामक कीड़ा। जिन जीवों के केवल स्पर्शन, रसना तथा घ्राण ये तीन इन्द्रियां ही हों तथा आंख एवं कान न हों तो उन्हें तेइन्द्रिय कहा जाता है, जैसे

चींटी, मकौड़ा आदि । जिन जीवों के केवल स्पर्शन, रसना, घ्राण तथा चक्षु यह चार इन्द्रियां ही हों तथा कान न हों उनको चौइन्द्रिय कहा जाता है, जैसे मक्खियां, भौंरा, बर्र, तितली आदि। किन्तु जिन जीवों के पांचों इन्द्रियां हों उन्हें पञ्चेन्द्रिय जीव कहा जाता है । संयमी पुरुष को इन छहों काय के जीवों की रक्षा करके अपने परलोक को सुधारना चाहिये ।

इन्द्रभूति—भगवन् ! परलोक को किस प्रकार सुधारा जा सकता है ?

भगवान्—इसके लिये सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्र इन तीन रत्नत्रय को धारण करना चाहिये । अन्य धर्मों में इनको व्यावहारिक दृष्टि से भक्तियोग, ज्ञानयोग तथा कर्मयोग कहा गया है । इनमें से एक-एक का अवलम्बन करने से कभी भी उद्धार नहीं हो सकता । जिस प्रकार किसी मार्ग पर जाने के लिये प्रथम यह आवश्यक है कि उस मार्ग के ज्ञान के साथ-साथ यह विश्वास हो कि उस मार्ग पर जाने से अमुक स्थान तक निश्चय से पहुंचा जा सकता है, उसी प्रकार सम्यक् दर्शन तथा सम्यक् ज्ञान का होना भी आवश्यक है । फिर जिस प्रकार उस मार्ग पर चलकर ही गंतव्य स्थान पर पहुंचा जा सकता है उसी प्रकार सम्यक् चारित्र का पालन करना भी आवश्यक है ।

इन्द्रभूति—तो भगवन् ! क्या व्रत तथा समितियां सम्यक् चारित्र का अंग हैं ।

भगवान्—संसार सागर से पार उतरने के लिये व्रतों का पालन करना आवश्यक है । पालन करने की दृष्टि से चारित्र के दो भेद हैं—एक सकल चारित्र, दूसरा विकल चारित्र । सकल अर्थात् पूर्ण चारित्र का पालन गृहत्यागी मुनि ही कर सकते हैं, किन्तु गृहस्थ विकल अथवा एकदेश चारित्र का पालन करते हैं । व्रत पांच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह । साधु को इनका पूर्णतया पालन करना चाहिये, किन्तु गृहस्थ को इनका पालन करने में इतनी छूट दी जाती है कि गृहस्थ को स्थावर जीवों की अहिंसा में ढिलाई करते हुए त्रसजीवों की हिंसा का पूर्ण त्याग करना चाहिये । व्यापार आदि की अनिवार्य आवश्यकता होने पर वह थोड़ा झूठ बोल सकते हैं । जल तथा मिट्टी के

अतिरिक्त वह बिना दी हुई और कोई वस्तु नहीं लेते। अपनी स्त्री के अतिरिक्त वह संसार की सभी स्त्रियों को माता तथा बहिन समझते हैं तथा परिग्रह की वस्तुओं का परिमाण कर लेते हैं कि मैं इतने समय में इतनी वस्तुएं अमुक परिमाण में अपने पास रखूंगा, उनसे अधिक न रखूंगा। मुनियों के लिये यह पांचों यम अथवा महाव्रत कहलाते हैं, किन्तु गृहस्थों के लिये यही पञ्च अणुव्रत कहलाते हैं। मुनियों को पंच महाव्रत के अतिरिक्त पांच समितियों तथा तीन गुप्तियों का भी पालन करना चाहिये। पांच समितियां ये हैं—

ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान-निक्षेपण समिति तथा उत्सर्ग समिति। जीवों की रक्षा करते हुए सामने की चार हाथ भूमि को देखकर चलने को ईर्या समिति; हित, मित, प्रिय वचन बोलने को भाषा समिति; दिन में एक बार ऐसा शुद्ध भोजन लेने को एषणा समिति कहते हैं जिससे तप की वृद्धि हो, न कि शरीर को रसों से पुष्ट किया जावे। तप के उपकरण कमण्डलु, पीछी आदि तथा ज्ञान के उपकरण शास्त्र आदि को इस प्रकार देखकर रखने तथा उठाने को आदान-निक्षेपण समिति कहते हैं कि कोई जीव उनके नीचे न आ जावे। निर्जन्तु स्थान देखकर मलमूत्र का त्याग करने को उत्सर्ग समिति कहते है। इन पांचों समितियों का पालन करना प्रत्येक मुनि के लिये आवश्यक है।

मन को वश में करने को मनोगुप्ति, वचन के वश में करने को वचन-गुप्ति तथा काय के वश में करने को कायगुप्ति कहते हैं। यह तेरह प्रकार का मुनियों का चारित्र है।

इन्द्रभूति—भगवन्! मै ब्राह्मण-विद्यार्थी द्वारा बतलाये हुए श्लोक के अर्थ को तो समझ गया, किन्तु कृपा कर यह बतलाइये कि ईश्वर तथा जीव का परस्पर क्या सम्बन्ध है ?

भगवान्—जीव के अतिरिक्त संसार में नित्य-मुक्त कोई ईश्वर नहीं है। यह जीव ही रत्नत्रय का पालन करके ईश्वरत्व को प्राप्त करता है।

इन्द्रभूति—तो भगवन्! इस संसार का स्रष्टा कौन है ?

भगवान्—जिस प्रकार इस जीव को कर्मफल-दाता कोई नहीं है, उसी प्रकार इस सृष्टि का स्रष्टा भी कोई नहीं है। जिस प्रकार पौद्गलिक कर्मवर्गणाएं जीव को स्वयं कर्मफल देती हैं उसी प्रकार पौद्गलिक नियमों द्वारा अनादि काल से सृष्टि की उत्पत्ति तथा प्रलय होती रहती है। सृष्टि को उत्पन्न करने अथवा उसमें प्रलय करने वाला कोई ईश्वर या परमात्मा नहीं है।

इन्द्रभूति—भगवन् ! आपने मुझे अमृततत्त्व का उपदेश देकर मेरे अज्ञानान्धकार को नष्ट किया है। अब मैं गृहस्थ के बन्धन में न पड़कर अपने आत्मा का कल्याण करूंगा। कृपा कर मुझे दीक्षा दें।

इस पर भगवान् ने गौतम इन्द्रभूति को तुरंत दीक्षा दे दी। उनके साथ ही उनके दोनों छोटे भाइयों—अग्निभूति तथा वायुभूति तथा पाँच सौ शिष्यों ने भी दीक्षा ले ली। भगवान् ने दीक्षा देकर तीनों गौतम बन्धुओं को अपना गणधर पद देकर सम्मानित किया। उनके अतिरिक्त भगवान् के आठ गणधर और भी थे। तीनों गौतम गणधरों में से प्रत्येक के गण में पाँच-पांच सौ मुनि थे।

चौथे गणधर आर्यव्यक्त भारद्वाज गोत्र के थे। उनके गण में भी ५०० मुनि थे,।

पांचवें गणधर सुधर्माचार्य वैशम्पायन गोत्र के थे। उनके आधीन भी ५०० मुनि थे।

छठे गणधर माण्डिकपुत्र अथवा मण्डितपुत्र वशिष्ठ गोत्र के थे। वह २५० श्रमणों को धर्मशिक्षा देते थे।

सातवें गणधर मौर्यपुत्र काश्यपगोत्री थे। वह २५० मुनियों को शिक्षा देते थे।

आठवें गणधर अकम्पित गौतम गोत्र के तथा नौवें अचलवृत्त हरितापन गोत्र के थे। यह दोनों ही तीन-तीन सौ श्रमणों को धर्म-ज्ञान अर्पण करते थे।

दसवें गणधर मैत्रेय तथा ग्यारहवें प्रभास काण्डिन्य गोत्र के थे। इन दोनों के संयुक्त प्रबन्ध में ३०० मुनि थे।

इनमें से केवल इन्द्रभूति गौतम तथा सुधर्माचार्य ही भगवान् की निर्वाण प्राप्ति के पश्चात् जीवित रहे। अवशेष नौ गणधर भगवान् के जीवन काल में ही

मुक्त हो चुके थे। यह सब केवलज्ञानी थे। इस प्रकार इन गणधरों के आधीन ४२०० मुनि थे, किन्तु भगवान् महावीर के संघ में मुनियों की समस्त संख्या १४००० थी।

भगवान् महावीर स्वामी ने मुनि-संघ बनाने के अतिरिक्त महिलाओं क दीक्षित करके उनका भी संघ बनाया था। महिलाओं में सबसे प्रथम दीक्षा लेने वाली उनकी गृहस्थ जीवन की मौसेरी बहिन महासती चन्दनबाला थी। जैन साध्वियों को आर्यिका कहा जाता था। महासती चन्दनबाला के संघ में छत्तीस सहस्र आर्यिकाएं थीं। वह सभी मुनियों जैसे कठिनव्रतों, संयम और आत्म-समाधि का साधन करती थीं। आर्यिकायें केवल एक वस्त्र पहनती थीं।

भगवान् का तीसरा संघ श्रावकों का था, जो सबके सब अणुव्रतों के धारक गृहस्थ थे। उनकी संख्या एक लाख थी। इनमें प्रमुख श्रावक सांणस्त[illegible] थे ह।

भगवान् के चौथे संघ में तीन लाख श्राविकाएं थीं, जिनमें मुख्य सुल्सा तथा रेवती थीं। इस प्रकार भगवान् के चतुर्विध संघ में मुनि, आर्यिकाएं, श्रावक तथा श्राविकाएं थीं। इनके अतिरिक्त भगवान् के भक्त अविरत गृहस्थों की संख्या इन सबसे कई गुनी थी।

केवल ज्ञान होने के पश्चात् भगवान् महावीर ने अपने चतुर्विध संघ सहित स्थान-स्थान पर घूमते हुए धर्म का प्रचार किया। यद्यपि भगवान् ने समस्त उत्तरी भारत का भ्रमण किया, किन्तु दक्षिणी भारत में भी वह कुछ स्थानों पर अवश्य गये। फिर भी उनका विहार विशेष रूप से मगध तथा वैशाली में ही हुआ।

केवल ज्ञान के बाद भगवान् सर्वप्रथम मगध गये और वहां से वैशाली आये थे। फिर आपने श्रावस्ती, वैषष्ठी आदि स्थानों में उपदेश दिया। अपने तीस चतुर्मासों में से भगवान् ने चार वैशाली में, चौदह राजगृह में, छः मिथिला में, दो भद्रिका में, एक अलभीक में, एक पान्थि भूमि में, एक श्रावस्ती में तथा अंतिम पावापुर में पूर्ण किया था। फिर भी उन्होंने समस्त उत्तरी भारत को अपने उपदेश से कृतार्थ किया था।

४५

बिम्बसार द्वारा भगवान् के दर्शन

मध्याह्न होने में अभी विलम्ब है। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार अपनी राज-सभा में सिंहासन पर विराजमान हैं। राज-सभा आधीन राजाओं, सामंतों, राजकर्मचारियों तथा अन्य व्यक्तियों से ठसाठस भरी हुई है। राजा श्रेणिक के ऊपर ढुरते हुए चमरों से निकलने वाली ज्योति सभासदों के नेत्रों में बिजली के जैसी चमक यदा-कदा उत्पन्न कर रही है। सम्राट् के सिर पर चन्द्रमण्डल के समान श्वेत छत्र शोभायमान हो रहा है। बन्दीजन उनकी स्तुति कर रहे हैं कि वनमाली ने प्रवेश करके उनके सन्मुख अनेक प्रकार के फलों तथा फूलों की डलिया रखकर निवेदन किया ---

"राजराजेश्वर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

"क्यों माली ! आज असमय क्यों आए ? तुम्हारी डलिया में आज सब ऋतुओं के फल-फूल क्यों दिखलाई देते हैं।"

राजा के इन वचनों को सुनकर माली एक बार तो कुछ सोचकर आनन्द गद्गद् हो गया। किन्तु दूसरे ही क्षण कुछ सम्भल कर बोला---

"देव ! विपुलाचल पर्वत पर तीन लोक के नाथ भगवान् महावीर स्वामी का समवशरण आया हुआ है। उनके आगमन के प्रभाव से वहां सभी ऋतुओं के फल तथा फूल खिल गए है। जनता में स्वयमेव धार्मिक भावना जागृत हो रही है। देवता उन भगवान् की सेवा कर रहे हैं। वृक्षों से अपने आप ही पुष्प झड़ रहे हैं। सब दिशाएं निर्मल हो गई हैं। आकाश भी मेघ-रहित होकर स्वच्छ दिखलाई दे रहा है। पृथ्वी धूलरहित हो गई है। शीतल, मन्द तथा सुगन्ध पवन चल रही है। भगवान् के मुख से सभी जीवों का कल्याण करने वाली दिव्य ध्वनि निकल रही है। राजन् उनके विराजने का प्रभाव ऐसा पड़ा है कि जिन लोगों में आपस में जन्म से ही वैरभाव था ऐसे विरोधी पशु-

पक्षियों ने भी वैरभाव त्याग दिया है। सिंह, मृग आदि शान्ति से एक दूसरे के पास बैठे हुए है। हथिनी सिंह के बालक को दूध पिला रही है। मृगों के बच्चे सिंहिनी को माता बुद्धि से देख रहे हैं। सर्पों के फणों पर मेंढक इस प्रकार निःशंक बैठे हैं, जिस प्रकार श्रांत पथिक वृक्षों की छाया में आश्रय लेते हैं। जिन लोगों का इस जन्म में ही किसी कारणवश वैर हो गया था, वे भी अपने वैर-भाव को छोड़कर शान्ति से बैठे हुए हैं। राजराजेश्वर ! उन भगवान् के आगमन से प्रकृति को भी ऐसा भारी आनन्द हुआ है कि वृक्षों में सभी ऋतु के फल, फूल तथा पत्ते आ गए हैं। इसीलिये मैं उनको अपनी डाली में सजा कर देव के सन्मुख ला सका हूँ। खेतों में स्वादिष्ट धान पक रहे हैं। प्रजा के सुख के लिये वन में सब प्रकार की सर्वरोगनाशक तथा पौष्टिक बूटियां उत्पन्न हो रही है। हे महाराज ! श्री महावीर जिनेन्द्र के पधारने से एक साथ इतने चमत्कार हो रहे हैं कि उनका वर्णन वाणी द्वारा नही किया जा सकता। मैं राजसेवक हूँ। मेरा कर्तव्य महाराज को सम्वाद देना था। अब आप जैसा उचित समझे करें।"

वनमाली के इन शब्दों को सुनकर राजा श्रेणिक को बड़ा आनन्द हुआ। प्रेम से उनके नेत्रों में जल आ गया तथा रोमांच खड़े हो गए। उन्होंने प्रथम अपने गले से बहूमूल्य रत्नजटित कण्ठा उतार कर माली को देते हुए कहा—

"माली ! इस शुभ संवाद को सुनाने के लिये हम तुमको यह पारितोषिक देते हैं।"

माली ने कण्ठे को लेकर प्रथम हाथ जोड़कर सिर से लगाया और फिर अपने गले म उसे धारण कर लिया।

राजा श्रेणिक इस संवाद को सुनकर तत्काल अपने राजसिंहासन से उतर पड़े। उन्होंने विपुलाचल पर्वत की दिशा में सात पग जाकर भगवान् महावीर स्वामी को वहीं से तीन बार नमस्कार किया। इसके पश्चात् उन्होंने अपने सिंहासन पर फिर बैठकर यह आज्ञा दी—

"नगर में घोषणा कर दी जावे कि उन चौबीसवें तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी का समवशरण विपुलाचल पर्वत पर आया हुआ है। राजा तथा रानी उनके दर्शनों को जा रहे हैं। जिसकी इच्छा हो उनके साथ चलकर भगवान् के दर्शन करके उनका उपदेश सुने।"

यह कहकर राजा ने सभा विसर्जित करके भगवान् के दर्शनों के लिये जाने की तैयारी आरम्भ की। राजा ने जो महल में जाकर रानी चेलना को यह सम्वाद सुनाया तो वह हर्ष के उद्रेक से एकदम प्रसन्न हो गई। उसने समस्त रनवास सहित भगवान् के दर्शन के लिये जाने की एकदम तैयारी की। राजा का रथ द्वार पर खड़ा हुआ था। साथ में जाने वाले प्रजावर्ग की भीड़ प्रतिक्षण बढ़ती जाती थी। जिस समय राजा अपने रथ पर बैठकर रानियों की पालकियों के साथ आगे बढ़े तो जनता प्रसन्न होकर जय-जयकार करने लगी। राजगृह में उस समय भगवान् के दर्शनों के लिये जाने का एक आन्दोलन जैसा मच गया। सभी स्त्री-पुरुष उनके दर्शन के लिये राजा श्रेणिक के साथ चले जा रहे थे।

जिस समय राजा श्रेणिक ने भगवान् के समवशरण को दूर से देखा तो वह अपने रथ से उतर पड़े। रानियां भी अपनी-अपनी पालकियों से उतर कर पैदल ही समवशरण के अन्दर चलीं। राजा श्रेणिक अपनी समस्त सेना तथा पुर-वासियों को साथ लिये हुए भगवान् के दर्शनों को आए।

समवशरण की शोभा को देखकर राजा एकदम आश्चर्य में भर गये। उन्होंने श्रीमण्डप में पहुंच कर प्रथम धर्मचक्र की प्रदक्षिणा की। फिर उन्होंने पीठ की पूजा करके गंधकुटी के मध्य में सिंहासन पर विराजमान श्री जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन किये। राजा श्रेणिक ने अपनी रानियों सहित भगवान् की गंधकुटी की तीन प्रदक्षिणाएं कीं। फिर उन्होंने बड़े भक्तिभाव से भगवान् का पूजन किया। पूजन करके वह बड़े प्रेम से भगवान् की इस प्रकार स्तुति करने लगे—

"भगवन् ! आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। आप विश्ववाणी के स्वामी हैं तथा कामदेव को जीतने वाले हैं। आप पूजने योग्य हैं, धर्म की ध्वजा हैं तथा धर्म के पति हैं। आप कर्मरूपी शत्रुओं का क्षय करने वाले हैं। आप जगत् के पालक हैं। आपका उपदेश सुनने के लिये समस्त देवता लालायित होकर आपके पास आये हुए हैं। आप में शुद्ध ज्ञान, दर्शन, वीर्य, चारित्र, क्षायिक सम्यक् दर्शन तथा अनन्त दान आदि लब्धियाँ हैं। आपके शरीर में से उज्ज्वल ज्योति निकल रही है, मानो आपका पुण्य आपका अभिषेक कर रहा है। आपकी दिव्य ध्वनि जगत् के प्राणियों के मन को पवित्र करती है। आपके ज्ञान-सूर्य का प्रकाश मोहरूपी अंधकार को दूर करता है।

"श्री जिनेन्द्र ! आपका ज्ञान अनन्त, अनुपम तथा भ्रमरहित है। आप इस समस्त विश्व को जानते हुए भी खेद का अनुभव नहीं करते। यह आपके अनन्त वीर्य की ही महिमा है। आपके भावों में राग आदि की कलुषता नहीं है। आप क्षायिक चारित्र से सुशोभित हैं। स्वाधीन आत्मा से उत्पन्न अतीन्द्रिय पूर्ण सुख का आप उपभोग करते हैं। आप अनन्त गुणों के धारक हैं। आज भारत में वेदों के नाम से यज्ञ में असंख्य पशुओं का वध किया जा रहा है। वे समस्त जीव आज अपनी रक्षा के लिये आपके कृपा-कटाक्ष-कोर की ओर आशा-भरी दृष्टि से देख रहे है।

"भगवन् ! मैं अत्यन्त अल्पज्ञानी तथा आचरणहीन हूँ। आप अपने निर्मल उपदेश से मेरी बुद्धि को धर्म-कार्य में लगावें, जिससे मैं सदा उत्तमोत्तम धार्मिक कार्य करता हुआ अपने परलोक को सुधार सकूँ।"

भगवान् महावीर की इस प्रकार स्तुति करके राजा श्रेणिक अत्यन्त विनयपूर्वक मनुष्यों के बैठने के कोठे में जाकर बैठ गये। इसके पश्चात् राजा श्रेणिक ने अत्यन्त प्रसन्न होकर अपने दोनों हाथ जोड़कर एवं भक्ति से मस्तक झुका कर भगवान् से निवेदन किया—

'हे भगवन् सर्वज्ञ देव ! मैं जानना चाहता हूँ कि धर्म का स्वरूप क्या है ? धर्म का मार्ग क्या है ? तथा उसका कैसा फल है।"

राजा श्रेणिक के इस प्रश्न को सुनकर भगवान् अपनी दिव्य ध्वनि में बोले—

"राजन् ! सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान तथा सम्यक् चारित्ररूप रत्नत्रय मार्ग की एकत्र पूर्णता ही मोक्ष का मार्ग है। तत्त्वों के अर्थ में श्रद्धान रखना सम्यक् दर्शन है। जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष यह सात तत्त्व हैं। पुण्य और पाप का आश्रव तथा बंध में अंतर्भाव किया जाता है, इसलिये उनकी गणना तत्त्वों में नहीं की जाती। जीव का स्वरूप ज्ञानदर्शनमय है। उसमें इन दोनों की पराकाष्ठा होनी चाहिये। ज्ञान की पराकाष्ठा ही सम्यक् ज्ञान है। यह संसार छः द्रव्यों से बना हुआ है। जिसमें गुण तथा पर्याय हों उसको द्रव्य कहते हैं। जीव गुण-पर्यायधारी है। इसलिये द्रव्य का लक्षण रखने से द्रव्य है। पुद्गल के भी गुण तथा पर्याय होते हैं। इसलिये उसे भी द्रव्य कहते हैं। धर्म, अधर्म तथा काल भी द्रव्य हैं। ये पाँचों अपने प्रदेशों की बहुलता के कारण अस्तिकाय कहलाते हैं। काल भी अपने गुण-पर्यायों के कारण द्रव्य है। किन्तु उसके प्रदेश पृथक्-पृथक् होने के कारण वह अस्तिकाय नहीं है। आकाश के जितने भाग को पुद्गल का एक अविभागी परमाणु घेरता है, उसे प्रदेश कहते हैं। इस माप से मापने पर काल द्रव्य के अतिरिक्त अन्य पाँचों द्रव्यों को बहुप्रदेशीय कहा जाता है। इन जीव आदि सातों तत्त्वों के यथार्थ स्वरूप पर श्रद्धान करना सम्यक् दर्शन है। उनको वैसे का वैसा ही जानना सम्यक् ज्ञान है। कर्मों के बन्धन के कारण आत्मा में उत्पन्न होने वाले भावों का जिससे निरोध हो वह सम्यक् चारित्र है। इन तीनों की एकता से कर्मों का नाश होकर मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिये इसे रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग कहा जाता है।

"यह जीव सदा से सत् है। यह अनादि, अनन्त, नित्य, स्वतःसिद्ध अमूर्तिक तथा स्वदेहपरिमाण वाला है। यह अपने वास्तविक रूप में पुद्गल सम्बन्धी शरीरों से रहित है, तो भी यह अनादि काल से कर्मबन्धन में पड़ा हुआ इस संसार में पुनर्जन्म के कष्ट को भोगता रहता है। यह जीव असंख्यात प्रदेशों वाला तथा अनन्त गुणों का धारी है। पर्याय की अपेक्षा जीव में उत्पादन

तथा व्यय प्रतिक्षण होता रहता है। जीव का विशेष लक्षण चेतना है। यह ज्ञाता, द्रष्टा, कर्ता तथा भोक्ता है। शुद्ध निश्चय-नय से यह अपने शुभ भावों का कर्ता तथा भोक्ता है। अशुद्ध निश्चय-नय से यह राग-द्वेष आदि भावों का कर्ता तथा भोक्ता है और व्यवहार-नय से यह समस्त संसारी कार्यों का कर्ता तथा उनके फल का भोक्ता है। यह जीवात्मा न तो व्यापक है और न परिच्छिन्न ही है, वरन् यह अपने शरीर के परिमाण वाला है। यह अपने संकोच-विस्तार-रूप स्वभाव के कारण दीपक के प्रकाश के समान हाथी के शरीर में उतने बड़े आकार का हो जाता है, किन्तु चींटी के शरीर में इतने छोटे आकार का बन जाता है। मोक्ष होने पर इसका आकार अपने अंतिम शरीर से कुछ ही कम प्रायः उसके बराबर रहता है।

"इस जीव को प्राणी, जन्तु, क्षेत्रज्ञ, पुरुष, पुमान्, आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानी आदि नामों से पुकारा जाता है। वह संसार के जन्मों में जीता है, जीता था और जीवेगा इसलिये इसे जीव कहा जाता है। संसार से छूटकर मोक्ष होने पर भी यह सदा जीता रहता है। तब उसको सिद्ध कहते हैं।"

"जो इस जीव का घात करते हैं वे बड़े भारी पापी हैं। जीव का घात किसी भी अवस्था में किसी भी बहाने से नहीं करना चाहिये। कुछ लोगों का कहना है, यज्ञ में मारे हुए जीव सीधे स्वर्ग को जाते हैं। उनको चाहिये कि प्रथम वह अपने माता-पिता को मारकर उनको ही स्वर्ग पहुंचावें। संसार में 'जीवघाती महापापी' इस लोकोक्ति का घर-घर प्रचार किया जाना चाहिये। आज देश में वेदों के नाम पर जो असंख्य जीवों का यज्ञ में वध किया जा रहा है, उसका कारण धर्म न होकर उन पुरोहितों की मांस खाने की अभिलाषा है। इनका यह कहना कि यज्ञ के मांस को न खाने वाला नरक में जाता है उनकी मांस-भक्षण का प्रचार करने की भावना को प्रकट करता है। संसार में मद्य, मांस तथा मधु से अधिक अपवित्र खाद्य पदार्थ और नहीं है। इनके अतिरिक्त बड़, पीपल पाकर, गूलर तथा अंजीर इन पांच उदुम्बर फलों का भी भक्षण नहीं करना चाहिये, क्योंकि उनमें इतनी अधिक मात्रा में जीव होते हैं कि उनको नेत्रों

स्पष्ट देखा जाता है। जो व्यक्ति इन आठों वस्तुओं का त्याग करता है वह अष्ट-मूल गुण का धारक कहलाता है। व्यक्ति को चाहिये कि वह पञ्च महाव्रत, पंच समिति तथा तीन गुप्तियों का पालन करने की अपनी क्षमता बढ़ा कर मुनिव्रत ले ले। किन्तु यदि वह अपनी सामर्थ्य इतनी न समझे तो उसे पंच अणुव्रतों का धारण करके श्रावक के व्रत ले लेने चाहियें। किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि मुनिव्रत ग्रहण करके तप किये विना मुक्ति कदापि नहीं हो सकती।"

यह कहकर भगवान् चुप हो गये। भगवान् के इस उपदेश को सुनकर अनेक व्यक्तियों ने मुनि-दीक्षा ली, अनेक ने श्रावक के व्रत लिये तथा अनेक ने कोई व्रत न लेकर उनके सिद्धान्त पर केवल श्रद्धान ही किया। राजा श्रेणिक भी भगवान् के उपदेश को सुनकर अत्यंत प्रसन्न हुए। वे उपदेश सुनकर अपनी रानियों सहित भगवान् की फिर वन्दना करके भगवान् से अनेक प्रश्नों का समाधान करने लगे।

राजा श्रेणिक के साथ उनके पुत्रों ने भी भगवान् से अनेक प्रश्न पूछकर अपना शंका-समाधान किया। उनके उपदेश को सुनकर राजा श्रेणिक अपनी रानियों तथा पुत्रों सहित अपने घर आये।

राजा श्रेणिक सवारी से उतर कर घर में बैठे ही थे कि उनके पुत्र अभय-कुमार, वारिषेण तथा गजकुमार उनके पास आये। राजा ने उनकी उत्सुक मुद्रा देखकर उनसे पूछा—

"क्यों बेटा ! क्या कुछ कहना है ?"

इस पर अभयकुमार बोला—"हां, पिताजी ! यदि आपकी आज्ञा हो तो कुछ निवेदन तो करना है।"

तब राजा बोले—"तुम्हें जो कुछ कहना हो तुम प्रसन्नता से कहो बेटा ?"

तब अभयकुमार बोले—"पिताजी ! भगवान् महावीर के वचनों से मेरी आंखें खुल गई हैं। अब मुझे संसार के भोग काले सर्प के समान दिखलाई देते

है। कृपा करके मुझे अनुमति दें कि मैं भगवान् महावीर स्वामी के पास शीघ्र ही मुनि-दीक्षा ग्रहण कर लूं।"

अभयकुमार, वारिषेण तथा गजकुमार की जिन-दीक्षा की प्रार्थना सुनकर राजा एकदम चक्कर में पड़ गये। उनको यह नहीं सूझा कि उनको क्या उत्तर दें। तब तक महारानी नन्दश्री ने आकर महाराज से निवेदन किया—

"महाराज ! भगवान् बुद्ध का उपदेश सुनकर मैं बौद्ध अवश्य बन गई थी, किन्तु उससे मेरे आत्मा की तृप्ति नहीं हुई थी। किन्तु आज भगवान् महावीर स्वामी का उपदेश सुनकर मेरा अन्तरात्मा तृप्त हो गया। अब तो मुझको भी संसार से भय लग रहा है। कृपा कर मुझे भी महासती चन्दनबाला के चरणों में बैठकर दीक्षा लेने की अनुमति दें।"

नन्दश्री के इन वचनों को सुनकर महारानी चेलना बोलीं—

"बहिन नन्दश्री ! तू धन्य है। तूने अपने पिता, पितामह आदि अनेक पीढ़ियों के नाम को उज्ज्वल कर दिया। मैं आजतक जैनी बनी हुई भी अभी तक दीक्षा लेने को तैयार नहीं हो पाई, किन्तु तू आज तक बौद्ध बनी हुई भी एकदम दीक्षा लेने को तैयार हो गई।

इसके बाद रानी चेलना अभयकुमार आदि तीनों राजकुमारों से बोली–

"बेटा, अभी तो तुम्हारा बचपन है। दीक्षा तो बड़ी आयु में ली जाती है। तुमको अभी से क्या जल्दी है। फिर बेटा अभयकुमार ! तुम्हारे बिना तो महाराज को राजकाज चलाना भी कठिन हो जावेगा।"

इस पर अभयकुमार ने उत्तर दिया—

"माता ! संयम ग्रहण करने के लिये क्या बचपन तथा क्या बुढ़ापा। जब सांसारिक भोगों से घृणा हो ही गई तो माता, अब हम लोगों से घर में न रहा जावेगा। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि मेरी माता भी अपने तीनों पुत्रों का साथ देंगी। पिता जी ! अब आप हम लोगों को दीक्षा लेने की अनुमति देकर हमको अपने आत्मा का कल्याण करने दें।"

इस पर राजा श्रेणिक का हृदय भर आया और वह गद्‌गद् कंठ से कहने लगे—

"मेरी स्थिति इस समय बड़ी विचित्र है। कर्तव्य कहता है कि मैं आप की प्रार्थना को स्वीकार कर लूं, किन्तु मोह कहता है कि मैं तुमको अपने नेत्रों की ओट न होने दूं।"

फिर उन्होंने नन्दश्री की ओर देखकर कहा—

"सुन्दरि ! तुमने मेरा निर्वासन अवस्था से साथ दिया है। सुख और दुःख में मेरा साथ जितना तुमने दिया है, उतना और किसी ने नहीं दिया। तुमको तो मेरा साथ जन्म भर निबाहना चाहिये।"

इस पर नन्दश्री ने उत्तर दिया—

"राजन् ! इस संसार में किसने किसका साथ दिया है। यह जीव संसार में अकेला ही आता है और इसको अकेले ही इस संसार को छोड़ना पड़ता है। इस क्षणिक जीवन में जो जीवों को एक दूसरे का साथ देते हुए देखा जाता है वह तो नदी-नाव संयोग है। आप ज्ञानी, ध्यानी तथा धैर्यवान् हैं। आपको इस प्रकार अपने धैर्य को नहीं छोड़ना चाहिये। अब आप अपने कर्तव्य का स्मरण करके हम चारों को जिन-दीक्षा लेने की अनुमति सहर्ष प्रदान करें।"

इस पर राजा श्रेणिक ने कुछ देर मौन रहकर कहा—

"अच्छा, यदि आप लोगों का ऐसा ही विचार है तो मैं भी आपके शुभ कार्य में बाधा डालना नहीं चाहता।"

राजा श्रेणिक के यह वचन सुनकर तीनों राजकुमारों तथा महारानी नन्दश्री को बड़ी भारी प्रसन्नता हुई। इन लोगों के दीक्षा लेने का समाचार सुनकर जनता सहस्रों की संख्या में राजमहल के द्वार पर एकत्रित हो गई थी। जब यह चारों राजमहल के बाहिर आये तो जनता ने उनका सारे नगर में बड़ा भारी जुलूस निकाला। इसके पश्चात् जनता ने उस जुलूस को भगवान् के समवशरण पर जाकर समाप्त किया। जुलूस से छुट्टी पाकर अभयकुमार, वारिषेण तथा गजकुमार ने गौतम स्वामी के पास जाकर तथा महारानी नन्दश्री ने महासती चन्दनबाला के पास जाकर जिन-दीक्षा ग्रहण की।

४६

केरल यात्रा

मध्याह्न का समय है। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार अपनी राजसभा में बैठे हुए हैं कि दौवारिक ने आकर कहा—

"सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

"क्या है द्वारपाल ?

"देव ! व्योमगति नामक एक विद्याधर दक्षिण के केरल देश का निवासी द्वार पर खड़ा हुआ है। वह देव के दर्शन करना चाहता है।"

"उसे अत्यन्त आदरपूर्वक अन्दर भेज दो।"

यह सुनकर द्वारपाल वापिस चला गया। इसके थोड़ी ही देर बाद एक अधेड़ आयु के व्यक्ति ने सभा में प्रवेश किया। इसका मुख का वर्ण अत्यन्त गौर था और उसमें से तेज निकल रहा था। उसके शरीर पर अत्यन्त बहुमूल्य राजसी वस्त्र थे। उसके सिर पर मुकुट तथा कानों में कुण्डल थे। उसने आते ही कहा—

"राजराजेश्वर सम्रा् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

इस पर राजा बोले—

"आप इस सिंहासन पर विराजिये। आपका कहां से आना हुआ ?"

सम्राट् के यह कहने पर वह व्यक्ति अपने निर्दिष्ट सिंहासन पर बैठकर बोला—

"राजन् ! मलयाचल पर्वत के दक्षिण भाग में समुद्र के किनारे केरल नामक एक नगर है। उस नगर का राजा मृगांक विद्याधर अत्यन्त धार्मिक तथा गुणवान् है। उसकी स्त्री का नाम मालतीलता है, जो अत्यधिक शीलवती, गुणवती तथा स्वर्ण के समान कान्ति वाली है। मैं उस महारानी मालतीलता का भाई हूं। मेरा नाम व्योमगति विद्याधर है। मैं केरल नगर के समीप ही

रत्न

सहस्रशृंग नामक पर्वत पर रहता हूँ। राजा मृगांक तथा रानी मालतीलता के एक पुत्री है, जिसका नाम विलासवती है। राजकुमारी विलासवती अत्यंत रूपवती तथा सुन्दरी है। उसके नेत्र कानों तक विशाल हैं। इसलिये उसको विशालवती भी कहा जाता है। उसके शरीर की कान्ति चम्पा के पुष्प के समान है। मुझे बतलाया गया है कि राजा मृगांक उस कन्या का वाग्दान आपके साथ कर चुके हैं और इस बात की प्रतीक्षा कर रहे हैं कि आप सेना-सहित केरल देश की यात्रा करके उस कन्या का पाणिग्रहण करें।

"हम लोग आपके केरल पधारने की प्रतीक्षा कर ही रहे थे कि हम पर एक आपत्ति आगई। केरल देश के दक्षिण में हंस द्वीप है, जिसे सिंहल द्वीप भी कहते हैं। वहां का राजा रत्नचूल विद्याधर है। वह अत्यंत पराक्रमी तथा तपस्वी है। उसने विलासवती के सौन्दर्य का समाचार सुनकर राजा मृगांक के पास संदेश भेजा कि राजकुमारी विलासवती का विवाह उसके साथ कर दिया जावे। किन्तु राजा मृगांक उस कन्या का विवाह आपके ही साथ करना चाहते हैं, इसलिये उन्होंने रत्नचूल के प्रस्ताव को स्पष्ट अस्वीकार कर दिया। रत्नचूल ने इस बात से अपना अपमान समझा। वह राजा मृगांक के उत्तर से अत्यंत क्रोध में भर गया। अब उसने अपनी सम्पूर्ण सेना लेकर राजा मृगांक के राज्य पर चढ़ाई कर दी है। राजा मृगांक ने उसकी सेना को अपने से अधिक प्रबल देखकर अपने दुर्ग का आश्रय ले लिया है। इस प्रकार राजा मृगांक दुर्ग में बैठा हुआ अपनी रक्षा कर रहा है और रत्नचूल उसके नगर को नष्ट कर रहा है। उस पापी ने अनेक मकानों को तोड़कर भूमि से मिला दिया है। आजकल वह धन-धान्य से पूर्ण अनेक ग्रामों तथा नगरों से शोभित उस ऐश्वर्यवान् देश को उजाड़ रहा है। उसने अनेक वनों तक को उजाड़ डाला और किलों को तोड़ दिया है। इस समय राजा रत्नचूल केरल देश का विनाश कर रहा है और राजा मृगांक भय से पीड़ित होकर अपने दुर्ग के भीतर ठहरा हुआ किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा कर रहा है। वैसे राजा मृगांक युद्ध में सावधान है। रत्नचूल पर आक्रमण करने का वह अवसर देख रहा है और

आजकल में अपनी शक्ति के अनुसार युद्ध भी करेगा। हम लोग आकाशचारी हैं। मैं अपने विमान पर बैठ कर आपको यह समाचार देने शीघ्रतापूर्वक आ पहुँचा। अब आप जैसा उचित समझें वैसा करें।

"हे राजन् क्षत्रिय का धर्म है कि वह प्राणों का संकट आने पर भी युद्ध-क्षेत्र में अड़ा रहे और पीठ न दिखावे। महान् पुरुषों का धन प्राण नहीं, वरन् मान है। मान नहीं रहा तो यश कैसे हो सकता है। जो व्यक्ति शत्रु के पूर्ण बल को देखकर बिना युद्ध किये शस्त्र डाल देता है अथवा युद्ध-स्थल से भाग जाता है उसके यश में कालिमा लग जाती है। जो पुरुष धैर्य धारण कर युद्ध करके मर जाते हैं, किन्तु पीठ नहीं दिखलाते वे ही यशस्वी वीर पुरुष धन्य ह।

"हे राजन्! मैं आपको केवल यह समाचार देने आया था। अब मुझे वापिस जाने की अनुमति दीजिये, क्योंकि मुझे आज ही वहां वापिस पहुँचना है। अपने शीघ्रगामी विमान के द्वारा मैं वहां आज ही पहुँच जाऊँगा। अपने बहनोई की इस आपत्ति के समय मुझे उनके पास शीघ्र ही पहुँच जाना चाहिये।"

यह कहकर जब वह विद्याधर अपने आसन से उठने लगा तो प्रधान सेनापति जम्बूकुमार उससे कहने लगे—

"हे विद्याधर! क्षण भर ठहरो। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार बड़े पराक्रमी हैं। वह सब शत्रुओं को जीत चुके हैं। उनके पास हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल सैनिकों की चार प्रकार की सेना है। यह सम्राट् महावीर, बुद्धिमान्, राज्य के सातों अंगों से पूर्ण, तेजस्वी तथा यशस्वी हैं। उनकी मांग के ऊपर दृष्टि करके राजा रत्नचूल कुशलपूर्वक नहीं रह सकता।"

कुमार जम्बू स्वामी के इस प्रकार के वीरतापूर्ण वचन सुनकर व्योमगति विद्याधर को भारी आश्चर्य हुआ। वह कहने लगा—

"हे बालक! तूने जो कुछ कहा है, वह क्षत्रियों के योग्य ही कहा है। परन्तु यह कार्य असम्भव है। केरल देश यहां से सैकड़ों योजन दूर सुदूर दक्षिण

में है। मगध की सेना को वहां पहुंचते-पहुंचते भी महीनों लग जावेंगे; तब तक युद्ध को किसी प्रकार टाला जा सकता है ?"

विद्याधर के यह वचन सुनकर जम्बूकुमार बोले—

"हे विद्याधर ! आपकी बात ठीक है। आपकी यह बात भी ठीक है कि हमारे पास सैनिक विमान नहीं हैं। किन्तु आपको हमारा बल जाने बिना उठकर एक दम नहीं चले जाना चाहिये। आप थोड़ी देर ठहर कर जरा हमको सोच लेने का अवसर दें।"

यह सुनकर व्योमगति बोला—

"अच्छा कुमार, आप क्षण-एक विचार कर लें, मैं ठहरा हुआ हूँ।"

व्योमगति के यह कहने पर जम्बूकुमार ने सम्राट् से कहा—

"हे स्वामी ! मेरी समझ में तो यह काम उतना कठिन नहीं है; जितना उसको आर्य व्योमगति ने बतलाया है। यदि आपकी अनुमति हो तो मैं इस विषय में अपना विचार आपके सम्मुख उपस्थित करूं।"

तब सम्राट् बोले—

"तुम अवश्य कहो कुमार ! हम तुम्हारा विचार जानने को उत्सुक हैं।"

इस पर जम्बूकुमार बोले—

"मेरे विचार से तो मुझे अकेले ही प्रथम आर्य व्योमगति के साथ उनके विमान पर बैठ कर केरल चला जाना चाहिये और पीछे से सम्राट् अपनी चतुरंगिणी सेना लेकर यथाशक्ति शीघ्र केरल यात्रा के लिये प्रस्थान करें।"

सम्राट्—किन्तु तुम अकेले वहां क्या करोगे कुमार ?

फिर सम्राट् ने वर्षकार की ओर देखकर उससे पूछा—

"क्यों वर्षकार जी ! इस विषय में तुम्हारी क्या सम्मति है ?"

इस पर वर्षकार ने उत्तर दिया—

"देव ! जम्बूकुमार के कथन में मुझे तो कोई बाधा दिखलाई नहीं देती। वह बल, विद्या और बुद्धि तीनों से भरपूर हैं। जिस प्रकार अङ्गद तथा हनूमान् ने रावण की सेना अकेले ही आकर प्रलय मचा दी थी, इसी प्रकार

यह भी अकेले अपने ही बल से रत्नचूल को नीचा दिखलाने की क्षमता रखते हैं। किन्तु उनके बाद सम्राट् भी तत्काल ही सेना लेकर केरल चले आवें।"

तब सम्राट् बोले—

"अच्छा तो ऐसा ही होवे। जम्बूकुमार! तुम इन विद्याधर महोदय के साथ विमान पर अभी जा सकते हो। तुम एक क्षण के लिये घर जाकर अपने माता-पिता को सूचना दे आओ और अपने उपयोग के अस्त्र-शस्त्र भी अपने साथ ले लो और तुम वर्षकार जी, हमारी सेनाओं को यात्रा के लिये तुरंत तैयार होने की हमारी आज्ञा प्रसारित करा दो।"

सम्राट् के यह कहने पर जम्बूकुमार वहां से उठकर तैयार खड़े हुए अपने रथ पर बैठ कर अपने घर आये। यहां उन्होंने अपने माता-पिता को अपनी केरल-यात्रा का वृत्तान्त सुना कर अपने समस्त अस्त्र-शस्त्र अपने शरीर पर बांधे। फिर वह उसी रथ पर बैठकर राजसभा में आकर व्योमगति विद्याधर के विमान पर बैठकर केरल चले गये।

उनके जाने के बाद राजा श्रेणिक बिम्बसार भी अपनी चतुरंगिणी सेना को साथ लेकर केरल देश की यात्रा पर चले।

४७

सिंहल-नरेश से युद्ध

कुमार जम्बूस्वामी विमान पर बैठे हुए आकाश के मार्ग से चले जाते थे और मार्ग के खेत, वन, पर्वत तथा अनेक देश शीघ्रतापूर्वक उनके नीचे भागते हुए दिखलाई देते थे। व्योमगति का विमान पवन के समान शीघ्रता से उड़ रहा था और जम्बूस्वामी तथा व्योमगति दोनों आकाश की शोभा देख रहे थे। विमान दोपहर पीछे उसी दिन केरल जा पहुंचा।

जिस समय ये लोग वहां पहुंचे तो नगर में सेना का शब्द हो रहा था। यह देखकर जम्बूस्वामी बोले—

"यह कोलाहल कैसा है आर्य ?"

इस पर व्योमगति ने उत्तर दिया—

"इस स्थान पर आपके शत्रु राजा रत्नचूल की सेना का शिविर है। यह उसी सेना का शब्द है। उसकी सेना बड़ी प्रचण्ड है, जिसमें अनेक विद्याधर भी हैं। उसको जीतना सुगम नहीं है।"

यह सुनकर कुमार बोले—

"आप विमान को यहां ठहराइये। मै तनिक रत्नचूल से स्वयं मिलना चाहता हूं।"

कुमार के यह कहने पर व्योमगति ने विमान को वहीं भूमि पर उतार दिया। जम्बूकुमार को भूमि पर उतार कर व्योमगति फिर विमान को आकाश में ले गया। इधर जम्बूकुमार विमान से उतर कर निर्भय होकर शत्रु-सेना की ओर चले और उसमें प्रवेश कर कौतुक से उसे देखने लगे। सेना के योद्धा कामदेव के समान सुन्दर कुमार को देखकर आश्चर्य करने लगे कि यह कौन है। किन्तु उनको कुमार से बात करने का साहस न हुआ। कुमार उनके बीच

से निकलते हुए सीधे राजद्वार पर पहुंचे । आपने वहां जाकर द्वारपाल से कहा—

"तू भीतर जाकर राजा से मेरा संदेश कह कि मैं दूत हूं और मुझे राजा मृगांक ने भेजा है। मैं राजा रत्नचूल से कुछ समझौते की बातचीत करना चाहता हूं।"

द्वारपाल उनका यह वचन सुनकर अन्दर गया और राजा की अनुमति लेकर जम्बूकुमार को अन्दर ले गया। जम्बूकुमार अपनी कांति से अपने चारों ओर तेज फैलाते हुए निर्भय होकर राजा रत्नचूल के पास गये। वह उसको नमस्कार किये बिना ही उसके सामने जाकर खड़े हो गये। उनको देखकर राजा रत्नचूल भी आश्चर्य करने लगा कि यह कैसा दूत है जो नमस्कार करना भी नहीं जानता और मुख से कुछ भी न बोलकर खम्भे के समान सामने खड़ा है। तब राजा रत्नचूल ने कुमार से पूछा—

"आप किस देश से आये हैं ? मेरे पास आपका क्या काम है ?"

इस पर कुमार ने उत्तर दिया—

"मैं नीति-मार्ग का आश्रय लेकर आपको समझाने आया हूं कि आप केरल देश से अपना घेरा उठा लो और इस हठ को छोड़ दो। विलासवती का वाग्दान हो चुका है। वह दूसरे व्यक्ति को मन से स्वीकार कर चुकी है। अतएव आपको उसे प्राप्त करने का हठ नहीं करना चाहिये। इस दुराग्रह से आपको इस लोक तथा परलोक दोनों ही जगह दुःख प्राप्त होगा। इसमें आपको अपकीर्ति मिलेगी। जगत् में स्थान-स्थान पर सहस्रों स्त्रियां हैं। आपको इसी कन्या को प्राप्त करने का हठ क्यों है, यह हमारी समझ में नहीं आया। यदि आपको अपनी सेना के बल का अभिमान है तो यह आपकी भूल है। संसार में कोई भी व्यक्ति सब से बड़ा बलवान् नहीं है। यहां एक से बढ़कर अनेक व्यक्ति बलवान् मिलेंगे। जब राजा मृगांक अपनी कन्या को सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार को देने का वचन दे चुके हैं तो वह आपको कैसे दी जा सकती है ? उससे उनका अपयश होगा। इसलिये आपको विलासवती को प्राप्त करने का

हठ छोड़कर अपना डेरा उठा लेना चाहिये।"

कुमार के यह वचन सुनकर राजा रत्नचूल के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। वह क्रोध में भर कर कुमार से बोला—

"हे बालक! तू मेरे घर में दूत बन कर आया है। फिर तू बालक भी है, इसलिये मारने योग्य नहीं है किन्तु तूने जैसे अनुचित वचन कहे हैं यदि कोई अन्य व्यक्ति ऐसे वचन कहता तो मैं उसे तत्काल मरवा देता। तू इस बात को नहीं जानता कि क्या कहना चाहिये और क्या नहीं कहना चाहिये। न तू इस बात का विचार करता है कि तू कितने बलशाली के साथ वार्तालाप कर रहा है। तू ढीठता के साथ जो मन में आया, बक रहा है। जिस प्रकार उलूक में सूर्य का सामना करने की शक्ति नहीं होती, उसी प्रकार दुष्ट मृगांक या राजा श्रेणिक दोनों में से कोई भी युद्ध में मेरा सामना नहीं कर सकता। तुझे छोटे मुंह बड़ी बात नहीं करनी चाहिये।"

राजा रत्नचूल के यह वचन सुनकर जम्बूकुमार ने उत्तर दिया—

"हे विद्याधर! तूने जो कुछ भी घमंड के वश में होकर कहा है वह अपनी तथा दूसरे की शक्ति पर विचार किये बिना ही कहा है। तू अपनी विमान सेना पर घमंड करता है, किन्तु स्मरण रख कि काक भी आकाश में उड़ता है, किन्तु वह बाण से बिंध कर भूमि पर आ गिरता है।"

जम्बूकुमार के यह वचन सुनकर राजा रत्नचूल क्रोध में भर कर अपने योद्धाओं से बोला—

"यह बालक बहुत वाचाल तथा कड़ुवा बोलने वाला है। आप लोग इसको पकड़ कर हमारे सामने जान से मार डालो।"

राजा रत्नचूल के यह वचन सुनकर दो सैनिक जम्बूकुमार को पकड़ने को आगे बढ़े। किन्तु जम्बूकुमार ने उन दोनों को टांग लगाकर वह पटखनी दी कि दोनों चारों-खाने चित्त होकर धूल फांकने लगे। उन दोनों के गिरते ही एकदम पचास जवान तलवारें हाथ में लेकर जम्बूकुमार पर झपटे। उनको अपनी ओर आते देखकर जम्बूकुमार फुर्ती से वहां से उछल कर एक

ऊंचे टीले पर जा चढ़े। उन्होंने अपने धनुष को उठाकर शीघ्रतापूर्वक ऐसे पैने बाण चलाये कि पचास के पचास सैनिकों को बात की बात में मार दिया। यह दृश्य देखकर राजा रत्नचूल बोला —

"यह बालक देखने में ही बालक है, किन्तु युद्धस्थल में तो यह काल के समान प्रहार करता है। इसलिये आठ सहस्र सैनिकों की पूरी सेना इसके ऊपर धावा करे।"

राजा रत्नचूल की यह आज्ञा पाकर आठ सहस्र योद्धा कुन्त आदि शस्त्र हाथ में लेकर जम्बूकुमार को मारने का उद्योग करने लगे। किन्तु कुमार के बाणों की मार के कारण कोई भी उनके पास तक न आ सका।

इस प्रकार एक भीषण युद्ध आरंभ हो गया। एक ओर कुमार जम्बू स्वामी अकेले थे और दूसरी ओर अनेक योद्धा थे। कुमार ने अपने तीक्ष्ण बाणों से उनमें से अनेक को मार डाला।

व्योमगति विद्याधर ने जो इस प्रकार कुमार को लड़ते देखा तो उनको विमान पर आ जाने को कहा। किन्तु कुमार ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया और उसी भयंकरता से युद्ध करते रहे। इस समय बाण चलाने में कुमार का हस्त-लाघव देखने योग्य था। वह कब बाण निकालते, कब उसको धनुष पर रखते, कब प्रत्यंचा खेंचते और कब उसको चलाते थे यह किसी को दिखलाई नहीं देता था। उस समय जल, स्थल तथा आकाश में सब ओर उन्हीं के बाण छाये हुए थे। उनके बाणों से रत्नचूल के योद्धाओं के शरीर के अंग ऐसे उड़ रहे थे, जैसे धुनिये के धनुष के धुनने मे रुई उड़ती है।

उधर कुमार पर योद्धाओं के शस्त्र कोई नहीं पड़ पाते थे। उनकी दृष्टि ऐसी पैनी थी कि वह अपनी ओर आने वाले प्रत्येक शस्त्र को दूर से ही देखकर अपने बाणों से उसके टुकड़े २ कर देते थे। उनके अक्षय तूणीर से बाणों की अविरल धारा निकल-निकल कर कम होने का तनिक भी नाम नहीं लेती थी। कुमार ने ऐसी सावधानी तथा कुशलता से युद्ध किया कि रत्नचूल के योद्धा उनके सामने न ठहर सके। जिस प्रकार एक ही सूर्य सारे अंधकार को नाश कर देता है, उसी

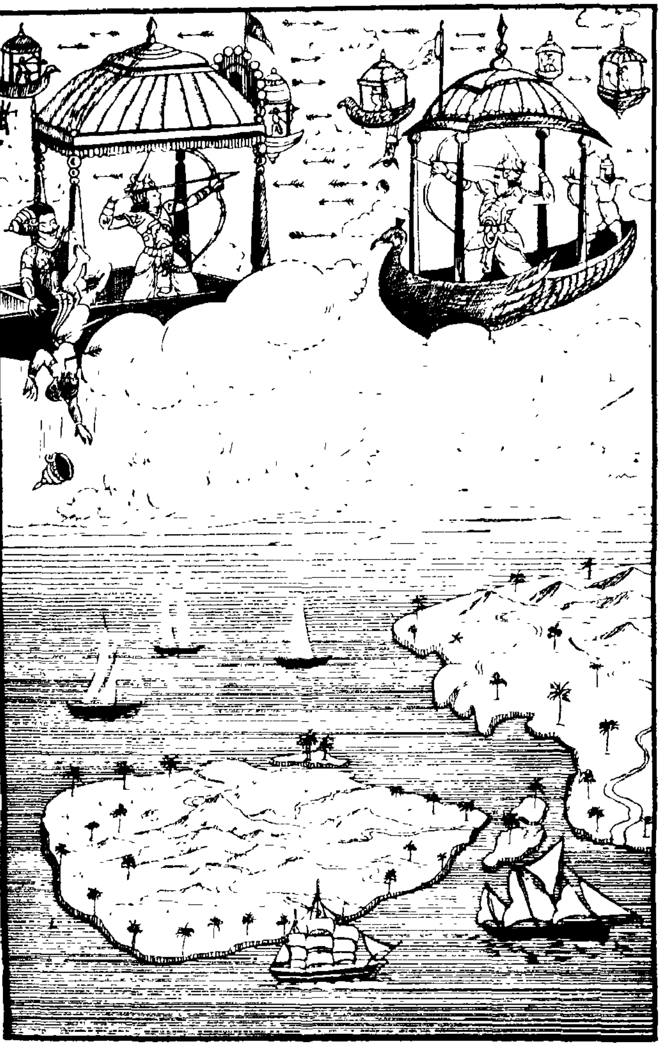
प्रकार उस अकेले कुमार ने सारे शत्रु-दल को नष्ट कर दिया।

इसी बीच किसी गुप्तचर ने जाकर राजा मृगांक से कहा—

"हे देव! आपके पुण्य के उदय से कोई महापुरुष आया है, जो शत्रु-सेना को इस प्रकार नष्ट कर रहा है, जिस प्रकार दावानल वन के वृक्षों को नष्ट करता है। वह बड़ी चतुराई से युद्ध कर रहा है। न जाने वह आपका इस जन्म का कोई मित्र है, अथवा पूर्वजन्म का कोई बन्धु है, या राजा श्रेणिक ने किसी वीर योद्धा को आपकी सहायता के लिये भेजा है।"

राजा मृगांक इस समाचार को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उनके शरीर में आनन्द के मारे रोमांच हो आया। अब राजा मृगांक भी अपनी समस्त सेना को तैयार करके युद्ध के लिये अपने दुर्ग से बाहिर निकला। उसकी सेना के बाजों की ध्वनि सुनकर रत्नचूल भी सावधान हो गया। वह क्रोधाग्नि से जलता हुआ युद्ध करने के लिये राजा मृगांक के सामने आया। इस प्रकार दोनों ओर की सेनाओं में भयंकर युद्ध होने लगा। अब तो हाथियों से हाथी, घोड़ों से घोड़े, रथों से रथ, तथा विद्याधरों से विद्याधर भिड़कर अत्यन्त भयंकर युद्ध करने लगे। उस युद्ध के कारण उस समय उस युद्धस्थल में रुधिर की धारा बह निकली। उस समय घोड़ों के खुरों की धूल आकाश में छा गई, जिससे दिन में भी अंधकार जैसा हो गया। कहीं योद्धा लोग एक दूसरे का नाम लेकर उनको ललकार रहे थे। रथों के चलने की, हाथियों की घंटियों की, उनके चिघाड़ने की, धनुषों की टंकार की तथा योद्धाओं की गर्जना की महान् ध्वनि हो रही थी। इस समय तलवार, कुन्त, मुद्गर, लोहदंड आदि शस्त्रों से सैकड़ों योद्धाओं के शिर चूर्ण हो गये। कई एक की कमर टूट गई। कहीं योद्धा, कहीं हाथी तथा कहीं रथ टूटे पड़े थे। आकाश में तलवार आदि चमकीले शस्त्रों के कारण बिजली सी चमक रही थी।

उस समय ऐसा भारी युद्ध हो रहा था कि किसी को भी अपने-पराये की सुधि नहीं थी। कहीं पृथ्वी पर आंतें पड़ी थीं, कोई बालों को फैलाये मूर्छित पड़ा था, कोई किसी के केशों को पकड़कर मार रहा था, कहीं शिर कट जाने



बिम्बसार के सेना पति जम्बू कुमार का सिंहल के राजा के साथ आकाश युद्ध

र भी योद्धाओं के कबन्ध हाथ में शस्त्र लिये युद्ध कर रहे थे। उस समय कुमार जम्बूस्वामी व्योमगति विद्याधर के विमान पर बैठकर रत्नचूल के साथ आकाश में युद्ध करने लगे। जम्बूस्वामी ने रत्नचूल का विमान तोड़ दिया, जिससे वह भूमि पर गिर गया। तब कुमार ने नीचे आकर रत्नचूल को बाँध लिया। राजा के पकड़े जाने पर उसकी सेना भाग गई। तब राजा मृगांक तथा उसकी ओर के विद्याधर जम्बूकुमार की प्रशंसा करने लगे। वह बोले—

"हे महाबुद्धिमान्, कामदेव के रूप को जीतने वाले कुमार आप धन्य हैं। आज आपने क्षत्रियधर्म के ऐश्वर्य को भली प्रकार प्रकट कर दिया।"

इस समय केरल नरेश मृगांक की सेना में जीत के बाजे बजने लगे। व्योमगति ने राजा मृगांक को जम्बू-कुमार का यथार्थ परिचय देकर उनका आपस में घनिष्ठ प्रेम करा दिया। वंदीजन कुमार के यश का गान करने लगे।

अब राजा मृगांक ने अन्य राजाओं को साथ लिये हुए बाजों की ध्वनि के साथ जम्बूकुमार को केरल नगरी के भीतर प्रवेश कराया। कुमार की सवारी का नगर में अत्यधिक आदर किया गया। नगर की युवतियों ने उनके ऊपर पुष्पों की वर्षा की। अनेक स्त्रियाँ हर्ष के मारे मंगल गीत गाने लगीं। तब वह आपस में कहने लगीं—

'हे सखि! देख तो सही, यही वह प्रतापी जम्बूकुमार हैं, जिन्होंने लीलामात्र में सिंहल-नरेश रत्नचूल को बांध लिया।"

कोई सखी कहने लगी 'यह जम्बूकुमार सदा जीते रहें। इन्होंने शत्रुओं को मारकर हमारे सौभाग्य की रक्षा की है। इस सिंह की माता तथा सेठ अर्हद्दास की पत्नी जिनमती देवी धन्य है, जिसने अपने गर्भ में दस मास तक इसे रखा। वह राजा श्रेणिक धन्य है, जिनकी सेवा ऐसे वीर योद्धा करते है कि अकेले ने ही सहस्रों योद्धाओं के छक्के छुड़ा दिये।

इस प्रकार जम्बू-स्वामी का जुलूस राजमहल के तोरण के पास पहुँचा। वहां अनेक प्रकार के रत्नों तथा मोतियों की अपूर्व शोभा की गई थी। कुमार कुछ देर तक उस शोभा को देखकर फिर धीरे-धीरे राजमन्दिर के भीतर गये। जम्बू-

कुमार को जो भी देखता था आनन्द से भर जाता था। राजा मृगांक ने जम्बू-कुमार की सेवक के समान सेवा की। राजमहल में उनको स्नान आदि कराकर भोजन कराया गया।

इसके पश्चात् दयावान् कुमार ने राजा मृगांक की सभा में बैठकर रत्नचूल विद्याधर को बन्धनमुक्त किया। वह रत्नचूल से बोले—

"हे विद्याधर! युद्ध में जय-पराजय तो होती ही है। युद्ध करना क्षत्रियों का धर्म है। इसमें आपको खेद नहीं करना चाहिये। अब आप सुखपूर्वक अपने घर जावें और राजा मृगांक के साथ प्रेम भाव बनाये रखें।"

इस पर राजा रत्नचूल बोला–

"हे स्वामी! अब कुछ दिन मुझे यहीं ठहरने की अनुमति दें, क्योंकि मैं आपके साथ चलकर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के दर्शन करना चाहता हूं।"

इस पर कुमार बोले—

"जैसी आपकी इच्छा!"

४८

केरल-राजकुमारी से विवाह

अब राजा मृगांक ने जम्बूकुमार के साथ-साथ राजा रत्नचूल का भी आतिथ्य किया। वह सब कुछ दिन वहां ठहर कर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार से मार्ग में मिलने तथा उनके साथ विलासवती का विवाह करने के लिये अत्यंत समारोह-पूर्वक चले। राजा रत्नचूल भी अत्यंत भक्तिभाव से भरा हुआ उनके साथ चला। उनके साथ पांच सौ विद्याधर भी अपने-अपने बिमानों पर चढ़कर चले। व्योममति विद्याधर अत्यंत प्रसन्न होकर अपने विमान पर बैठकर कुमार के पीछे-पीछे चला। आकाश विमानों से छा गया। चलते-चलते वह सब उस कुरल पर्वत पर आये जहां सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार अपनी सेना तथा राजमण्डल के साथ विराजमान थे।

जब कुरल पर्वत सामने दिखलाई देने लगा तो व्योमगति ने मृगांक से कहा—

"मेरी सम्मति में हमको अपने विमानों को इसी स्थान पर आकाश में रोककर प्रथम सम्राट् से जाकर मिल आना चाहिये।"

"आपका यह प्रस्ताव बहुत सुन्दर है" कह राजा मृगांक ने भी अपने बिमान को आकाश में ही रोक दिया।

तब व्योमगति तथा मृगांक के साथ-साथ रानी मालतीलता, सेनापति जम्बूकुमार तथा राजा रत्नचूल भी विमानों से उतर कर उनके साथ हो गये। वह सब जम्बूकुमार को आगे करके उस स्थान पर पहुँचे, जहां कुरल पर्वत पर सम्राट श्रेणिक बिम्बसार अपने शिविर में राज-सभा जोड़े हुए विराजमान थे। जम्बूकुमार नें द्वारपाल से सूचना दिलवाए बिना ही उनके साथ सभा में प्रवेश किया। जम्बूकुमार के साथ जब उन चारों नें सम्राट् की सभा में प्रवेश किया

तो वह उनके इन्द्र के समान ऐश्वर्य को देखकर अत्यंत आश्चर्य करने लगे। सम्राट् उनको दूर से आते देखकर सिंहासन से उठ खड़े हुए और बोले—

"आओ जम्बूकुमार ! आज तुमको बहुत समय आज के बाद देखकर हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है।"

इस पर जम्बूकुमार को बोलने का अवसर न देकर व्योमगति बोला—

"देव ! मुझे तो आप पहचान गये होंगे। मेरा नाम व्योमगति विद्याधर है। मैं ही कुमार को आपकी राजसभा से अपने साथ अकेले ले गया था।"

इस पर सम्राट् बोले—"हां, आपको तो हमने पहचान लिया। किन्तु आप लोग वहां क्या-क्या कर आए और यह महानुभाव कौन हैं ?"

इस पर व्योमगति बोला—देव, जम्बुकुमार के दाहिने हाथ पर यह मुकुटबन्द राजा मृगांक हैं, जिनकी पुत्री विलासवती के साथ आपका वाग्दान हो चुका है। इनके पीछे उनकी पटरानी महारानी मालतीलता हैं। जम्बूकुमार के बाएं हाथ पर यह मुकुटबन्द नृपति सिंहल-नरेश राजा रत्नचूल हैं।"

इस पर सम्राट् बोले—

"अच्छा, आप इन सब लोगों को यहीं लिवा लाये। आप लोग इन सिंहासनों पर विराजें।"

सम्राट् के यह कहने पर सब लोग अपने-अपने योग्य आसनों पर बैठ गये। राजा मृगांक तथा राजा रत्नचूल ने अनेक मोतियों तथा मणियों की भेंट सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार को दी। तब सम्राट् ने व्योमगति से कहा—

"हमको आप अपने राजगृह से चलकर यहां तक आने का वृत्तान्त तो सुनावें।"

इस पर व्योमगति बोला—

"सम्राट् ! वह सारा वृत्तान्त तो जम्बूकुमार के अलौकिक पराक्रम का ही वृत्तान्त है। जब मैं इनको अपने विमान पर लेकर केरल पहुँचा तो राजा रत्नचूल के शिविर पर आकर इन्होंने मुझसे विमान रोक देने को कहा। विमान से उतर कर यह अकेले ही राजा रत्नचूल से जाकर मिले। इन्होंने राजा रत्नचूल

को युद्ध न करने का परामर्श दिया, किंतु उसने इनकी बात न मानकर अपनी राजसभा में ही इनके ऊपर सैनिकों को आक्रमण करने की आज्ञा दी। इस प्रकार युद्ध आरंभ होने पर जम्बूकुमार ने उसी प्रकार राजा रत्नचूल के आठ हजार सैनिकों को अकेले ही मार डाला, जिस प्रकार दण्डकबन में राम ने अकेले ही खर-दूषण के चौदह सहस्र राक्षसों को दो मुहूर्त में नष्ट कर दिया था। इस संवाद को पाकर यह राजा मृगांक भी अपने दुर्ग से सेनासहित निकल कर राजा रत्नचूल की सेना के साथ युद्ध करने लगे। अन्त में जम्बूकुमार ने राजा रत्नचूल को बांध लिया। केरलवासियों ने अपने मुक्तिदाता जम्बूकुमार का बड़ा भारी स्वागत किया। केरल की राजसभा में आकर जम्बूकुमार ने राजा रत्नचूल को छोड़कर उसकी राजा मृगांक के साथ मित्रता करादी। अब यह सब लोग आपके दर्शन के लिये तथा आपके साथ राजकुमारी विलासवती का विवाह करने आये हैं। हम पांचों यहां आ गये। हमारे शेष साथी आकाश में विमानों पर हैं।"

इस पर सम्राट् ने उठकर जम्बूकुमार को छाती से लगाकर कहा—

"कुमार! तुम्हारे पुरुषार्थ को धन्य है तुम्हारे माता-पिता को धन्य है, जो तुमने सुदूर दक्षिण में जाकर भी मगध के नाम को चमकाया।"

फिर उन्होंने राजा मृगांक की ओर देखकर कहा—

"आप अपनी सेना आदि को आकाश से उतार कर विश्राम करने की आज्ञा दें।"

इस पर व्योमगति बोला—

"यह कार्य मैं करूंगा सम्राट्!"

यह कहकर व्योमगति वहां से चलकर अपने विमान में आये। उन्होंने सभी विमानों को नीचे उतार कर एक ओर ठहरने की आज्ञा दी।

अब उत्तर तथा दक्षिण की सेनायें कुरल पर्वत पर आमने-सामने पड़ाव डाल कर ठहर गईं। विद्याधरों की सेनाएं मगध की सेनाओं के पास ही थीं; अतः दोनों सेनाओं को एक दूसरे की शोभा देखने का पूरा अवसर मिलता था।

विद्याधरों की सेनाओं में रनवास की शोभा देखने ही योग्य थी। महारानी मालतीलता बड़े उत्साह से विवाह की तैयारी कर रही थीं। जिस वस्तु की कमी प्रतीत होती उसको विमान द्वारा तत्काल मंगवा लिया जाता था।

राजा मृगांक ने विवाह के लिये एक अत्यन्त भव्य मण्डप बनवाया। उसमें शुभ मुहूर्त में उन्होंने अपनी कन्या विलासवती का विवाह सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के साथ अत्यन्त समारोहपूर्वक कर दिया। इस विवाह से विद्याधरों को बड़ा हर्ष हुआ। केरल महिलाओं ने तो विवाह के गीतों से उस उत्सव की शोभा को और भी अधिक बढ़ा दिया। इस विवाह के कारण राजा मृगांक की राजा रत्नचूल के साथ और भी गहरी मित्रता हो गई।

विवाह के उपरान्त सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार ने सभी विद्याधरों का यथोचित सम्मान करके उन्हें बिदा कर दिया। इस प्रकार राजा मृगांक अपनी पटरानी सहित केरल चले गये, राजा रत्नचूल सिंहल को चला गया और व्योमगति विद्याधर भी अपने जीजा के कार्य को सफल कर अपने को कृतकृत्य मानता हुआ अपने निवासस्थान को चला गया।

उन सबके चले जाने पर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार भी जम्बू कुमार के सेनापतित्व में अपनी सम्पूर्ण सेनाओं को लेकर कुरल पर्वत से मगध देश की ओर वापिस लौटे। मार्ग मे उन्होंने विन्ध्याचल पर्वत के जंगलों की शोभा का खूब आनन्द लिया। राजा बिम्बसार मार्ग में नवीन वधू के साथ वार्तालाप करते हुए जा रहे थे। हाथियों के समूहों को देखते हुए, सिंहिनी की पतली कमर की शोभा पर दृष्टि करते हुए, बंदरों की चंचलता पर हंसते हुए, कोकिल की मधुर ध्वनि से अपनी नवीन वधू के स्वर की तुलना करते हुए उन्होंने विन्ध्याचल को पार किया। सरोवरों के ऊपर हंस, बगुलों तथा चकोरों की शोभा को देखते हुए तथा चातक की कर्णप्रिय ध्वनि को सुनते हुए उन्होंने विन्ध्याटवी को पार कर उत्तर की ओर अपनी सेनाओं को बढ़ाया। इस प्रकार मार्ग के वन, पर्वत तथा सरोवरों आदि की शोभा देखते हुए राजा श्रेणिक बिम्बसार दक्षिण की यात्रा समाप्त कर वापिस राजगृह आये।

केरल-राजकुमारी से विवाह

राजा श्रेणिक राजगृह के पास आये तो उन्होंने नगर के बाहिर अपने उपवन में मुनियों के उपदेश का शब्द सुना। उपदेश का शब्द सुनते ही राजा ने अपनी समस्त सेना को जहां-का-तहां ठहरा दिया। वह अपनी नई रानी विलासवती सहित अपने वाहनों से उतर कर उपवन में गये। वहां भगवान् महावीर स्वामी के पांचवें गणधर सुधर्माचार्य अपने पांच सौ शिष्य मुनियों से वेष्ठित जनता को धर्मोपदेश दे रहे थे। सम्राट् श्रेणिक तथा सेनापति जम्बूकुमार ने कुछ देर उनका उपदेश सुना। फिर वह उनकी वन्दना करके अपनी सेना में आ गये। इसके पश्चात् वह सेनासहित नगर में प्रवेश करके अपने घर गये। जम्बूकुमार के माता-पिता जम्बूकुमार से मिलकर बहुत प्रसन्न हुए।

४६

जम्बूकुमार का विवाहोत्सव

जम्बूकुमार सम्राट् से विदा होकर अपने घर चले तो आये किन्तु सुधर्माचार्य के दर्शन से उनके मन में एक अन्तर्द्वन्द्व मच गया। वह सोचने लगे---

"कहां तो मैं एक धनिक सेठ का पुत्र, कहां यह मेरा अपूर्व धनुषधारीपना, विश्वविजयिनी मगध सेना का सेनापतित्व और वह भी एक वणिक-पुत्र को ! यह पूर्व जन्म के विशाल पुण्योदय के बिना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं था। यदि पिछले जन्म का पुण्य मुझ को इस जन्म में इतने बड़े पद पर पहुंचा सकता है तो इस जन्म के पुण्य से तो मैं निश्चय से इसी जन्म में मुक्ति प्राप्त कर सकूंगा। फिर मेरे मन में मुनिवर श्री सुधर्माचार्य के लिये कुछ मोह जैसा क्यों उत्पन्न हो रहा है ? जो प्रेम मेरा माता तथा पिता में भी नहीं, "वही श्रद्धापूर्ण मेरा प्रेम उन मुनिवर में क्यों है? "

दिन भर इसी प्रकार विचार करने के उपरान्त जम्बू कुमार मध्याह्नोत्तर समय में श्री सुधर्माचार्य के पास पहुँचे। उन्होंने उनके पास जाकर निवेदन किया--

"भगवन् ! मेरे हृदय में एक संदेह उत्पन्न हुआ है। कृपा कर उसका निवारण कीजिये। मेरे हृदय में वैराग्य भावना का उदय हो रहा है। मेरा मन दीक्षा लेने को हो रहा है। फिर भी मेरे मन में आपके प्रति एक विशेष प्रकार के ममत्व का भाव उत्पन्न हो रहा है। कृपा कर मुझे बतलावें कि इसका कारण क्या है ?"

भगवान् महावीर के गणधर श्री सुधर्माचार्य ने जम्बूकुमार के यह वचन सुनकर उसनें कहा---

"मगध साम्राज्य के प्रतापी सेनापति जम्बू कुमार ! तुम आसन्न भव्य हो। तुमको इसी जन्म में मोक्ष जाना है। मेरा तुम्हारा पिछले जन्म का भाई का सम्बन्ध है। इसलिये तुम्हारी मेरे अन्दर प्री।ति है।"

सुधर्म स्वामी के यह वचन सुन कर जम्बू कुमार बोले—

"तब तो भगवन् आप मुझे जैनेश्वरी दीक्षा देकर मुनि बना लेने की कृपा करें।"

इस पर सुधर्माचार्य ने उत्तर दिया—

"वत्स ! तुमको निश्चय से मुनि बनना है । किन्तु तुम्हारा अभी कुछ थोड़ा-सा सांसारिक भोग शेष है । तुम अपने माता-पिता से दीक्षा लेने की अनुमति ले लो तो तुम्हारा वह भोग भी समाप्त हो जावेगा । तुम उनकी अनुमति लेकर हमारे पास दीक्षा लेने आना ।"

सुधर्माचार्य के यह वचन सुनकर जम्बू स्वामी के मन में और भी दृढ़ वैराग्य हो गया । किन्तु वह मन में विचार करने लगा कि "यदि मैं अपने आंतरिक हठ के कारण घर नहीं जाता हूँ तो गुरु की आज्ञा का उल्लंघन होगा । अतः मुझे शीघ्र ही अपने घर जाना चाहिये । वहाँ से लौटकर मैं अवश्य ही दीक्षा ग्रहण करूँगा ।"

ऐसा निश्चय करके जम्बू कुमार सुधर्माचार्य को नमस्कार करके अपने घर को चला गया । घर आकर उसने प्रथम अपनी माता से अपने मन की बात इस प्रकार कही—

"हे माता ! मुझे इस संसार-बन्धन से अब घृणा हो रही है । गृहस्थ जीवन मुझको काले नाग के समान प्रतीत हो रहा है । मैं अब घर का त्याग करके मुनिव्रत ग्रहण करना चाहता हूँ ।"

अपने बेटे के इन शब्दों को सुनकर सेठानी जिनमती को बहुत दुःख हुआ । वह अत्यधिक उदास होकर उससे बोली—

"हे पुत्र ! तुमको वज्र से भी कठोर इस प्रकार के वचन मुझसे नहीं कहने चाहियें थे । तुम्हारे मन में इस प्रकार के विचार अकस्मात् कहाँ से आ गये । मैं इसका कारण जानना चाहती हूँ ।"

इस पर जम्बू कुमार बोले—

"माता ! सुधर्म स्वामी के दर्शन करके मेरे मन में दीक्षा लेने की इच्छा

उत्पन्न हुई है। मैंने उनसे दीक्षा देने की प्रार्थना की थी, किन्तु उन्होंने मुझे आदेश दिया कि मैं माता-पिता की अनुमति लेने के उपरान्त ही दीक्षा लूँ। अतएव माता! तुम मेरे कल्याण के मार्ग में बाधक न बनकर मुझे अपना भावी जीवन बनाने की अनुमति दो।"

कुमार का यह वचन सुनकर उनकी माता ने उत्तर दिया—

"अच्छा बेटा! मैं इस विषय में तुम्हारे पिता से परामर्श करके तुम्हारे इस प्रश्न का उत्तर दूँगी।"

कुमार से यह कहकर सेठानी जिनमती ने अपने पति सेठ अर्हद्दास को कुमार के साथ अपने सारे वार्तालाप का समाचार सुनाया। सेठ अर्हद्दास अपनी पत्नी के द्वारा जम्बूकुमार के जिन-दीक्षा लेने के समाचार को सुनकर ऐसे दुःखी हुए कि उनको मूर्छा आ गई। सेठानी ने जब उनको शीतोपचार आदि के द्वारा होश में किया तो वह इस विषय पर विचार करके अत्यधिक चिन्ता में पड़ गये। अन्त में उन्होंने जम्बूकुमार के दीक्षा लेने के समाचार को समुद्रदत्त आदि उन चारों सेठों से कहलवा दिया, जो कि अपनी पुत्रियों का विवाह जम्बूकुमार के साथ करना चाहते थे और जिनके प्रस्ताव को सेठ अर्हद्दास स्वीकार भी कर चुके थे। सेठ अर्हद्दास ने उनसे कहलाया कि 'यद्यपि आपका सम्बन्ध हमको बड़े भाग्य से मिला था, किन्तु हमारे दुर्भाग्यवश अब कुमार के दीक्षा लेने का निश्चय उसमें एक भारी विघ्न बनकर खड़ा हो गया है। आप इस विषय में जो कुछ उचित समझें करें।"

वे चारों सेठ भी इस समाचार को सुनकर बड़े दुःखी हुए। उन्होंने प्रथम आपस में परामर्श करके फिर अपनी पुत्रियों को एक स्थान में एकत्रित करके घर के अन्दर जाकर अपनी-अपनी कन्याओं को यह समाचार सुनाकर कहा—

"हे बेटी! तुम मन, वचन तथा कर्म से कुल-का-धर्म तथा शील-व्रत का पालन करने वाली हो। किन्तु समाचार मिला है कि जम्बूकुमार भोगों से उदास हो गये हैं और मोक्ष प्राप्ति के लिये तप करने के उद्देश्य से मुनिव्रत लेना

चाहते हैं। तुम जम्बूकुमार का विचार अपने मन से निकाल दो। तुम्हारे लिये दूसरा वर देख लिया जावेगा।"

पिता के इन वचनों को सुनकर वे कन्यायें इस प्रकार कांपने लगीं, जिस प्रकार कोई योगी प्रमाद से प्राणि-हत्या हो जाने पर कांपने लगता है। तब उनमें से पद्मश्री बोली—

"आपको ऐसे लज्जाकारी अशुभ वचन अपने मुख से नहीं कहने चाहियें। महात्मा लोग प्राण जाने पर भी लोक-मर्यादा को नहीं तोड़ते। मेरे तो एक जम्बू कुमार ही पति हैं। उनके अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति मेरा पति नहीं हो सकता। आप जम्बूकुमार से कहकर मेरा विवाह करा कर मुझे उनसे केवल एक रात वार्तालाप करने का अवसर दिला दें। मैं यत्न करूँगी कि वह दीक्षा न लेकर घर में ही रहें, किन्तु यदि मेरा यत्न निष्फल गया और वह दीक्षा लेने के विचार से न हटे तो फिर मैं भी उनके मार्ग का ही अनुसरण करूँगी।"

कनकश्री, विनयश्री तथा सत्यश्री ने भी पद्मश्री की बात का अनुमोदन करके अपने-अपने पिता से यही अनुरोध किया।

अपनी-अपनी पुत्रियों के इन वचनों को सुनकर उन चारों सेठों ने एक दूत के द्वारा यह सारा समाचार सेठ अर्हद्दास के पास कहला भेजा। इस वार्तालाप में दिन छिप गया। तब सायंकाल के समय सेठ अर्हद्दास ने जम्बूकुमार को अपने पास बुला कर कहा—

"बेटा! तुम्हारा दीक्षा का विचार इतना दृढ़ है कि तुम्हारे मार्ग में हम अधिक बाधा डालना नहीं चाहते। किन्तु तुमको पता है कि हम सागरदत्त आदि चार सेठों की पुत्री पद्मश्री, कनकश्री, विनयश्री तथा रूपश्री के साथ तुम्हारा विवाह करने का वचन दे चुके हैं। हमने उन चारों सेठों से प्रार्थना की थी कि वह हमको हमारे दिये हुए वचन से मुक्त कर दें, किन्तु उन चारों कन्याओं ने अपने-अपने पिता के द्वारा हमसे कहलवाया है कि जम्बूकुमार कल हमारे साथ विवाह करके हमको रात भर अपने साथ वार्तालाप करने का अवसर

दें और फिर अगले दिन जैसा उचित समझें करें। बेटा ! हमारी इच्छा है कि तुम चारों श्रेष्ठिपुत्रियों की इच्छा की पूर्ति करो और अपने दीक्षा लेने के कार्यक्रम को एक दिन के लिये और स्थगित कर दो।"

पिता के इन वचनों को सुनकर जम्बूकुमार कुछ सोच में पड़ गये। थोड़ी देर सोच-विचार कर वह बोले—

"अच्छा पिता जी ! मैं आपकी इस आज्ञा का पालन करूँगा। आप शोक न करें।"

सेठ अर्हदास जम्बूकुमार के इन शब्दों को सुनकर अत्यधिक प्रसन्न हो गये। उन्होंने उसी समय चारों सेठों को यह समाचार भेज दिया। अब तो सेठ अर्हदास तथा उन चारों सेठों के घरों में मांगलिक बाजे बजने लगे। युवती स्त्रियां प्रसन्न हो-हो कर मंगलगीत गाने लगीं।

सेठ अर्हदास ने अगले दिन प्रातःकाल बारात सजाकर जम्बूकुमार को घोड़े पर चढ़ाया। वह विवाह के योग्य सब सामग्री साथ में लेकर बारात लेकर चले। मार्ग में वंदीजन कुमार का यशगान करते जाते थे। नगर के नरनारी स्थान-स्थान पर कुमार को देखकर प्रसन्न हो रहे थे। शनैः शनैः कुमार सागरदत्त सेठ के भवन पर पहुंचे। वहां वह घोड़े से उतर कर विवाह-मण्डप में जाकर चुपचाप बैठ गये। अब विवाह-कार्य आरंभ किया जाने लगा। कुमार ने अपनी इच्छा के विरुद्ध भी पद्मश्री आदि चारों कन्याओं का पाणिग्रहण करने के लिये अपना हाथ दे दिया। विवाह के उपरान्त उनके चारों श्वशुरों ने उनको हर्षपूर्वक स्वर्ण-रत्न आदि की प्रचुर सामग्री यौतुक में दी। हाथी, घोड़े, धन, धान्य, दासी, दास सभी प्रकार की वस्तुएं यौतुक में दी गईं। जम्बूकुमार उन चारों कन्याओं के साथ गठजोड़ बांधे हुए उनको लेकर उसी दिन वापिस अपने घर आ गये।

सेठ अर्हदास ने चारों बहुओं के अपने घर आ जाने पर उस समय के योग्य सभी कार्य किये। जिसको जो कुछ देना था, उन्होंने बड़े स्नेह से दिया। सेठानी जिनमती ने भी अपनी सखियों तथा अन्य सम्मान्य महिलाओं को बड़े-बड़े उपहार दिये। बारात में जो-जो भी आये थे, सभी का यथायोग्य सम्मान किया

गया। इस सारे कार्य में पूरा दिन व्यतीत हो गया और रात्रि हो जाने पर सबके सोने का समय हो गया। सभी बाराती वहां से विदा होकर अपने-अपने स्थान पर सोने चले गये। उधर सखियों ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कुमार को एक एकांत भवन में उनकी चारों पत्नियों के साथ बिठला दिया।

उस समय घर की शोभा अत्यधिक बढ़ी-चढ़ी हुई थी। चारों ओर सुन्दर प्रकाशमान दीपक जल रहे थे। कमरे में बहुत सुन्दर पलंग बिछे हुए थे, जिनके ऊपर दूध के समान सफेद चादरों के ऊपर पुष्पों की चादर बिछी हुई थी। शय्याओं के ऊपर स्वर्णजटित कौशेय वस्त्र के चंदोवे तने हुए थे और उनके चारों ओर फूलों के ही पर्दे लगे हुए थे। उनमें बीच का पलंग बहुत बड़ा था। जम्बूकुमार उसके ऊपर अपनी चारों पत्नियों के साथ विरक्त भाव से बैठ गये। उस समय उनके मन में वैराग्य के उच्चकोटि के विचार आ रहे थे। अतएव वह उस कामदेव के मन्दिर में भी उस कमल के पत्र के समान थे, जो जल में रहता हुआ भी जल से पृथक् रहता है। वह मौन थे। अपनी रति के समान रूपवाली उन चारों पत्नियों की ओर भी उनका ध्यान नहीं था। वह तरंगरहित समुद्र के समान निश्चल बैठे हुए थे।

उनकी पत्नियों ने जो उनको निर्विकार भाव से बैठे देखा तो उन्होंने आपस में इंगित द्वारा परामर्श करके प्रथम आपस में ही कामोत्तेजक वार्ताएं आरंभ कीं। जब कुमार पर उनके वार्तालाप का भी कोई प्रभाव न पड़ा तो उन्होंने क्रमशः अपने वस्त्रों को खिसका कर अपने अंगों को थोड़ा बहुत दिखलाना आरंभ किया। वह कभी हंसतीं तथा कभी अपने हावभाव को प्रदर्शित करती थीं, उन्होंने कर्णमधुर एवं कामोत्तेजक अनेक राग भी गाये। किन्तु जम्बूकुमार पर उनका लेशमात्र भी प्रभाव न पड़ा। उन्होंने अनेक प्रकार की काम-चेष्टाओं से इस बात का यत्न किया कि जम्बुकुमार का मन किसी प्रकार विचलित हो जावे, किन्तु ज्यों-ज्यों उनकी कामचेष्टाएं बढ़ती जाती थीं, जम्बूकुमार के मन में वैराग्य भी उसी मात्रा में बढ़ता जाता था।

जम्बूकुमार तथा उनकी चारों पत्नियों के उस समय के आचरण को भगवान् महावीर स्वामी अथवा गौतम बुद्ध के ऊपर की हुई काम की चढ़ाई से भी उपमा नहीं दी जा सकती। कारण कि उस समय वह दोनों ही महानुभाव ध्यान में थे, जब कि जम्बूकुमार अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार उनके सामने नेत्र खोले बैठे थे। वह अत्यन्त धैर्यपूर्वक कामदेव के इस भयंकर आक्रमण को सहन कर रहे थे, जिसमें उनकी चारों पत्नियां उनको पराजित करने का संकल्प कर चुकी थीं। जम्बुकुमार की चारों पत्नियों ने काम-चेष्टाएँ दिखलाने के पश्चात् उनको अनेक प्रकार की कथाएं सुनाकर भी भोगों की ओर प्रेरित करने का यत्न किया, किन्तु कुमार ने उनकी प्रत्येक बात का उत्तर देकर उनको भी त्यागमय जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा की।

५०

विद्युच्चर

राज्य का प्रत्येक व्यक्ति इस बात से आश्चर्यचकित था कि राज्यकोष में चोरी किस प्रकार हो जाती है। सुदूर दक्षिण के पोटनपुर नरेश विद्युद्राज एक अत्यन्त कुशल शासक थे। वे राज्य के प्रत्येक कार्य की स्वयं देखभाल करते थे। जिस समय उनको पता चला कि राज्यकोष में से कुछ रत्न चोरी गये हैं तो वह यही समझे कि उसका कारण कोषाध्यक्ष का प्रमाद होगा। उन्होंने राज्य-कोषागार के चारों ओर पहरा अधिक कड़ा कर दिया। राजसभा समाप्त होने पर उन्होंने राज्यकोष के सभी तालों को स्वयं बन्द किया। फिर, वह प्रहरियों को दुगनी संख्या में पहरे पर नियुक्त करके अपने राजभवन में जा सोये। रात को भी वह कई बार राज्यकोष की ओर यह देखने को आये कि कहीं कोई प्रहरी अपने कर्तव्यपालन में उदासीन तो नहीं है। किन्तु जब उन्होंने अगले दिन राज्यकोष को स्वयं खोला तो उनको यह देखकर अत्यधिक आश्चर्य हुआ कि उसमें से फिर भी कुछ रत्न गायब थे।

महाराज विद्युद्राज सोचने लगे—

"यह कैसा विचित्र चोर है जो चोरी ऐसी सावधानी से करता है कि हम उसको किसी भी प्रकार पकड़ने में असमर्थ हैं, फिर भी वह राज्यकोष की सारी सम्पत्ति न लेकर कुछ गिने-चुने रत्न ही क्यों ले जाता है? वह दो बार राज्यकोष में चोरी कर चुका, किन्तु हम उसकी परछाईं तक न पा सके। अच्छा, आज सारे तालों को तथा सारे प्रहरियों को बदल डालें। फिर देखेंगे कि वह किस प्रकार चोरी करता है।"

आज का दिन समाप्त होने पर राजा विद्युद्राज ने राज्यकोष के सभी तालों को बदल कर स्वयं लगाया और सारे प्रहरियों को भी बदल दिया।

किन्तु अगले दिन जब उन्होंने राज्यकोष की फिर संभाल की तो उन्होंने फिर उसमें से कुछ रत्नों को गया हुआ पाया।

अब राजा के धैर्य की सीमा न रही। उनको विश्वास हो गया कि या तो यह चोरी किसी मनुष्येतर देवजाति के व्यक्ति द्वारा की गई है, अथवा चोर कोई ऐसा सिद्ध पुरुष है जो हमको केवल अपना परिचय देने के लिये थोड़े-थोड़े रत्नों को दैनिक चुरा लेता है।

यह सब सोचकर राजा ने राजसभा के भर जाने पर उच्च स्वर से कहा—

"आप सब लोग जानते हैं कि राज्यकोष में तीन दिन से बराबर चोरी हो रही है, फिर भी हमारे राज्य की सारी शक्ति चोर का पता लगाने में पूर्णतया असफल प्रमाणित हुई है। चोर थोड़े-थोड़े रत्न दैनिक चुराता है, यदि वह चाहता तो सारे राज्यकोष को खाली कर सकता था, इससे पता चलता है कि चोर की नियत चोरी करने की नहीं, वरन् अपनी कला का प्रदर्शन करने की है। हम घोषणा करते हैं कि यदि चोर स्वयं हमारे पास आकर अपना अपराध स्वीकार कर लेगा, तो हम उसके सारे अपराध को क्षमा करके उसे मुंहमांगा वर देंगे।"

यह कहकर राजा समस्त सभासदों की ओर देखने लगे। किन्तु उनमें से कोई भी अपने स्थान से हिलता हुआ दिखाई नहीं दिया। अन्त में युवराज विद्युच्चर ने आकर महाराज के चरणों में प्रणाम करके कहा—

"पिताजी ! यदि अपराध क्षमा करें तो मैं एक बात कहना चाहता हूँ।"

इस पर राजा बोले—

"तुम्हारे तो बेटा मैं प्रत्येक अपराध को क्षमा करता हूँ, तुमको जो कुछ कहना हो तुम बेखटके कहो।"

इस पर विद्युच्चर बोला—

"पिताजी ! राज्यकोष का वास्तविक चोर मैं हूँ।"

"तो तुमने चोरी क्यों की बेटा !"

"अपनी कला की परीक्षा करने के लिये पिता जी !"

"क्या कहा ! कला की परीक्षा करने के लिये ? क्या चोरी करना भी एक कला है ?"

"पिता जी ! चोरी करना संसार में सबसे बड़ी कला है। मैंने इस कला का यथावत् अध्ययन करके उसके सहायक मोहन, स्तंभन तथा वशीकरण के मंत्र-तंत्रों के साथ लोपाञ्जन को भी सिद्ध लिया है। यद्यपि मुझे द्रव्य की कोई आवश्यकता न थी, किन्तु मैंने केवल अपनी कला की परीक्षा के लिये राज्यकोष में चोरी की थी।"

"धन्य है बेटा ! तुम अपनी कला के सर्वोत्तम विद्वान् सिद्ध हो गये। किन्तु बेटा ! बस अब कभी चोरी न करना। अब हम अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार तुमको एक वर देंगे। तुमको जो कुछ मांगना हो मांग लो।"

"पिता जी ! जो आप मुझ पर वास्तव में प्रसन्न हैं तो मुझे यह वरदान दीजिये कि मुझे राज्य के उत्तराधिकार तथा राज्य के निवासस्थान दोनों से छुट्टी दी जावे।"

"तुम ऐसा विचित्र वरदान क्यों मांगते हो वत्स ?"

"जिससे मैं देशान्तर में जाकर चोरी कर सकूं पिता जी !"

"तुम चोरी क्यों करना चाहते हो पुत्र ! तुमको किस चीज की घर में कमी है।"

"पिता जी ! चोर किसी कमी के कारण चोरी नहीं किया करता, वह तो अपने व्यसन के कारण चोरी किया करता है। मैं अपनी कला का प्रदर्शन भारत के सभी देशों में करना चाहता हूँ।"

"इससे यह लोक और परलोक दोनों ही बिगड़ेंगे बेटा !"

"कुछ भी हो, पिता जी, अब तो मैं चोरी करना नहीं छोड़ सकता।"

"बेटा ! तुम चाहो तो मैं आज ही तुमको यह समस्त राज्य दे सकता हूँ, किन्तु तुम चोरी करना छोड़ दो।"

"पिता जी ! चोरी करना तो मैं किसी प्रकार भी नहीं छोड़ सकता, क्योंकि अब मुझको इस कला में आनन्द आने लगा है। यदि आप चाहें तो मुझे वरदान न दें।"

विद्युच्चर के यह वचन कहते ही राजा चौंक कर क्रोध में भर गये और बोले—

"दुष्ट, तू मेरे नाम को इसी प्रकार उछालना चाहता है? अच्छा जा मर, यदि तू चोर बनकर ही मरना चाहता है तो तेरी इच्छा। तू चाहे जहां जाने के लिये स्वतंत्र है।"

इस प्रकार विद्युच्चर को सांग चौर्यशास्त्र का अध्ययन करने में ऐसा भारी आनन्द आया कि उसने चोरी करने के लिये अपने राज्य को लात मार दी। अपने पिता के राज्य का त्याग करके उसने दक्षिण भारत के सभी राज्यों का भ्रमण किया और उन सभी को अपने चौर्यशास्त्र के अभ्यास के चमत्कार दिखलाये। दक्षिण भारत के चोरों को विजय करके विद्युच्चर मलय पर्वत पर पहुँचा। वहां से वह सिंहलद्वीप जाकर वहां से फिर वापिस केरल देश आया था। फिर उसने चौर्यशास्त्र के व्यसन से कर्णाटक, कम्बोज, कांचीपुर, सह्य पर्वत, महाराष्ट्र आदि में भ्रमण करते हुए विन्ध्याचल के उस पार आभीर देश, कोंकण तथा किष्किन्धा आदि में भी चोरियां की थीं।

इन सब स्थानों का भ्रमण करने के उपरान्त अन्त में वह मगध देश का राजधानी राजगृह में आया। यहां वह कामलता नामक एक वेश्या के यहां ठहरा। राजगृह में भी उसने अनेक धनिकों के यहां चोरियां कीं। सेठ अर्हदास के यहां से भी उसने कई बार स्वर्ण तथा रत्नों की चोरी की। जब जम्बूकुमार का अपनी चारों पत्नियों के साथ विवाह हुआ, उस रात को भी वह सेठ अर्हदास के यहां चोरी करने आया। वह कुमार के शयनागार की ओर आया तो उनके तथा उनकी पत्नियों के वार्तालाप को सुनकर विचारने लगा कि पहले इस कौतुक को देखूँ तो फिर रत्नों की चोरी करूँ। वह चोरी का विचार छोड़कर उनका वार्तालाप सुनने लगा। उसने जो चारों श्रेष्ठिपुत्रियों की काम-चेष्टाओं तथा उनका जम्बूकुमार पर कुछ भी प्रभाव पड़ते न देखा तो उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगा—

"यह कुमार कितना बड़ा धैर्यवान् है। देवांगनाओं के समान सुन्दर ये चारों श्रेष्ठिपुत्रियां इसके मन को लेशमात्र भी नहीं डिगा सकीं।"

विद्युच्चर इस प्रकार विचार कर ही रहा था कि उसने जम्बूकुमार की माता को घबराई हुई घर में इधर-उधर फिरते हुए देखा। वह बार-बार कभी कुमार के शयनागार की ओर जाकर देखती थी कि उसकी बहुएं उसके पुत्र को कुछ मोहित कर सकीं या नहीं।

अचानक दीवार के पास खड़े हुए चोर को देखकर वह भयभीत होकर उससे बोली—

"क्यों भाई तू कौन है ?"

इस पर विद्युच्चर ने उत्तर दिया—

"माता, तेरे घबराने की आवश्यकता नहीं है। मैं विद्युच्चर नामक प्रसिद्ध चोर हूँ। तेरे नगर में मैं नित्य चोरी किया करता हूँ। अब तक मैंने सारे भारत में बहुतों का धन चुराया है। तेरे घर से भी स्वर्ण तथा रत्नों की मैं कई बार चोरी कर चुका हूं। आज भी मैं तेरे घर इसीलिये आया था।"

इस पर जम्बूकुमार की माता बोली—

"हे वत्स ! तुझे जो कुछ चाहिये मेरे घर से ल जा।"

इस पर विद्युच्चर ने उत्तर दिया—

"माता, आज मुझे धन लने की चिन्ता नहीं है। आज तो मुझे इस बात की चिन्ता है कि युवति स्त्रियों के कटाक्षों से इस युवक का मन लेशमात्र भी विचलित क्यों नहीं होता। माता ! मैं इसका कारण जानने को उत्सुक हूँ। अब तू मेरी धर्म बहिन है और मैं तेरा भाई हूं, मुझे तू इस बात का भेद ठीक-ठीक बतला।"

तब सेठानी जिनमती धैर्य धारण करके विद्युच्चर से बोली—

"हे सौम्य ! यह मेरा एकमात्र कुलदीपक पुत्र है। मैंने मोहवश आज इसका इन चारों युवतियों के साथ विवाह कर दिया है, किन्तु यह मन से विरक्त हो चुका है और गृहस्थ छोड़कर मुनि-दीक्षा ग्रहण करने का निश्चय कर चुका है। वह सूर्योदय होते ही मुनि बन जावेगा, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। उसके संभावित वियोग के ध्यान से मेरे हृदय पर भाले चल रहे हैं। मैं इसी कारण घबराई हुई हूं और बार-बार इस घर के द्वार पर आकर देखती हूं कि

कदाचित् मेरी बहुएं मेरे पुत्र को घर में रोकने में समर्थ हो जावेंगी।"

सेठानी जिनमती के वचन सुनकर विद्युच्चर के मन में उसके लिये बड़ी भारी करुणा का उदय हुआ। वह उससे कहने लगा—

"माता ! मैंने सब समाचार जान लिया। तू भय न कर, मुझसे इस कार्य में जो कुछ भी हो सकेगा, मैं करूंगा। तू मुझे किसी प्रकार इस समय कुमार के पास पहुँचा दे। मैं मोहन, स्तंभन, वशीकरण आदि सभी विद्याओं को जानता हूं। मैं इन सब से सहायता लेकर कुमार को घर रोकने का यत्न करूंगा। यदि मैं आज तेरे पुत्र का तेरी बहुओं से संगम न करा सका तो मेरी यह प्रतिज्ञा है कि जो उसकी गति होगी वही मेरी भी होगी।"

विद्युच्चर के इन वचनों को सुनकर सेठानी जिनमती को बड़ा भारी धैर्य बंध गया। उसने विद्युच्चर को बाहिर खड़ा करके जम्बूकुमार के द्वार को धीरे से खटखटाया। उसने अपने हाथ की अंगुली से द्वार पर थपकी ही दी, लज्जावश मुख से कुछ भी नहीं कहा, किन्तु कुमार ने उस शब्द को तुरंत सुनकर किवाड़ खोल दिये। उसने माता को देखकर उसे प्रणाम करके पूछा—

"माता ! आपके इस समय यहां आने का क्या कारण है ?"

इस पर सेठानी ने उत्तर दिया—

"बेटा ! जब तुम गर्भ में थे तो मेरा भाई—तुम्हारा मामा वाणिज्य-व्यापार के लिये विदेश गया हुआ था। आज वह तेरे विवाह का समाचार सुनकर यहां आया है और तेरे दर्शन करना चाहता है। वह बहुत दूर से आया हुआ है। इसलिये तुझको उससे भेंट करनी चाहिये।"

माता के इन वचनों को सुनकर जम्बूकुमार ने कहा—

"माता ! आप मामा जी को यहां शीघ्र बुलवाइये। मैं उनके दर्शन करूंगा।"

इस पर सेठानी विद्युच्चर को लेकर जम्बूकुमार के पास गई। जम्बूकुमार मामा को देखकर पलंग से उठे। वह अत्यंत आदर के साथ उनके गले से लगकर मिले। जम्बूकुमार उनसे बोले—

"मामा ! इतने दिन तक आप कहां-कहां गये थे ? मार्ग में आप कुशल-पूर्वक तो रहे ?"

इस पर विद्युच्चर ने उसके साथ भानजे जैसा व्यवहार करते हुए कहा—

"हे सौम्य ! दक्षिण दिशा में मैं समुद्र तक गया हूं। मैंने चंदन के वृक्षों से पूर्ण ऊंचे मलयागिर पर, सिंहलद्वीप में, केरल देश, द्रविड़ देश, कर्णाटक, काम्बोज, कुन्तलदेश तथा सह्य पर्वत पर जाकर व्यापार किया। फिर मैं महाराष्ट्र गया। वहां से मैंने विदर्भ देश में जाकर व्यापार किया। फिर मैं नर्मदा नदी के तट पर विन्ध्य पर्वत के वनों में पहुंचा। उनको लांघ कर मैं अश्तिरव देश तथा चउल देश होकर भृगुकच्छ के तट पर आया। कोंकण नगर में होकर मैं किष्किन्ध्य नगर आया। फिर वहां से पश्चिम दिशा में जाकर मैंने सौराष्ट्र देश की यात्रा की। वहां मैंने गिरनार पर्वत पर बाईसवें तीर्थंकर भगवान् नेमिनाथ स्वामी की उपासना की। वहां से चल कर मैं भिल्लमाल विशाल देश होता हुआ अर्बुदाचल आया। फिर मैंने महा रमणीक लाट देश को देखा। चित्रकूट के दर्शन करके मैं मालवा देश गया। फिर मैंने उत्तर दिशा में जाकर काश्मीर, कटहार, जालंधर होकर कन्नौज तथा काशी होते हुए अंग, बंग, कलिंग तथा कामरूप देश को देखा। कुमार ! इस प्रकार मैंने समस्त भारतवर्ष का भ्रमण किया है। मैं उसका वर्णन कहां तक करूं !"

तब जम्बूकुमार बोले—"मामा आपके दर्शन अच्छे हो गये, क्योंकि प्रातःकाल के समय तो मैं इस घरबार को छोड़ कर जिन-दीक्षा ले लूंगा !"

इस पर विद्युच्चर कहने लगा—

"हे कुमार ! तुम बड़े भाग्यवान् तथा ऐश्वर्यवान् हो। तुम्हारा रूप कामदेव के समान है। तुम वज्रधारी इन्द्र के समान बलवान्, चन्द्रमा की किरण के समान यशस्वी तथा शान्त, सुमेरु पर्वत के समान धीरवीर, समुद्र के समान गंभीर, सूर्य के समान तेजस्वी, कमलपत्र के समान नम्र स्वभावधारी तथा शरणागत की रक्षा करने योग्य बलवान् हो। संसार में जो कुछ भी दुर्लभ भोग्य सामग्री है सो पूर्वकृत पुण्य के उदय से तुमको प्राप्त है। किसी को दुर्लभ वस्तुएं मिल जाती हैं तो वह उनका भोग उसी प्रकार नहीं कर सकता, जिस प्रकार सामने भोजन होने पर भी रोगी उसको नहीं खा सकता। किसी में

भोजन करने की शक्ति है तो उसको भोग आदि की सामग्री नहीं मिलती। यदि कोई व्यक्ति अपने पास मनोज्ञ भोग-सामग्री तथा उसको भोगने की शक्ति होने पर भी उसका भोग न करे तो यही समझा जावेगा कि उसे दैव ने ठग लिया है। यदि किसी के पास काम-भोगयोग्य सुन्दर स्त्रियां हों, किन्तु उसमें उनके भोग करने का उत्साह न हो, अथवा उसमें उत्साह होने पर भी उसके पास स्त्रियां न हों तो उसके पुण्य की कमी ही समझी जावेगी। यदि किसी के मन में दान करने का उत्साह तो है, किन्तु उसके घर में दान करने योग्य द्रव्य नहीं है, उसको भी उसके पुण्य की ही कमी समझा जावेगा। जिन स्वर्गोपम काम-भोगों को प्राप्त करने लिये चतुर पुरुष अपने शरीर को सुखा कर बड़ा भारी तप करते हैं वह सभी प्रकार का सर्वांगपूर्ण सुख तेरे सम्मुख उपस्थित है। उसको छोड़कर जो तुम उससे भी अधिक सुख प्राप्त करने की इच्छा से तप करना चाहते हो सो तुम्हारा यह विचार उचित नहीं है। यदि तुम अज्ञान से मोहित होकर प्राप्त संपदा को छोड़कर भावी भोगों के लाभ के लिये तप करोगे तो संसार तुमको बुद्धिमान् नहीं मानेगा।"

इस पर जम्बू स्वामी ने उत्तर दिया—

"हे मामा! संसार के यह जितने भी भोग हैं वे बिजली के समान चंचल हैं। कोई भी व्यक्ति इन भोगों को सदा भोगता हुआ नहीं रह सकता। लक्ष्मी चंचल है। या तो उससे लक्ष्मी छिन जाने पर उसके भोग समाप्त हो जाते हैं अथवा वृद्धावस्था आने पर उसका शरीर तथा यौवन ही उसका साथ नहीं दे पाते, फिर वह उन भोगों को किस प्रकार भोगेगा।

"मामा जी! वास्तविक भोग वह है, जिसको व्यक्ति लगातार सदा भोगता हुआ भी उनसे ऊब न जावे। सांसारिक भोगों से तो मन शीघ्र ही भर जाता है। मामा! मैं इन इन्द्रिय-भोगों को क्षणभंगुर मानकर उस अतीन्द्रिय भोग को प्राप्त करने के लिये यत्न करना चाहता हूं, जिसमें जन्म, जरा तथा मृत्यु जैसी महाव्याधियां भी बाधा नहीं डाल सकतीं। सांसारिक भोग तो मरण के पश्चात् सभी छूट जाते हैं, फिर स्वप्न के समान इन क्षण-भंगुर भोगों में महान् पुरुष की किस प्रकार आसक्ति हो सकती है? अतएव

मामा ! आप मेरे पूज्य हैं। आप मुझे कल्याणकारी मार्ग से हटा कर नीच गतियों में गिराने वाले सांसारिक भोगों को भोगने की प्रेरणा न करें।".

कुमार के इन शब्दों के गूढ़ वाक्यों से विद्युच्चर की आंखें खुल गईं। उसके सम्मुख संसार का यथार्थ चित्र घूम गया। भावुक तो वह था ही, कुमार के शब्दों ने उसके ऊपर ऐसा चमत्कारपूर्ण प्रभाव डाला कि सांसारिक भोगों से स्वयं उसको भी घृणा हो गई। वह कुमार के चरित्र की दृढ़ता की प्रशंसा करते हुए बोला—

"हे स्वामी ! आप बड़े बुद्धिमान् तथा भाग्यशाली हैं। आपकी बुद्धि अपार है, आप वास्तव में जीवन्मुक्त हैं और इस संसाररूपी समुद्र से पार हो चुके हैं। आप धर्मरूपी कल्पवृक्ष के मूल हैं। मैं वास्तव में आपका मामा नहीं, वरन् विद्युच्चर नामक एक ऐसा चोर हूं जो चौर्यशास्त्र के प्रेम में राज-पाट छोड़कर चोर बना था। मैं आपके यहां चोरी करने आया था, किन्तु आपके अपनी पत्नियों के साथ होने वाले वार्तालाप से मेरा मन चोरी से फिर गया और मैंने आपकी माता के द्वारा आपसे परिचय प्राप्त किया। मैंने आपकी माता के सामने प्रतिज्ञा की है कि या तो मैं आपको सांसारिक मार्ग में वापिस ले आऊंगा, अन्यथा मैं भी आपके साथ जिन-दीक्षा लेलूंगा।'

यह कहकर विद्युच्चर जम्बू स्वामी के चरण छूकर उस प्रकोष्ठ के बाहिर आकर उनके बन जाने की प्रतीक्षा करने लगा।

५१

जम्बू स्वामी की दीक्षा

राजगृह को आज अत्यधिक सजाया गया है। सभी राजमार्गों पर पर्याप्त सफाई की गई है। द्वार-द्वार पर बन्दनवार बांधे गये हैं, राजमार्गों में स्थान-स्थान पर तोरण बांधे गये हैं, लोग दो-दो, चार-चार की टोलियों में खड़े होकर आपस में वार्तालाप कर रहे हैं। एक बोला—

"मित्र शुभचन्द्र ! कैसे आश्चर्य का विषय है। इतनी अधिक सम्पत्ति होते हुए भी युवावस्था के आरम्भ में गृहस्थ को छोड़कर जम्बू स्वामी ने बड़ी वीरता का कार्य किया है।"

शुभचन्द्र—मित्र धनञ्जय ! और यह तो देखो कि उसने दीक्षा के लिये अपनी देवाङ्गनाओं के जैसे सौन्दर्यवाली चारों पत्नियों तक को उपभोग करने से इनकार कर दिया।

धनंजय—भाई ! जम्बू स्वामी ने अपनी इस विवाह की रात्रि में जो कुछ किया वह तो भगवान् महावीर तथा महात्मा गौतम बुद्ध के मार विजय की प्रतिस्पर्द्धा करता है। क्यों मित्र रिपुञ्जय ! ठीक है न ?

रिपुञ्जय—भाई ! मुझे तो इस बात की अपेक्षा अधिक उत्सुकता जम्बू स्वामी का जुलूस देखने की है।

शुभचन्द्र—किन्तु यह बात समझ में नहीं आई कि जब गृहस्थ का ही त्याग ।कया जा रहा है तो यह जुलूस कैसा !

धनंजय—तो जम्बू स्वामी अपना जुलूस स्वयं तो नहीं निकाल रहे। जुलूस का प्रबन्ध तो सम्राट् ने किया है। जब जम्बूकुमार के पिता सेठ अर्हदास ने आज प्रातःकाल सम्राट् से जाकर कहा कि जम्बूकुमार को उसकी नवोढा चारों पत्नियां भी गृहस्थ के बंधन में न बांध सकीं और वे दीक्षा लेने बन

जा रहे हैं तो सम्राट् ने कहा—"अच्छा, उनको जुलूस के रूप में सुधर्म स्वामी के पास ले चलने की व्यवस्था की जावे।"

यह लोग इस प्रकार वार्तालाप कर ही रहे थे कि एक ओर से कोलाहल का भारी शब्द सुनाई दिया। क्रमश: शब्द निकट आकर स्पष्ट सुनाई देने लगा। जनता अत्यंत उत्साह में भर कर जय बोल रही थी—

'जम्बू स्वामी की जय।'

'सुधर्म स्वामी की जय।'

'भगवान् महावीर स्वामी की जय।'

जुलूस में दुन्दुभि बाजे बज रहे थे। हाथी, घोड़े, ऊंट और पैदल जनता सभी कुछ जुलूस में थे। बीच में एक अत्यंत सजी हुई पालकी में जम्बू स्वामी बैठे हुए थे। उनके शरीर पर बहुमूल्य वस्त्र थे तथा सिर पर एक मुकुट था, जिसे सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार ने उनके घर जाकर स्वयं बांधा था। पालकी को उठाने वाले कहार न होकर नगर के सम्भ्रान्त नागरिक थे। कई बार राजा श्रेणिक स्वयं भी पालकी उठाते थे। जिस समय सम्राट् पालकी में अपना कंधा लगाते थे तो जनता हर्ष से उन्मत्त होकर कह उठती थी—

'सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय।'

क्रमश: यह जुलूस नगर के सभी प्रधान-प्रधान मार्गों पर घूमता हुआ आगे बढ़ता गया। मार्ग के सभी गवाक्ष तथा छतें नर-नारियों से भर गईं। सब ओर उनके ऊपर पुष्प बरसाये जाते थे। जिस समय जुलूस घूम कर सेठ अर्हद्दास के मकान की ओर आया तो जम्बूकुमार की माता जिनमती दौड़ती हुई पालकी के पास आई। वह मुख से 'हा पुत्र !' यह कहकर एकदम मूर्छित हो गई। शीतोपचार करने पर जब वह होश में आई तो आंसू निकालती हुई गद्गद हो वचन कहने लगी—

'हे पुत्र ! एक बार तू मुझ अभागिनी माता की ओर को देख।' यह कहकर वह फिर मूर्छित हो गई। अपनी सास को मूर्छित देखकर जम्बू कुमार की चारों बहुएं अत्यंत शोकसंतप्त होकर रुदन करती हुई बोलीं—

"हे नाथ ! हे प्राणनाथ ! हे कामदेव ! हमको अनाथ बना कर,

आप कहां जा रहे हैं ? आप हमको मत छोड़िये। दैव को धिक्कार है जिसने आपको तप करने की बुद्धि दी। हे कृपानाथ ! आप प्रसन्न हों, हम आपके बिना उसी प्रकार शोभा-रहित हो जावेंगी, जिस प्रकार चन्द्रमा के बिना रात्रि अच्छी नहीं लगती।"

जम्बूकुमार की पत्नियां इस प्रकार कह ही रही थीं कि चन्दनादि शीतल पदार्थों के उपचार से तब तक उनकी माता जिनमती भी दुबारा होश में आ गई। होश आने पर वह फिर रो-रो कर जम्बू स्वामी से कहने लगी—

"हे पुत्र ! कहां तो तेरा केले के पत्ते के समान कोमल शरीर तथा कहां यह असिधारा के समान कठिन जैन दीक्षा ? यदि कोई हाथ के अंगूठे से अग्नि को जलावेगा तो वह उसके मस्तक पर पहुंच ही जावेगी। तप तो उससे भी कठिन है। हे बालक ! तू कठिन भूमि पर किस प्रकार शयन करेगा ? भुजाओं को लटकाए हुए तू किस प्रकार रात भर कायोत्सर्ग का ध्यान करेगा ? तू अपने वृद्ध माता-पिता को दुःखी छोड़कर बन क्यों जाता है ? तेरे बिना यह चारों बहुएं अत्यंत दुःखी होंगी।"

माता को इस प्रकार रोती-कलपती देखकर दृढ़संकल्पधारी जम्बू-स्वामी बोले—

"हे माता ! तू शोक को छोड़कर कायरपने का त्याग कर। तुझे अपने मन में यह विचारना चाहिये कि यह संसार अनित्य है। हे माता ! मैंने अनेक जन्मों में इन्द्रियों के विषयों के सुख का अनेक बार भोग करके उसे जूठन के समान छोड़ा है। अब ऐसे अतृप्तिकारी सुख की ओर भला माता, मैं कैसे जा सकता हूं ? तुझे तो माता ! प्रसन्न होना चाहिये कि तेरा पुत्र संसार के बंधनों को काट कर परमार्थ के मार्ग पर अग्रसर हो रहा है।"

इस प्रकार के वाक्यों से माता को संबोधित करके जम्बूकुमार अपनी पालकी पर बैठकर आगे को बढ़े। इस प्रकार वह राजगृह के सभी मार्गों में घूमकर नगर के बाहिर वन में पहुंचे।

उधर नगर के बाहिर एक वृक्ष के नीचे महा तपोधन सुधर्म स्वामी बैठे हुए थे। जम्बूकुमार पालकी से उतर कर उनके निकट गए। उन्होंने उनकी तीन

प्रदक्षिणाएं करके उनको नमस्कार किया। फिर वह उनके सामने हाथ जोड़कर तथा मस्तक नमाकर बड़े आदर से खड़े ही खड़े यह वचन बोले—

"हे दयासागर ! मैं यथार्थ चरित्र वाला होते हुए भी अनेक दुःखों से भरी हुई कुयोनिरूपी संसार-समुद्र के आवर्तों में डूब रहा हूँ। कृपा कर आप मेरा इस भवसागर से उद्धार कर दें। आप मुझे संसार के दुःख का हरण करने वाली, पवित्र, उपादेय, कर्मक्षय-समर्थ मुनि-दीक्षा प्रदान करें।"

इस पर आचार्य बोले—

"अच्छा ! मैं तुझे दीक्षित करता हूं।"

यह शब्द सुनते ही जम्बूकुमार प्रसन्न हो गए। उन्होंने गुरु महाराज के सम्मुख ही अपने शरीर से सभी आभूषण उतार दिये। उन्होंने अपने मुकुट के आगे लटकने वाली माला को इस प्रकार दूर कर दिया जैसे उन्होंने कामदेव के बाणों को ही बलपूर्वक दूर किया हो। फिर उन्होंने रत्नमय मुकुट को भी इस प्रकार उतारा मानों उन्होंने मोहरूप राजा के समस्त मान को जीत लिया हो। फिर उन्होंने हार आदि आभूषणों तथा रत्नमय अंगूठी को उतारा। फिर उन्होंने अपने शरीर के वस्त्रों को इस प्रकार उतार दिया मानों चतुर पुरुष ने माया के पटलों को ही फेंक दिया हो। समस्त वस्त्राभूषणों को उतार कर उन्होंने शास्त्रीय रीति से लीलामात्र में पांच मुष्टि से अपने केशों का लोंच कर डाला। प्रथम उन्होंने—

"ओं नमः"

इस मन्त्र का उच्चारण किया। फिर उन्होंने गुरु की आज्ञा से निम्नलिखित २८ मूल गुणों को धारण किया—

पंच महाव्रत – अहिंसा महाव्रत, सत्य महाव्रत, अस्तेय महाव्रत, ब्रह्मचर्य महाव्रत तथा परिग्रहत्याग महाव्रत।

पंच समिति —ईर्या समिति (भूमि को देखकर चलना), भाषा समिति हित, मित, प्रिय वचन ही बोलना, अन्य बचन न बोलना), एषणा समिति (शुद्ध आहार लेना), आदान निक्षेपण समिति (प्रत्येक वस्तु देखकर रखना तथा देख

कर उठाना), तथा प्रतिष्ठापना समिति (निर्जन्तु भूमि पर मल-मूत्र का त्याग करना)।

पञ्च इन्द्रिय निरोध—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु तथा कर्ण इन पांचों इन्द्रियों के विषयों की इच्छाओं को रोकना।

छः आवश्यक क्रियाएं—सामायिक (प्रातः, दोपहर, सायंकाल तथा अर्ध रात्रि को ध्यान करना), परिक्रमण (किये हुए दोषों पर पश्चात्ताप करना), प्रत्याख्यान (अपने व्रत में आगे दोष न लगने देने की प्रतिज्ञा), स्तुति (चौबीस तीर्थंकरों का गुणवर्णन), वन्दना (किसी एक तीर्थंकर की वन्दना), कायोत्सर्ग (शरीर में महत्व का त्याग)।

सात फुटकर नियम—(१) केशों का लोंच, (२) अचेलकपना (शरीर के प्रत्येक वस्त्र को त्याग देना), (३) स्नान-त्याग (जन्म भर कभी भी स्नान न करना), (४) प्राशुक भूमि पर शयन, (५) दांत न धोना, (६) स्थिति भोजन (खड़े हो कर अपने हाथ में भोजन लेना), तथा (७) दिन में एक बार ही भोजन करना।

जम्बू स्वामी ने सुधर्म स्वामी के मुख से इन अट्ठाईसों मूल गुणों को नग्न होकर धारण किया। उस समय राजा श्रेणिक बिम्बसार आदि सभी ने उच्च स्वर से जयकार किया।

जम्बू स्वामी के दीक्षा ग्रहण करने के बाद विद्युच्चर ने भी प्रभव आदि अपने साथी पांच सौ राजकुमार चोरों के साथ जिन-दीक्षा ले ली।

उनके दीक्षा लेने के पश्चात् सेठ अर्हद्दास तथा उनकी सेठानी जिनमती ने भी दीक्षा ले ली। माता जिनमती ने सुप्रभा आर्यिका के निकट जाकर दीक्षा ली। जम्बूकुमार की पद्मश्री आदि चारों पत्नियों ने भी संसार के क्षणभंगुरपने का ध्यान करते हुए सुप्रभा आर्यिका से दीक्षा ले ली।

इन सबके दीक्षा ले लेने पर सम्राट् बिम्बसार भी समस्त नगरवासियों सहित अपने घर वापिस चले गए।

५२

बुद्ध-चर्या तथा देवदत्त

गौतम बुद्ध को उनके दूसरे चातुर्मास्य के बाद राजगृह में उनके पिता महाराज शुद्धोदन का निमंत्रण मिला कि वह संघसहित कपिलवस्तु आवें। आप दो मास तक पैदल चलकर संघसहित कपिलवस्तु पहुंचे और उसके निकट न्यग्रोध कानन में ठहरे। दूसरे दिन ये स्वयं नगर में भिक्षा मांगने गये। इस समाचार को सुनकर राज-परिवार में बड़ा कोलाहल मच गया और महाराज शुद्धोदन ने बुद्ध के पास स्वयं आकर उनसे कहा—

"वत्स ! तुम इस प्रकार भिक्षा मांग कर हमको लज्जित क्यों करते हो ? क्या मैं संघसहित तुम्हारा सत्कार नहीं कर सकता ?"

इस पर तथागत बोले–

"महाराज ! यह तो मेरा कुल-धर्म है, क्योंकि अब मै अपने को राज-कुलोत्पन्न न मानकर बौद्ध-कुल में जन्मा हुआ मानता हूं।"

प्रातःकाल का समय था। कपिलवस्तु में भगवान् बुद्ध के आने का समाचार जनता को सार्वजनिक रूप से सुनाया जा रहा था। भगवान् ने नगर के बाहिर उद्यान में अपने संघसहित आसन लगाया हुआ था। जनता उनका उपदेश सुनने बड़ी भारी संख्या में आ रही थी। अनेक नये-नये व्यक्ति भिक्षु बन रहे थे। राजा शुद्धोदन को भी यह समाचार मिला कि उनका पुत्र अब जगत्पिता होकर संसार भर को निस्तार का उपाय बतला रहा है। इस समाचार को यशोधरा ने भी सुना। यशोधरा को उनसे यह शिकायत थी कि वह उसको सोती छोड़कर चले गये थे। बहुत समय तक उसे उनके विषय में कुछ भी पता नहीं चला। वह अपने पुत्र राहुल को लोरियां देते समय यही कहा करती थी कि उसके पिता उससे आकर शीघ्र मिलेंगे और उसे प्यार करेंगे। वास्तव में उसको उनके वापिस आने की पूरी आशा थी। किन्तु वह तो न आने के

और न आये। यशोधरा तब भी आशा लगाए ही रही। वह मन ही मन कहा करती थी कि वह आवेंगे तो मैं उनको देखकर एकदम मुँह फेर लूँगी। फिर जब वह मुझे मनाने के लिये आवेंगे तो मैं उनसे तब तक न बोलूँगी, जब तक वह यह वचन न देंगे कि वह मुझे छोड़कर कभी न जावेंगे।

किंतु अब की बार जो घटना हुई उसकी उसको स्वप्न में भी आशा नहीं थी। बुद्ध कपिलवस्तु में अपने संघसहित आए, किंतु वह राजमहल में तो क्या आते, नगर में नहीं आए। वह कपिलवस्तु के बाहिर एक बाग में ठहरे। नगरनिवासियों ने उनकी कीर्ति सुन रखी थी। साथ ही वह उन पर अपने भूतपूर्व युवराज के रूप में भी श्रद्धा करते थे। अतएव वह उनके दर्शनों को बड़ी भारी संख्या में आने लगे। भगवान् बुद्ध प्रातःकाल, सायंकाल तथा मध्याह्न के समय तीन बार उपदेश देते थे और जनता उनके उपदेश को बड़ी श्रद्धापूर्वक सुनती थी। यशोधरा यह सारे संवाद सुनती थी, किंतु उसको अभी तक भी यह आशा थी कि वह उसके पास अवश्य आवेंगे। उसके मन में कई बार यह विचार आया कि वह उनको राजमहल में पधारने का निमंत्रण दे, किंतु उसके स्त्रियों के मान ने उसको ऐसा करने से रोक दिया। वैसे तो गौतम जब से घर छोड़कर गए थे उसके मन में अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था, किंतु इधर जब से वह कपिलवस्तु की जनता को धर्मोपदेश देने आए थे, उनके मन का अन्तर्द्वन्द्व और भी अधिक बढ़ गया था। निदान यशोधरा इसी प्रकार सोचती रही और बुद्ध कपिलवस्तु के उस उद्यान में इसी प्रकार उपदेश देते रहे।

आज कपिलवस्तु में भारी हलचल दिखलाई दे रही है। सड़कें विशेष रूप से साफ की जा रही हैं। सड़कों के ऊपर स्थान-स्थान पर सुन्दर-सुन्दर द्वार बनाए जा रहे हैं। सड़क के किनारे के मकानों को भी विशेष रूप से सजाया जा रहा है। प्रत्येक मकान पर वंदनवार लगाई जा रही है। स्थान-स्थान पर लोग जमा होकर चर्चा कर रहे हैं कि देखो, अच्छी तरह सफाई की जावे। भगवान् तथागत इधर से ही राजमहल को पधार रहे हैं।

इस पर एक दूसरे व्यक्ति ने उनसे पूछा "क्यों जी ! भगवान् तथागत ने तो राजा शुद्धोदन के बारबार के निमंत्रण को ठुकरा दिया था, अब वह

किस प्रकार यहां आने को राजी हो गये ?"

"राजा शुद्धोदन ने जो उनके धर्मोपदेश में कई-कई दिन तक आकर उनसे दरबार में उपदेश देने का निमंत्रण दिया तो भगवान् बुद्ध उस निमंत्रण को न ठुकरा सके।"

लोग इस प्रकार चर्चा कर ही रहे थे कि अपने अनुयायियों—सारिपुत्र, मौद्गलायन तथा आनन्द आदि—सहित तथागत आते हुए दिखलाई दिये। वह मार्ग में चले जाते थे और उनका प्रधान शिष्य आनन्द उनके पीछे चार हाथ की दूरी पर चल रहा था। उनके पीछे सारिपुत्र मौद्गलायन तथा अन्य शिष्य चल रहे थे। मार्ग में जिसने तथागत को इस प्रकार दरबार की ओर जाते देखा उसने वहीं भूमि पर लेटकर उनको साष्टांग दण्डवत किया। तथागत अपने अनुचरों सहित दरबार को चले गये।

तथागत के दरबार में आने का समाचार सुनकर यशोधरा के मन में भारी तूफ़ान मच गया। वह अपने पुत्र राहुल से कहने लगी—

"देख राहुल ! मैं कहती थी न, कि वह अवश्य आवेंगे। माना कि वह कई दिन से इधर नहीं आये, किंतु आखिर वह आये तो ! जब वह दरबार में आये हैं तो यहां भी अवश्य आवेंगे।"

राहुल—किन्तु माता, यदि वह यहां न आकर इधर से उधर ही वापिस चले गये तो फिर क्या होगा ? मेरी सम्मति में तो उनको यहां आने का निमंत्रण देना चाहिये।

यशोधरा—नहीं मेरे लाल ! वह मुझे और तुझे दोनों को स्वयं छोड़ कर गये हैं, हमने उनको नहीं छोड़ा। यदि हम उनको छोड़ते तो हम उनको बुलाने जाते, किंतु जब वह बिना हमारे छोड़े हमको छोड़कर स्वयं गये हैं तो उनको यहां बिना बुलाये ही आना चाहिये। मैं उनको बुलावा कभी न भेजूंगी।

यशोधरा यह कह ही रही थी कि एक दासी दौड़ती हुई वहां आकर कहने लगी—

"महारानी जी ! मैं अभी-अभी राज-दरबार से चली आ रही हूं। वहां

भगवान् तथागत सभी दरबारियों को धर्मोपदेश दे रहे हैं, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं उनको रणवास में भी उपदेश देने का निमंत्रण दे आऊं।"

"चुप पगली ! मैं उनको बुलाऊं ! कभी नहीं।"

यशोधरा ने यह शब्द समाप्त किये ही थे कि रणवास के द्वार से उसके कान में यह आवाज़ आई—

"भगवान् तथागत की जय हो ! मार्ग साफ़ कर दिया जावे, भगवान् पधार रहे हैं।"

इन शब्दों को सुनते ही यशोधरा का मन हर्ष से भर गया। वह राहुल से कहने लगी—

"देखा मेरे लाल ! मैं कहती थी न, कि वह मेरे पास अवश्य आवेंगे और बिना बुलाये आवेंगे।"

यशोधरा उस समय भूमि पर बैठी हुई यह कह ही रही थी कि तथागत अंदर आकर यशोधरा के सामने खड़े हो गये। उनको संन्यासी के वेष में देखकर यशोधरा उनकी चरण-वन्दना करके परम विह्वल होकर फूट-फूट कर रोती हुई पैरों में गिर पड़ी। फिर वह राहुल से बोली—

"बेटा ! यह तेरे पिता जी हैं, तू इनसे अपना दाय-भाग मांग।"

यह सुनते ही राहुल ने तथागत से कहा—

"पिता जी, मुझे मेरा दाय-भाग दीजिये।"

राहुल का यह वचन सुनकर तथागत आनन्द से बोले—

"आनन्द ! राहुल के केश काट कर उसे दीक्षा दो।

"आनन्द ने राहुल के केश काट कर उस आठ वर्ष के बालक को भिक्षु बना लिया। राहुल को भिक्षु-वेष में देखकर यशोधरा बुद्ध से बोली—

"नाथ, स्त्री के लिये पति ही सब कुछ है। आप मुझे सोती को छोड़कर चले गये तो भी मैं आपके नाम की माला जपती रही। जब मैंने सुना कि आप बुद्ध बन कर संसार-भर को धर्म का उपदेश दे रहे हैं तब भी मैं आपके पास आने के लिये आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा करती रही थी। आप कपिलवस्तु के राजदरबार में पधारे तब भी मैं अविचल रही, क्योंकि मैं जानती थी कि आप यहां अवश्य पधारेंगे। अब आपने यहां मेरे पास पधार कर मुझे स्वयं ही

दर्शन दिये हैं तो मैं निहाल हो गई, मेरी सारी शिकायतें दूर हो गईं। किन्तु अब मैं अपने स्वामी का वियोग सहन करने को तैयार नहीं हूं। आप राहुल को ले चले तो मैं भी अब आपके साथ चलूंगी। अब तो आप का और मेरा एक ही मार्ग होगा।

बुद्धं सरणं गच्छामि।
संघं सरणं गच्छामि।
धम्मं सरणं गच्छामि।

यह कहकर यशोधरा भी बौद्ध-भिक्षुणी बनने के लिये तैयार हो गई, किन्तु बुद्ध ने उसको समझा-बुझा कर उस समय दीक्षा नहीं दी।

राहुल की दीक्षा की घटना से राजा शुद्धोदन बहुत व्याकुल हुए। उन्होंने भगवान् से कहा—

"वत्स ! छोटे-छोटे बालकों को इस प्रकार दीक्षा दे देना उचित नहीं है। कृपया ऐसी व्यवस्था कीजिये कि माता-पिता की आज्ञा के बिना किसी बालक को दीक्षा न दी जावे।"

भगवान् ने इस बात को स्वीकार करके इसके अनुसार घोषणा समस्त संघ में प्रचारित कर दी। इसके बाद आप कपिलवस्तु से चले आये। तीसरे चातुर्मास्य में आपने काश्यप और महापिप्पल को दीक्षा दी। पांचवें वर्ष महाराज शुद्धोदन का स्वर्गवास हो गया। बुद्ध उस अवसर पर कपिलवस्तु पहुंच गये थे। उन्होंने अपने हाथ से महाराज शुद्धोदन का अग्नि-संस्कार किया। इस समय आपकी विमाता महाप्रजावती तथा शाक्यकुल की अन्य स्त्रियों ने ब्रह्मचर्य धारण कर के भिक्षुणी बनने की इच्छा प्रकट की। भगवान् ने प्रथम तो उनको बहुत कुछ टाला, किन्तु उनके अत्यधिक आग्रह करने पर उन्होंने उनको दीक्षा दे दी। बौद्ध-संघ में दीक्षा लेने वाली महाप्रजावती प्रथम महिला थी। छटे वर्ष सम्राट् बिम्बसार की प्रथम महिषी क्षेमा तथा राहुल की माता यशोधरा ने भी दीक्षा ले ली।

भगवान् का सगा छोटा भाई नन्द तथा चचेरा भाई देवदत्त भी उनसे दीक्षा ले चुका था, किन्तु बाद में देवदत्त उनसे ईर्ष्या करने लगा। वास्तव में

संघ में उसको सारिपुत्र तथा मौद्गलायन की प्रधानता सहन नहीं होती थी। दसवें वर्ष वह भगवान् से रुष्ट होकर राजगृह चला गया। पन्द्रहवें वर्ष जिस समय भगवान् राजगृह में चालिय पर्वत से चलकर गृध्रकूट पर्वत पर ठहरे तो एक दिन अजातशत्रु से मंत्रणा करके इनके शिष्य देवदत्त ने इनके ऊपर एक मस्त हाथी छुड़वा दिया, किन्तु हाथी ने भगवान् को कोई चोट नहीं पहुंचाई। तब उसने भगवान् को मारने के लिये धनुर्धरों की योजना की किन्तु आपको उनसे भी कोई हानि नहीं पहुंची। इस पर देवदत्त ने उनके ऊपर भारी पत्थर लुढ़कवा दिया, इससे उनके बाएं पैर के अंगूठे में चोट लगी। भगवान् ने जीवक नामक वैद्य से उसकी चिकित्सा करवाई। बाद में जीवक ने भी बौद्ध धर्म ग्रहण किया।

भगवान् के बीसवें चातुर्मास्य के समय देवदत्त के परामर्श के अनुसार अजातशत्रु अपने वृद्ध पिता श्रेणिक बिम्बसार को अनेक प्रकार से अपमानित करके उनको कष्ट देने लगा था, अतएव भगवान् ने वह चातुर्मास्य राजगृह में किसी प्रकार व्यतीत करके निश्चय किया कि आगे सब चातुर्मास्य श्रावस्ती में ही बितावेंगे।

जब देवदत्त के भगवान् के विरुद्ध किये हुए सभी प्रयत्न व्यर्थ हुए तो उसको चिन्ता के मारे राजयक्ष्मा हो गया। इससे डर कर अजातशत्रु भी प्रायः बुद्ध के पास आकर उनका सदुपदेश सुनने में समय लगाने लगा। कुछ काल पश्चात् वह बौद्ध हो गया। इसी बीच देवदत्त एक तालाब में फंसकर मर गया।

अजातशत्रु का षड्यंत्र

"कुमार ! पहले मनुष्य दीर्घायु होते थे, अब वे अल्पायु होते हैं। तुम्हारे पिता को राज्य करते हुए इस समय बहुत वर्ष हो गये हैं। कौन जाने कि अभी वह कितने वर्ष तक और जीवित रहें, ऐसी अवस्था में यह हो सकता है कि कुमार कहलाते हुए ही तुम्हारी मृत्यु हो जावे और तुम्हारे राज्य-सिंहासन पर बैठने का कभी अवसर न आवे। इसलिये कुमार ! तुमको अपने भविष्य के सम्बन्ध में अधिक सतर्कता से सोचने की आवश्यकता है।"

कुमार अजातशत्रु देवदत्त के इन शब्दों को सुनकर सन्न रह गया। उस समय देवदत्त विपुलाचल पर्वत पर अपने कुछ शिष्यों के साथ ठहरे हुए थे। एक ओर वह बुद्ध-संघ में फूट डालकर धर्मचक्र प्रवर्तन के मार्ग से बुद्ध को हटाकर स्वयं बुद्ध कहलाना चाहते थे तो दूसरी ओर वह सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार को राज्यच्युत करके उनके स्थान पर अपने भक्त अजातशत्रु को मगध-राज बनाना चाहते थे। देवदत्त ने देखा कि बिम्बसार के पुत्रों में अजातशत्रु सब से अधिक महत्त्वाकांक्षी है। अतएव उन्होंने अपने मन में विचार किया कि यदि अजातशत्रु को पिता के विरुद्ध विद्रोह के लिये प्रेरित किया जा सके तो सुगमता से उद्देश्य की सिद्धि हो सकती है। अतएव उन्होंने विपुलाचल पर्वत पर अजातशत्रु को गुप्त रूप से बुलवा कर उससे उपरोक्त शब्द कहे। इसमें संदेह नहीं कि देवदत्त का तीर ठीक निशाने पर बैठा। अजातशत्रु उनके इन शब्दों को सुनकर गहन विचार में पड़ गया। वह कुछ देर तक मन ही मन विचार करके देवदत्त से बोला—

"तो उसमें मैं क्या कर सकता हूं, आर्य !"

"तुम क्या नहीं कर सकते ?" देवदत्त ने उत्तर दिया। "साम, दान, दण्ड और भेद राजाओं की सफलता के यह चार ही उपाय हैं। तुम्हारे पिता की अभी

राज्य करने की अभिलाषा शेष है। साम का अवलम्बन करने से कुछ भी लाभ की सम्भावना नहीं है। तुम उनकी बराबर सेवा करके दाम का प्रयोग करते रहते हो, जिसमें तुमको अभी तक भी सफलता नहीं मिली है। ऐसी स्थिति में दण्ड और भेद के अतिरिक्त तुम्हारे पास और कोई उपाय शेष नहीं है। तुमको उचित है कि प्रथम तुम राज्य के प्रधान अधिकारियों—महामात्य तथा प्रधान सेनापति को अपनी ओर मिला लो और फिर विद्रोह करके राजा को सिंहासन-च्युत कर दो।"

"किन्तु अत्यधिक यत्न करने पर भी मैं इस उपाय में सफल नहीं हुआ आर्य !" अजातशत्रु ने देवदत्त को उत्तर दिया। "महामात्य वर्षकार अत्यधिक सावधान है इसमें संदेह नहीं। वह व्यक्ति का भक्त न होकर राज्यमुकुट का भक्त है। किन्तु उसकी सतर्कता के कारण दण्ड और भेद का मेरा कोई भी प्रयोग अभी तक सफल नहीं हो सका। अब तो केवल एक ही उपाय शेष है कि सम्राट् की गुप्त रूप से हत्या कर दी जावे।"

देवदत्त अजातशत्रु के इन शब्दों पर अपनी प्रसन्नता को न छिपा सका और बोला—

"तो इसी उपाय का अवलम्बन क्यों न किया जावे ?"

"इसमें मेरा हृदय कांपता है, आर्य !" अजातशत्रु ने उत्तर दिया।

"तनिक साहस से काम लो," देवदत्त बोला। "यह स्मरण रखो कि यदि तुम अपने पिता को मारने में सफल हो गये तो मगध के सभी राज्याधिकारी तुमको एकदम अपना सम्राट् स्वीकार कर लेंगे।"

"वह किस प्रकार, आर्य !" अजातशत्रु ने पूछा। "इसी में तो मुझे संदेह है और इसी संदेह के कारण मैने अबतक पिता की हत्या नहीं की है।"

देवदत्त बोला—

"बात यह है कुमार ! कि तुम सम्राट् बिम्बसार के इस समय सब से ज्येष्ठ पुत्र हो। तुमसे बड़े तुम्हारे सभी भाई भगवान् महावीर स्वामी अथवा गौतम बुद्ध के पास जाकर दीक्षा ले चुके हैं। केवल एक दर्शक शेष है, किन्तु वह भोलाभाला है और कूटनीति में निपुण नहीं है। शास्त्र की दृष्टि में उत्तराधिकार केवल

तुमको ही मिलेगा। इसके अतिरिक्त मैं स्वयं भी अपने शिष्यों तथा चरों द्वारा राज्याधिकारियों के हृदय में तुम्हारे लिये अनुकूलता उत्पन्न करूंगा।"

"यह बात तो आपकी कुछ-कुछ गले उतरती है," अजातशत्रु बोला। "किन्तु इस काम को किससे कराया जावे। जिससे भी यह कार्य करने को कहा जावेगा यदि वह प्रतिकूल हो गया तो सारे किये-धरे पर पानी फिर जावेगा।"

"कुमार ! अपने मरे विना स्वर्ग कोई नहीं जाता," देवदत्त ने उत्तर दिया। "इस प्रकार के कार्य बड़े भयंकर तथा क्रांतिकारी होते हैं। ऐसे कार्यों में यथाशक्ति किसी अन्य व्यक्ति की सहायता नहीं लेनी चाहिये। मेरी सम्मति में इस कार्य को कुमार ! तुमको स्वयं अपने हाथ से ही करना चाहिये।"

"तो क्या अपने पिता की हत्या मैं स्वयं अपने हाथ से करूं ?" अजातशत्रु ने घबरा कर पूछा।

"यदि इतने बड़े साम्राज्य का स्वामी बनना चाहते हो तो यह काम तुमको अपने हाथ से ही करना होगा।" देवदत्त ने उत्तर दिया। "स्मरण रखो, राजनीति में कोई किसी का पिता अथवा पुत्र नहीं हुआ करता। इसमें तो राज्य-प्राप्ति ही सबसे बड़ा उद्देश्य हुआ करता है। तुम थोड़ा साहस से काम लेकर एक बार अपने पिता की गुप्त रूप से हत्या कर डालो, फिर तुम देखोगे कि मैं तुम्हारे मार्ग की सभी बाधाओं को नष्ट करके तुमको सम्राट् बना दूंगा। तुम देखते हो आज भारतवर्ष भर में मगध से बड़ा कोई साम्राज्य नहीं है। अन्य राज्य छोटे-छोटे हैं और मगध साम्राज्य के विस्तार के मार्ग में अधिक बाधा डालने योग्य नहीं हैं। तुमको उचित है कि मगध-सम्राट् बनकर तुम उन सभी छोटे-छोटे राज्यों को नष्ट करके मगध राज्य में मिला लो और फिर पूर्व समुद्र से लेकर पश्चिम समुद्र तक के समस्त भारत पर शासन करते हुए चक्रवर्ती राज्य का उपभोग करो।"

"अच्छा, आर्य ! मैं आपके परामर्श के अनुसार स्वयं ही इस कार्य को सम्पन्न करूंगा।"

५४

अजातशत्रु का विद्रोह

मध्याह्न का समय है। ज्येष्ठ मास होने के कारण सूर्यदेव अपनी प्रखर किरणों से पृथ्वी को तपा रहे हैं। उष्णता के कारण प्रायः सब कारोबार बंद है। व्यापारी लोग अपनी-अपनी दूकानों के किवाड़ लगाये अन्दर पड़े हुए हैं। राजगृह के राजभवन में भी सभी लोग पूर्णतया विश्राम कर रहे हैं। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार भी अपने अन्तःपुर के शयनकक्ष में विश्राम कर रहे हैं। राजद्वार के प्रहरी अपने-अपने कर्तव्य-स्थल पर बैठे-बैठे ऊँघ रहे थे कि अचानक कुमार अजातशत्रु ने सम्राट् के अन्तःपुर में प्रवेश किया। कुमार एक-एक पग धीरे-धीरे रखता जा रहा था और चकित नेत्रों से इधर-उधर देखता जाता था कि अन्तःपुर में उसे जाते हुए कोई देख तो नहीं रहा। कुमार प्रथम ड्योढ़ी को पार करके दूसरी ड्योढ़ी में आया। वह दूसरी से तीसरी और इसी प्रकार बाद की ड्योढ़ियों में जाते हुए सातवीं ड्योढ़ी में पहुंचा ही था कि उसको अन्दर से उपचारकर महामात्य श्री वृषभसेन आते हुए दिखलाई दिये। महामात्य ने जो कुमार को संदिग्ध अवस्था में प्रवेश करते देखा तो उनको रोककर पूछा—

"कुमार ! तुम्हारे मुख का रंग उड़ा हुआ है। भय, उद्वेग तथा शंका के भाव तुम्हारे मुख पर स्पष्ट रूप से दिखलाई दे रहे हैं। यह स्पष्ट दिखलाई दे रहा है कि तुम्हारे मन में किसी भयंकर कार्य करने का संकल्प है। मैं जानना चाहता हूं कि तुम अन्तःपुर में प्रवेश करके इस समय क्या करना चाहते थे ?"

महामात्य के इस प्रश्न से कुमार मौन होगया। उसके मुख पर भय के भाव और भी स्पष्टता से अंकित हो गये। जब उसने उपचारकर महामात्य के प्रश्नों का उत्तर नहीं दिया तो महामात्य ने उसको पकड़कर उसके वस्त्रों को

देखना आरंभ किया। महामात्य को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि अजात-शत्रु ने अपने वस्त्रों के नीचे जांघ से छुरा बांधा हुआ था। महामात्य ने छुरे को कुमार से छीनकर उससे कहा—

"कुमार ! अब यह स्पष्ट हो गया है कि तुमने किसी के प्राण लेने के उद्देश्य से ही अन्तःपुर में प्रवेश किया था। अतः यदि आप इस समय यह स्पष्ट बतला देंगे कि आप इस छुरे से क्या करना चाहते थे तो मैं इस बात का वचन देता हूं कि आपको इस सत्य-भाषण के कारण किसी प्रकार की हानि नहीं उठानी पड़ेगी।"

उपचारकर महामात्य के इन शब्दों को सुनकर कुमार को थोड़ा धैर्य हुआ और वह कहने लगे—

"मैं पिता को मारना चाहता था।"

इस पर उपचारकर महामात्य ने फिर पूछा—

"तुमको इस कार्य की प्रेरणा किस से मिली ?"

तब अजातशत्रु ने उत्तर दिया—

"आर्य देवदत्त से।"

कुमार के मुख से इन शब्दों को सुनकर उपचारकर महामात्य कुमार को लिये हुए सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के शयन-कक्ष पर आकर दासी से बोले—

"अन्दर जाकर सम्राट् से कहो कि उपचारकर महामात्य एक अत्यावश्यक राजकार्यवश सम्राट् के दर्शन अभी करना चाहते हैं।"

दासी यह सुनकर तुरंत अंदर चली गई। उस समय सम्राट् जागे हुए थे। वह एकाकी थे और तभी सोकर उठे थे। दासी ने उनसे निवेदन किया—

"देव ! उपचारकर महामात्य श्री वृषभसेन द्वार पर उपस्थित खड़े हैं। उन्होंने कुमार अजातशत्रु को पकड़ा हुआ है। अजातशत्रु के हाथ में एक छुरा है। कुमार के छुरे वाले हाथ को महामात्य ने कसकर पकड़ा हुआ है। महा-मात्य निवेदन करते हैं कि वह एक अत्यावश्यक राजकार्यवश सम्राट् के दर्शन अभी करना चाहते हैं।"

इस पर सम्राट् बोले—

"जा, उन्हें आदरपूर्वक अंदर भेज दे।"

इसके कुछ ही क्षणों के पश्चात् उपचारकर महामात्य वृषभसेन ने कुमार अजातशत्रु को पकड़े हुए सम्राट् के शयनकक्ष में प्रवेश करके उनसे कहा—

"सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय हो।"

तब सम्राट् बोले—

"क्यों वृषभसेन जी ! इस असमय में कैसे आये ? कुमार अजातशत्रु को आपने इस प्रकार क्यों पकड़ा हुआ है ? इन्होंने क्या अपराध किया है ?"

इस पर वृषभसेन ने उत्तर दिया—

"देव ! मैं अंतःपुर के अन्दर से बाहिर की ड्योढ़ी पर प्रहरियों का निरीक्षण करने जा रहा था कि मैंने कुमार को संदिग्ध अवस्था में सातवीं ड्योढ़ी में प्रवेश करते देखा। इनके नेत्र चकित होकर चारों ओर को देखने जाते थे कि इनको कोई देख तो नहीं रहा है। इनको इस स्थिति में देखकर मुझे इन पर संदेह हुआ। जब न्होंने मेरे किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया तो मैंने इनकी तलाशी ली। तलाशी में मुझको इनकी जांघ में वस्त्रों के अंदर यह छुरा बँधा हुआ मिला। फिर मैंने उनको आश्वासन दिया कि यदि यह सत्य बोलेंगे तो इनको कोई हानि न पहुंचेगी। इस पर इन्होंने यह स्वीकार किया कि इन्होंने पिता की हत्या करने के उद्देश्य से इस समय अन्तःपुर में प्रवेश किया था। इन्होंने यह भी स्वीकार किया कि इनको इस भीषण कर्म की प्रेरणा आर्य देवदत्त ने की थी। अब आप जैसा उचित समझें करें।"

उपचारकर महामात्य के शब्द सुनकर सम्राट् का सिर चकरा गया। उनको बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। यदि किसी और परिस्थिति में उनके सामने यही बात कही जाती तो उनको इसका कभी भी विश्वास न आता, किन्तु इस स्थिति में उनके सामने इस समय इस बात पर विश्वास करने के अतिरिक्त और कोई उपाय न था। वह बहुत देर तक सिर झुकाये हुए इस घटना के सम्बन्ध में विचार करते रहे। अन्त में उन्होंने कुमार से पूछा—

"कुमार ! तू मुझे क्यों मारना चाहता था ?"

इस पर अजातशत्रु बोला—

"देव ! मैं राज्य चाहता हूँ !"

अजातशत्रु के मुख से इस उत्तर को सुनकर सम्राट् को और भी अधिक दुःख हुआ। उनको यह स्पष्ट दिखलाई दे गया कि यह राज्यलक्ष्मी ऐसी बुरी बला है कि इसके लिये पुत्र पिता के प्राण भी ले सकता है। फिर वह मन में सोचने लगे कि क्या अपने इस कार्य के लिये कुमार कुणिक वास्तव में अपराधी है। मुझे राज्य करते वृद्धावस्था आ गई और कुमार युवा हो गया। इस समय इसका राज्य की इच्छा करना अस्वाभाविक नहीं है। मुझे इससे पहिले ही राज्य को छोड़ देना चाहिये था। अच्छा, अब भी बिलम्ब नहीं हुआ है। मैं इसकी योग्यता को क्रमशः देखता हुआ इसको मगध का राज्य-सिंहासन दे दूँगा। यह सोचते हुए सम्राट् ने कुमार से कहा—

"कुमार यदि तू राज्य चाहता है तो मैं तुझे चम्पा का राज्य देता हूँ। यदि तूने वहाँ योग्यतापूर्वक राज्य किया तो बाद में मैं तुझको मगध का सम्पूर्ण राज्य भी दे दूँगा।"

यह कहकर सम्राट् ने अगले दिन राजदरबार में कुमार कुणिक का नाम अजातशत्रु रख कर उसे चम्पा का राज्य देने की घोषणा की।

सम्राट् से अंगदेश का राज्य पाकर कुमार अजातशत्रु उसी दिन चम्पापुरी को चले गये। वह तीन-चार दिन की यात्रा के बाद ही चम्पापुरी पहुँच गये। वहाँ जाकर उन्होंने राजा दधिवाहन तथा दृढ़वर्मा के शून्य सिंहासन को अलंकृत किया। प्रजा को अपने सूने सिंहासन पर फिर राजसत्ता की प्रतिष्ठा होती देख कर बड़ा आनन्द हुआ। बड़े-बड़े धनिक सेठ बड़ी-बड़ी भेंटें ले-लेकर अजातशत्रु के पास आकर अपनी भक्ति प्रकट करने लगे। किन्तु उनकी भेंटों से अजातशत्रु संतुष्ट न हुआ। वह अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाना चाहता था। अतः दुर्ग की मरम्मत कराने तथा सैनिक उपकरणों के लिये उसे धन की आवश्यकता बराबर बनी रहती थी।

आर्य देवदत्त ने जो अजातशत्रु के चम्पापुर जाने का समाचार सुना तो

वह बहुत प्रसन्न हुए। वह अपने अनुचरों सहित चम्पापुर आकर नगर के बाहिर ठहरे और वहीं से उन्होंने अजातशत्रु के पास अपने आने का समाचार भिजवाया। अजातशत्रु ने जो उनके आने का समाचार सुना तो बहुत प्रसन्न हुआ। वह गाजे-बाजे के साथ उनसे मिलने को नगर के बाहिर आया और उनको लेकर राजमन्दिर में पहुँचा। उसने आर्य देवदत्त को अपने साथ चम्पा के राजमहल में ही ठहराया। राजकार्य से निवृत्त होकर जब अजातशत्रु आर्य देवदत्त से मिलने आया तो देवदत्त ने कहा—

"कहो कुमार ! अब किस प्रकार दिन कट रहे हैं ?"

"सब अच्छा तो है आर्य !"

"किन्तु तुमको इस सुअवसर से लाभ उठाना चाहिये कुमार !"

"वह किस प्रकार उठाया जा सकता है आर्य ?"

"अब तुम अपनी सैनिक शक्ति बढ़ा लो। संभव है कि तुमको अपने पिता के विरुद्ध ही सैनिक अभियान करना पड़े।"

"किन्तु मेरे पास तो कोषबल नहीं है आर्य ! सैनिक शक्ति को कोषबल के बिना किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है ?"

"सैनिक शक्ति को कोषबल के बिना निश्चय से ही नहीं बढ़ाया जा सकता, किन्तु इसके लिये तुम अपने अधिकार से काम ले सकते हो।"

"अधिकार से काम किस प्रकार लिया जा सकता है आर्य !"

"तुम सेठों को बुला कर, उनसे स्पष्ट रूप से धन की याचना करो। यदि वह राजी-खुशी दे दें तो ठीक है, अन्यथा उनके ऊपर बलप्रयोग करने में भी संकोच न करो।"

"किन्तु आर्य, इस प्रकार धनिकों पर बलप्रयोग करने का कुछ बुरा परिणाम तो नहीं होगा ?"

"और क्या होगा ? वह तुम्हारे विरुद्ध सैनिक अभियान तो कर नहीं सकते। अधिक से अधिक यही तो कर सकते हैं कि सम्राट् के पास जाकर शिकायत करें।"

"सो उसकी मुझे कुछ विशेष चिन्ता नहीं है। जो हत्या के अपराध के बंधन

प्रमाणित हो जाने पर भी मुझे कुछ नहीं कहा गया तो सेठों की शिकायत पर मेरी क्या हानि हो सकती है ?"

"मेरा अभिप्राय यही है कुमार ! जिस प्रकार भी हो सके अपने कोषबल को बढ़ा कर सैनिक बल को भी बढ़ाओ। क्योंकि सैनिक बल से तुम संसार में अन्य भी अनेक कार्य कर सकोगे।"

"आपका यह मत यथार्थ है आर्य ! अब मैं मान गया कि आप मुझे जो कुछ परामर्श देते हैं वह सब प्रकार से मेरा हितकारी होता है। अब मैं चम्पा के श्रेष्ठियों को बुलवा कर उनसे धन लेने का यत्न करूँगा।"

"यह न कहो कि धन लेने का यत्न करूँगा, वरन् यह कहो कि मैं निश्चय से उनसे धन वसूल करूँगा।"

"जैसी आपकी आज्ञा आर्य !"

आर्य देवदत्त अजातशत्रु को इस प्रकार का परामर्श देकर चले गये।

उनके जाने के उपरान्त अजातशत्रु ने चम्पा के श्रेष्ठियों को बुला कर उनसे धन मांगा। किन्तु कभी सीधी अंगुली घी निकला करता है ? जो श्रेष्ठी अजातशत्रु के चम्पा आने पर उसके सम्मुख अनेक प्रकार की भेंट ले-ले उपस्थित हुए थे, धन मांगने का प्रश्न आने पर वही बहाना बनाने लगे। अजातशत्रु ने उनको टालमटोल करते देखा तो उनको वहीं पकड़वा लिया। कई एक को धूप में खड़ा कर दिया गया, कुछ की टांग काठ में डाल दी गई। निदान, उसी दिन इच्छित परिमाण में धन अजातशत्रु के पास आ गया।

५५

अजातशत्रु के अत्याचारों की पुकार

वसन्त ऋतु होने के कारण मध्याह्न होने पर भी अभी धूप में तेजी नहीं आई है। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की राजसभा सभासदों, राजदूतों तथा प्रमुख नागरिकों से ठसाठस भरी हुई है। सम्राट् एक रत्नजटित भव्य सिंहासन पर विराजमान हैं। उनके सिर पर एक श्वेत छत्र लगा हुआ है। दासियाँ चंवर ढुरा रही हैं। इसी समय दौवारिक ने आकर सम्राट् से निवेदन किया—

"सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

"क्या है दौवारिक ?"

"देव, अंग देश की राजधानी चम्पापुरी के कुछ सम्भ्रान्त नागरिक देव के दर्शन करने की इच्छा से बाहिर खड़े हुए हैं। इन्हें क्या आज्ञा दी जावे।"

"उन्हें अन्दर आने दो, दौवारिक !"

सम्राट् के यह कहने पर दौवारिक वापिस लौट गया और उसके थोड़े ही समय के उपरान्त आठ भद्र पुरुषों ने सभाभवन में प्रवेश किया। उनके वस्त्र श्रेष्ठियों जैसे थे। उनके सिर पर पगड़ियाँ बँधी हुई थीं। उनकी आयु तीस वर्ष से लेकर पचास-पचपन वर्ष तक की थी। उन्होंने आते ही सम्राट् का अभिवादन किया—

"सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय हो।"

"क्यों, भद्रपुरुषो ! आपने राजगृह आने का कष्ट क्यों किया ?"

"देव ! आपकी आज्ञा से हमने आपके पुत्र कुमार अजातशत्रु का चम्पा में उसी प्रकार आदर किया जिस प्रकार हम आपका करते। किन्तु कुमार ने सिंहासन पर बैठने के एक सप्ताह के अन्दर ही हम लोगों को एक-एक करके बुलवाया और हम लोगों को ऐसी लम्बी-चौड़ी धन राशि देने को विवश किया, जिसे देकर हम सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत नहीं कर सकते थे। जब हमने धन

देने में असमर्थता प्रकट की तो उन्होंने हम पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये। कई-एक का पांव काठ में डलवा दिया गया, कई-एक को पिटवाया गया तथा कई-एक को बन्दीगृह में डाल दिया। कुमार द्वारा बतलाई हुई धन-राशि दिये बिना किसी का भी छुटकारा नहीं हुआ। देव ! हम आपकी निरीह प्रजा हैं। हमारी इस प्रकार के अत्याचारों से रक्षा करें।"

यह कहकर श्रेष्ठी लोग चुप हो गये।

सम्राट् उनके इन वचनों को सुनकर सोच में पड़ गये। वह मन में सोचने लगे—

"कुणिक से ऐसी आशा तो नहीं थी। उसको राज्य की अभिलाषा थी, तो उसको राज्य दे दिया गया, किन्तु अब वह वहां अत्याचार कर रहा है। उसका सेठ लोगों से इस प्रकार धन मांगने का क्या अभिप्राय हो सकता है? यह तो राजनीति के सर्वथा विरुद्ध है। क्या वह सैनिक तैयारी के लिये धन चाहता है? सैनिक तैयारी तो उसकी मेरे ही विरुद्ध हो सकती है। तो क्या मुझको उसे राजदण्ड देना चाहिये? किन्तु राजदण्ड देने से क्या उसके आत्मा का सुधार हो सकेगा? इससे तो उसके परिणाम और भी कलुषित हो जावेंगे और वह अन्य राजपुरुषों के साथ मिलकर प्रतिशोध लेने का यत्न करेगा। तब फिर उसके अत्याचारों को किस प्रकार बन्द किया जावे? कुणिक महत्त्वाकांक्षी है। संभव है कि चम्पा जैसे छोटे से राज्य से संतुष्ट न होकर वह सम्पूर्ण मगध राज्य को प्राप्त करने की अभिलाषा रखता हो और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये सैन्य-संग्रह करने के लिये वह धन एकत्रित कर रहा हो। किन्तु यदि ऐसी बात है तो इस स्थिति को किस प्रकार संभाला जावे। शक्ति का मुकाबला शक्ति से किया जा सकता है। उसको पकड़ कर बंदीखाने में भी डाला जा सकता है, किन्तु अन्त में तो वह पुत्र है। अपने पुत्र के साथ इतनी कठोरता! न, हम से इतना कठोर पग न उठाया जा सकेगा। तब क्या उसकी इच्छा की पूर्ति करके उसको मगध राज्य का शासन सौंप दिया जावे? किन्तु इसमें अनुचित ही क्या है? हम अब पर्याप्त वृद्ध हो चुके। हमको अब राजमुकुट का मोह छोड़कर उसे अपने उत्तराधिकारी को दे देना चाहिये।

ऐसा न करने से व्यर्थ का झंझट बढ़ेगा, जिससे मगध के राज-कुल की भारी हानि होने की संभावना है। फिर कुणिक हमारे वर्तमान पुत्रों में दर्शक के अतिरिक्त सबसे बड़ा भी है। उसको उत्तराधिकार प्राप्त करने का अधिकार है। उसको राजगृह के अतिरिक्त शेष मगध का राज्य-सिंहासन देकर क्यों न सब प्रकार के झगड़ों को प्रारम्भ में ही समाप्त कर दिया जावे। फिर यह भी संभव है कि अधिक विस्तृत राज्य पाने पर सम्पूर्ण साम्राज्य का स्वामी बन कर कुणिक में अधिक उदारता आ जावे और वह प्रजा पर अत्याचार करना बंद कर दे। किन्तु इसमें एक और भी खतरा है। संभव है कि कुणिक की वृत्तियां न सुधरें और वह सम्पूर्ण राज्य-कोष को चपलतावश बर्बाद कर दे। फिर क्यों न मैं साम्राज्य की बागडोर कुणिक के हाथ में देकर केवल राज्यकोष को अपने पास रखूं। इससे उसकी इच्छा-पूर्ति भी हो जावेगी और उसके द्वारा साम्राज्य को हानि पहुंचने की संभावना भी नष्ट हो जावेगी। हां, यही विचार सबसे अच्छा रहेगा। कुणिक को चम्पापुरी से बुलाकर साम्राज्य का राज्य देना ही चाहिये। दर्शक राजगृह का शासक बना रहे। चम्पा में उसको रखने से अब कुछ भी लाभ नहीं है। मैं कुणिक को यहां बुलवाने के लिये अभी आज्ञा-पत्र भिजवाता हूं।"

यह विचार करके सम्राट् महामात्य वर्षकार से बोले—

"महामात्य! आप कुमार अजातशत्रु को पत्र भेज दें कि वह चम्पा से अविलम्ब राजगृह चला आवे।"

"जो आज्ञा श्रीमान्!"

साम्राज्य की बागडोर

राजगृह में आज चारों ओर लोग कानाफूसी करते हुए दिखलाई दे रहे हैं। आज नगर में सर्वत्र यह किम्वदन्ती सुनाई दे रही है कि वृद्ध सम्राट् बिम्बसार अपना राजसिंहासन कुणिक अजातशत्रु को सौंप रहे हैं। जनता में इस समाचार से अत्यधिक असंतोष दिखलाई दे रहा है। स्थान-स्थान पर आठ-आठ, दस-दस की टोली में खड़े होकर लोग इसी विषय की चर्चा कर रहे हैं। एक टोली में एक व्यक्ति बोला—

"भाई ! अब तो राजगृह में रहना कठिन हो जावेगा। सुनते हैं कि सम्राट् को पदच्युत करने के लिये कुणिक बड़ी भारी सेना लेकर चम्पापुरी से चला आ रहा है और वह यहां के राजसिंहासन पर बैठकर यहां भी चम्पापुरी जैसे ही अत्याचार करेगा। क्यों भाई वीरभद्र ! तुमने भी यह समाचार सुना है ?"

"तुम तो भाई यज्ञदत्त बड़े भोले हो, तुम न जाने कहां से इस प्रकार की चण्डूखाने की गप्पें सुनाया करते हो।" वीरभद्र ने यज्ञदत्त की बात का उत्तर दिया।

"तो इसका अर्थ यह हुआ कि तुमको वास्तविक बात का पता है।" यज्ञदत्त ने वीरभद्र से पूछा।

"इसमें भी कोई संदेह है ?" वीरभद्र ने उत्तर दिया।

"तो भाई, इस गुत्थी को सुलझा कर हमारे संदेह का भी तो निवारण करो।" अचिन्तराम ने वीरभद्र से कहा।

"अच्छा सुनो, मैं आप लोगों को वास्तविक बात बतलाता हूं।" वीरभद्र बोला। "बात यह है कि चम्पापुरी के कुछ सेठ सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के पास यह शिकायत लेकर आये थे कि अजातशत्रु चम्पापुरी में बड़े-बड़े अत्याचार कर रहा है और उसने वहां के अनेक श्रेष्ठियों से धन छीना है। इस पर

सम्राट् सोचने लगे कि यदि उसे अधिक विशाल राज्य का स्वामी बना दिया जावे तो संभवतः उसके अत्याचार बंद हो जावेंगे। यह सोचकर सम्राट् ने अजातशत्रु को चम्पापुरी से बुला कर उसको राजगृह के अतिरिक्त शेष सारे मगध-साम्राज्य का राज्य दे दिया।"

"राजगृह का राज्य तो महारानी क्षेमा के पुत्र दर्शक के हाथ में था," अचिन्तराम ने बीच में टोक कर कहा "और वह अजातशत्रु से बड़ा भी है। इस प्रकार तो सम्राट् ने दर्शक के अधिकार का अपहरण करके उसके साथ अन्याय किया।"

"यह बात आपकी किसी अंश तक ठीक है।" वीरभद्र ने उत्तर दिया। "किन्तु सम्राट् का विचार साम्राज्य के दो भाग करने का था। वह राजगृह-सहित साम्राज्य का मुख्य भाग दर्शक को देकर शेष भाग अजातशत्रु को देना चाहते थे, किन्तु दर्शक ने इस बात को स्वीकार नहीं किया।"

"अच्छा, इसी बात से रुष्ट होकर दर्शक भगवान् बुद्ध के पास जाकर बौद्ध साधु बन गया।" यज्ञदत्त बोला। "संभवतः उसके साधु बनने का कारण वैराग्य की अपेक्षा सम्राट् का अन्याय ही था।"

"तो क्या दर्शक के बौद्ध साधु बन जाने पर सम्राट् ने राजगृह का शासन भी अजातशत्रु को सौंप दिया?" अचिन्तराम ने वीरभद्र से पूछा।

"नहीं, राजगृह तथा कोषबल के अधिकार को सम्राट् ने अभी अपने पास रहने दिया है और साम्राज्य के शेष भाग का शासक उन्होंने अजातशत्रु को बना दिया है।"

"तो क्या उससे अजातशत्रु की प्रकृति बदल जावेगी?" यज्ञदत्त ने पूछा। "और वह प्रजा पर अत्याचार करना बन्द कर देगा?"

"यह अपने-अपने दृष्टिकोण की बात है।" वीरभद्र ने उत्तर दिया। "अजातशत्रु सम्राट् को अपने मार्ग से हटा कर मगध-साम्राज्य का सम्राट् बनना चाहता है। मेरी सम्मति में तो वह जो कुछ अत्याचार कर रहा है वह सम्राट् बनने की कामना से ही कर रहा है और जब तक वह सम्राट् नहीं बन जावेगा उसकी इस प्रवृत्ति में अन्तर नहीं पड़ेगा। इसमें संदेह नहीं कि

उसके इस कार्य से संभ्रांत नागरिकों को कष्ट होता है। किन्तु साम्राज्य-निर्माण जैसे महान् कार्य में व्यक्तियों की अपेक्षा समष्टि के हित का ध्यान अधिक रखना पड़ता है।"

"तो क्या आपका भाव यह है कि अजातशत्रु का इन अत्याचारों में भी आन्तरिक भाव शुद्ध है और वह सम्राट् होकर अपने पिता से भी अधिक उत्तम शासक सिद्ध होगा ?" अचिन्तराम ने पूछा।

"आप मेरे भाव को कुछ-कुछ तो समझ गये," वीरभद्र ने उत्तर दिया। "किन्तु पूर्णतया नहीं समझे। मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि अजातशत्रु सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार से अधिक उत्तम शासक सिद्ध होगा। वरन् मेरे कहने का अभिप्राय है कि वह उनसे बड़ा सम्राट् बनने की आकांक्षा रखता है। आज सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार के पास जितना बड़ा साम्राज्य है, अजातशत्रु उससे संतुष्ट नहीं है। वह शासनसत्ता प्राप्त करने पर उसको बढ़ाने का पूर्ण प्रयत्न करेगा।"

"तो इसका यह अभिप्राय हुआ कि अजातशत्रु के सम्राट् बनने से आस-पास के स्वतंत्र जनपदों पर विपत्ति का पर्वत टूट गिरेगा ?" अचिन्तराम ने कहा।

"हां, मेरी सम्मति में उसकी सभावना बहुत अधिक है।" वीरभद्र ने उत्तर दिया। "अजातशत्रु बाल्यावस्था से ही साम्राज्यवादी है। वह साम्राज्य-विस्तार के मार्ग में बाधक प्रत्येक प्रकार के सम्बन्ध की उपेक्षा कर देगा, फिर भले ही संसार उसे अत्याचारी क्यों न समझे।"

"तो उसके एक बड़ा भारी साम्राज्य बनने से प्रजा को क्या लाभ होगा ?" यज्ञदत्त ने पूछा।

"प्रजा के लाभों के विषय मे कुछ न पूछो !" वीरभद्र ने उत्तर दिया। "प्रजा को साम्राज्य बनने से बड़े भारी लाभ है। राज्यों का शासन स्थायी नहीं होता, अतः उसमें नागरिक स्वतंत्रता, आर्थिक स्वतंत्रता, व्यापारिक स्वतंत्रता में बराबर बाधा पड़ती रहती है। साम्राज्यों का निर्माण जिस प्रकार धीरे-धीरे

कई वर्षों में होता है उसी प्रकार उनका पतन भी एकदम नहीं होता। अतएव प्रत्येक जनपद की जनता का हित इसी में है कि यथासंभव सारा भारतवर्ष केवल एक ही शासन के आधीन रहे, फिर उस शासन में राजतंत्र अथवा गणतंत्र कैसी भी शासनप्रणाली क्यों न हो।"

यह लोग इस प्रकार चर्चा कर ही रहे थे कि रथ पर बैठे हुए कुछ राजपुरुष राज्यघोषणा करते हुए दिखलाई दिये। जनता चारों ओर से दौड़-दौड़ कर उनकी ओर को जाने लगी। ये लोग भी दौड़कर उनकी ओर को चले। राजपुरुषों ने उच्चघोष से ढोल बजवा-बजवा कहना आरम्भ किया—

"सब प्रजावर्ग को सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की आज्ञा से यह घोषणा सुनाई जाती है कि आगे से राजगृह तथा कोषबल के शासन के अतिरिक्त साम्राज्य के शेष सारे विभागों के शासक रानी चेलना देवी के ज्येष्ठ पुत्र कुमार अजातशत्रु होंगे। उनके शासन में किसी प्रकार की बाधा न डाली जावे।"

जनता राजपुरुषों की इस घोषणा को सुनकर उस पर अनेक प्रकार की टिप्पणियां करती हुई अपने-अपने घर चली गई।

५७

राजगृह में सत्ता-हस्तान्तरीकरण

अजातशत्रु को मगध की अप्रतिहत सत्ता मिल गई और राजगृह में सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार का शासन रहा, किन्तु इतना बड़ा राज्य पाने पर भी अजातशत्रु के अत्याचारों में कमी न आई। पहिले तो वह अकेले चम्पापुरी के श्रेष्ठियों से ही धन ऐंठा करता था, किन्तु अब उसने समस्त देश के धनिकों पर धन के लिये दबाव देना आरम्भ किया।

अजातशत्रु के अत्याचारों से तंग आकर समस्त देश का श्रेष्ठिवर्ग राजगृह आकर सम्राट् बिम्बसार के पास उसके अत्याचारों की शिकायत करने लगा। सम्राट् ने इन शिकायतों को सुनकर कुमार अजातशत्रु को बुलवा कर उससे कहा—

"देखो बेटा ! हमने तुम्हारी राज्य करने की अभिलाषा देखकर तुमको चम्पा का राज्य दिया था, किन्तु तुमने वहां श्रेष्ठिवर्ग पर धन के लिये अत्याचार किये। जब हमको तुम्हारे इन अत्याचारों का पता चला तो हमने सोचा कि संभवतः एक बड़े साम्राज्य का शासन पाकर तुम अपने अत्याचार बंद कर दोगे, किन्तु हम देखते हैं कि तुम्हारे अत्याचारों की गति में कोई अन्तर नहीं आया है। बेटा, राजाओं को प्रजा का पालन पुत्र के समान करना चाहिये। जो राजा प्रजाओं का पालन न करके उनके ऊपर अत्याचार करते हैं, उनको अंत में प्रजाओं के विद्रोह का मुकाबला करना होता है। इसलिये बेटा तुम अपने क्षेत्र में सावधानी से अपनी प्रजाओं का पालन करो।"

अपने पिता के इन नीतियुक्त वचनों को सुनकर अजातशत्रु बोला—

"पिता जी ! मुझे आपने अभी साम्राज्य के शासन का भार दिया ही कहां है ? आप राजगृह में बैठे हुए सारे साम्राज्य का संचालन करते रहते हैं। मैं तो केवल आपके प्रतिनिधि के रूप में शासन करता हूं। शासक के रूप में

आप

मेरी स्वतंत्र सत्ता है ही कहां ? जो मेरे मन में प्रजापालन की उत्तरदायित्वपूर्ण भावना का उदय हो।"

अजातशत्रु के यह वचन सुनकर सम्राट् बोले—

"किन्तु हम तुम्हारे शासन में हस्तक्षेप तो नहीं करते। जितने प्रदेश का शासनाधिकार तुमको मिला हुआ है, उसमें हम तुम्हारी सत्ता को कभी भी चुनौती नहीं देते। तुमको भी इस अंश में उत्तरदायित्व से काम लेना चाहिये।"

इस पर अजातशत्रु ने उत्तर दिया—

"पिता जी ! यह माना कि आप मेरे शासन में हस्तक्षेप नहीं करते, किन्तु मुझ को तो आपके हस्तक्षेप का खटका सदा ही लगा रहता है, अतएव जब तक राजगृहसहित समस्त सत्ता मेरे हाथ में नहीं आती, तब तक मुझ में उत्तरदायित्व की भावना किस प्रकार आ सकती है ?"

अजातशत्रु का यह कथन सुनकर सम्राट् कुछ देर तक विचारमग्न रह कर बोले—

"तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि तुम केवल कुमार बने रहने से संतुष्ट नहीं हो वरन् सम्राट् बनना चाहते हो।"

"तो क्या मेरी यह अभिलाषा अनुचित है पिताजी ?" अजातशत्रु ने उत्तर दिया।

"हम उसको अनुचित तो नहीं कहते कुमार !" सम्राट् ने अजातशत्रु को उत्तर दिया। "किन्तु हमको भी तो यह आश्वासन मिलना चाहिये कि यदि तुम कुमार्ग पर जाने लगे तो हम तुम पर किसी प्रकार का नियंत्रण रख सकें।"

"नियंत्रण तो आप पिता के रूप में सदा ही रख सकते हैं पिताजी !" अजातशत्रु ने सम्राट् से कहा।

"किन्तु बिना अधिकार नियंत्रण नहीं किया जा सकता कुमार !" सम्राट् बोले। "यह भी तुमको स्मरण रखना चाहिये।"

"तो आप बतलाइये कि आप मुझे राजगृह का शासन देकर अपने पास किस प्रकार का अधिकार रखना चाहेंगे ?" अजातशत्रु ने पूछा।

"मैं समझता हूं कि यदि मैं कोषबल पर अपना अधिकार रखकर राजगृह-सहित समस्त साम्राज्य की बागडोर तुम्हारे हाथ में सौंप दूं तो संभवतः तुम्हारे ऊपर कुछ नियंत्रण रख सकूंगा।" सम्राट् ने कहा।

"किन्तु पिताजी बिना कोषबल के कोई राजा किस प्रकार शासन कर सकता है ?" अजातशत्रु ने पूछा

"हमारे कोषबल रखने का यह अर्थ नहीं होता कि तुमको शासन-कार्य के लिये धन नहीं मिलेगा," सम्राट् बोले। "उसका तो केवल यह अभिप्राय होगा कि साम्राज्य के व्यय की हमको सदा नियमित सूचना मिलती रहे।"

"अच्छा तो यह बात ठीक है," अजातशत्रु ने सम्राट् बिम्बसार से कहा। "अभी आप अपने पास कोषबल रखकर शेष सारा साम्राज्य मुझे दे दें।"

"अच्छा कल मैं तुम्हारा राज्याभिषेक कर दूंगा।" यह कहकर सम्राट् ने कुमार अजातशत्रु को विदा कर दिया।

अगले दिन राजमहल के सभाभवन में एक भारी दरबार किया गया। इस अवसर के लिये राजदरबार को विशेष रूप से सजाया गया था। स्थान-स्थान पर विशेष रूप से फर्श बिछवा कर खम्भों तक को सजाया गया था। विशेष दरबार के लिये राज्य भर में घोषणा करवा दी गई थी। विदेशी राजदूतों को विशेष रूप से निमंत्रित किया गया था। राजदरबार का समय डेढ़ पहर दिन चढ़े रखा गया था। किन्तु जनता उसके एक पहर पूर्व ही आनी आरम्भ हो गई थी। अतः सधारण नागरिकों, पौरों, जानपदों तथा राज्याधिकारियों से सारा सभाभवन खचाखच भर गया। इसके पश्चात् नगर के सम्भ्रान्त नागरिक तथा विदेशी राजदूत आये और अपने लिये विशेष रूप से नियत स्थान पर बैठ गये। ठीक समय होने पर राजमहल के द्वार से सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार अजातशत्रु तथा महामात्य वर्षकार के साथ आते हुए दिखाई दिये। उनके आते ही जनता ने अत्यन्त हर्षित होकर इस प्रकार जय-ध्वनि की—

"सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार की जय।"

"युवराज अजातशत्रु की जय।"

सम्राट् सभाभवन में आकर राजसिंहासन पर बैठ गए। उनके साथ

एक दूसरे सिंहासन पर कुमार अजातशत्रु बैठा। उन दोनों के बैठ जाने के बाद महामात्य वर्षकार भी अपने स्थान पर बैठ गये। सबके बैठ जाने पर सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार उठकर बोले—

"राज्याधिकारियो, सामन्तो, सम्भ्रान्त पुरुषों तथा पौरजानपदो! आप देखते हैं कि अब हम बहुत वृद्ध हो चुके हैं और राज्य-कार्य करते-करते हमारा मन भी भर गया है। हम आज आपके सामने अपने उत्तराधिकार के प्रश्न का आपकी सम्मति से निर्णय करना चाहते हैं। आप जानते हैं कि इस समय हमारे अधिकांश पुत्र भगवान् महावीर स्वामी अथवा महात्मा गौतम बुद्ध के पास दीक्षा ले चुके हैं। वैदेही महारानी चेलना देवी के दो पुत्र वारिषेण तथा गजकुमार भी भगवान् महावीर स्वामी के समवशरण में जैन दीक्षा ले चुके हैं। अब हमारे पास वैदेही रानी के केवल निम्नलिखित पांच पुत्र ही शेष हैं—१. कुणिक अजातशत्रु, हतल, विदल, जितशत्रु तथा मेघकुमार। इनमें से कुणिक अजातशत्रु ही सबसे बड़ा होने के कारण हमारे साम्राज्य का अधिकारी है। कुमार अजातशत्रु योग्य तथा पराक्रमी है। उसमें साम्राज्य को बढ़ाने की अभिलाषा तथा योग्यता दोनों का ही अभाव नहीं है। किन्तु जिस प्रकार हमको युवराज अभयकुमार की शासन-योग्यता को देखने का अवसर मिला था, इस प्रकार अजातशत्रु की योग्यता को देखने का अवसर नहीं मिला। इधर वृद्ध होने के कारण न तो हमारे पास उसकी शासन-योग्यता को देखने का और न कुमार अजातशत्रु के ही पास अपनी योग्यता दिखाने का अवकाश है। हमारी इच्छा है कि हम कुछ नाम मात्र के नियंत्रण के साथ साम्राज्य का सारा शासन अजातशत्रु को आज सौंप दें। हमारे हाथ में कोषबल के अतिरिक्त और कुछ न रहेगा। साम्राज्य का समस्त आय-व्यय हमारी जानकारी में किया जावेगा और अजातशत्रु सम्राट् के रूप में सारे साम्राज्य का संचालन करेगा। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि हमारी इच्छा अजातशत्रु को आज युवराज बनाने की नहीं वरन् सम्राट् बनाने की है। हम जानना चाहते हैं कि आपमें से किसी को इस विषय में कोई आपत्ति तो नहीं है।"

इस पर उपस्थित सज्जन "स्वीकार है। स्वीकार है" का शब्द कहने लगे।

इस पर सम्राट् फिर बोले—

"यदि इस प्रस्ताव से किन्हीं महाशय का मतभेद हो तो वह अपना हाथ उठाकर संकेत करें।"

किन्तु सम्राट् के इतना कहने पर भी किसी का हाथ नहीं उठा। इस पर सम्राट् फिर बोले—

"इससे सिद्ध हो गया कि आप सब अजातशत्रु को अपना सम्राट् बनाने के लिये सम्मत हैं। अब अजातशत्रु के राज्यारोहण की विधि आरम्भ की जाती है।" यह सुनते ही जनता ने फिर जयघोष किया—

"सम्राट् अजातशत्रु की जय।"

इसके पश्चात् ऋषियों ने उठकर वेदमन्त्रों तथा जैनमन्त्रों से अजातशत्रु का प्रथम सात समुद्रों के जल से, फिर सातों पवित्र नदियों के जल से, फिर राजगृह के २१ कुण्डों के जल से अभिषेक किया। इसके पश्चात् उसको सम्राट् के योग्य वस्त्र पहिनाकर उसके सिर पर राजमुकुट रखा गया। राज्यारोहण की विधि पूरी हो जाने पर महामात्य वर्षकार तथा अन्य राज्याधिकारियों ने सम्राट् अजातशत्रु के प्रति भक्ति की शपथ ली। राज्यारोहण विधि के समाप्त हो जाने पर जनता ने एक बार फिर 'सम्राट् अजातशत्रु की जय' बोली ? इसके पश्चात् राज-सभा को विसर्जित कर दिया गया। सम्राट् बिम्बसार अजातशत्रु को लेकर राजभवन चले गये।

५८

भीषण मन्त्रणा

"आप खूब आये !" अजातशत्रु ने देवदत्त से कहा। "मैं आपका मन ही मन ध्यान कर रहा था।"

"तुम्हारे सम्राट् बनने के समाचार को सुनकर मुझको राजगृह आने का कार्यक्रम बनाना ही पड़ा।"

"तो ऐसी जल्दी की बात क्या थी ?"

"क्यों, जल्दी की बात क्यों नहीं थी ? तुम जिस रूप में सम्राट् बने हो वह अधिक अभिनन्दनीय नहीं है।"

"मैं इसको बिलकुल ही नहीं समझा देव ! मेरा सम्राट् बनना अभिनन्दनीय क्यों नहीं है ?"

"इसलिये कि तुम असली सम्राट् न होकर नकली सम्राट् हो।"

"वह किस प्रकार ?"

"बात यह है कुमार ! कि तुम बिना कोषबल के सम्राट् हो। कहीं बिना कोषबल के सम्राट् भी हुआ करते हैं ?"

"तो इसमें क्या बाधा है ? पिता जी मेरे किसी व्यय में बाधा तो नहीं डालते।"

"तुम बहुत भोले हो अजातशत्रु, स्मरण रखो कि जिसका कोषबल पर अधिकार होता है वही वास्तविक शासक होता है। इसलिये कोषबल के कारण वास्तविक सम्राट् आज भी तुम्हारे पिता श्रेणिक बिम्बसार ही हैं, फिर भले ही उनके पास राजमुकुट, छत्र तथा सिंहासन न हो। तुम तो केवल उनकी छाया होने के कारण केवल छाया-सम्राट् हो।"

"मैंने माना कि कोषबल मेरे हाथ में न होकर पिता जी के हाथ में है। किन्तु जब वह मेरे कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करते तो उससे मुझे क्या हानि है ?'

"हस्तक्षेप करते नहीं किन्तु कर तो सकते हैं। कल्पना करो कि तुम बौद्ध संघ को कोई ऐसा बड़ा दान करना चाहते हो जो जैन होने के कारण उनको पसंद नहीं तो वह तुम्हारे उस दान में निश्चय से बाधा डालेंगे। फिर यह भी कहावत है कि 'पर-राज्य से अपना कुराज्य अच्छा होता है।' अर्थात् दूसरा व्यक्ति अपने ऊपर कितना ही अच्छा शासन क्यों न करे, किन्तु वह सदा ही पर-राज्य है। उस पर-राज्य की अपेक्षा अपना राज्य सदा ही अच्छा होता है, फिर भले ही अनुभवहीनता के कारण अपने राज्य में कुछ त्रुटियां रह जावें।"

"जहां तक नीति का प्रश्न है आपकी बात ठीक है, किन्तु जहां तक व्यवहार का प्रश्न है, मुझे उसमें अभी तक भी कोई हानि दिखलाई नहीं देती।"

"तुम यह बतलाओ अजातशत्रु कि व्यवहार नीति का अनुसरण करता है अथवा नीति व्यवहार का अनुसरण करती है ?"

"अनुसरण तो व्यवहार को ही करना पड़ेगा।"

"फिर तुम्हीं समझ लो कि व्यवहार में अभी कोई हानि न होने पर भी न जाने कब ऐसी स्थिति बन जावे कि यह कार्य नीतिविरुद्ध दिखलाई देने लगे।"।

"हाँ, यह बात आपकी मेरी समझ में आती है।"

"सभी कुछ समझ में आ जाएगा वत्स ! तुम विद्वान् हो, नीतिज्ञ हो तथा साम्राज्यकामी हो। इसीलिये मैंने तुमसे इतनी बात कही, अन्यथा दूसरे से मैं इतनी बात कभी न कहता।"

"तो फिर मुझे क्या करना चाहिये ?"

"तुम्हें कोषबल को अविलम्ब अपने अधिकार में लेना चाहिये।"

"किन्तु यदि पिता जी राजी से न दें तो ?"

"तो ऐसी स्थिति में तुमको उनकी प्रसन्नता अथवा अप्रसन्नता का ध्यान छोड़ना पड़ेगा।"

"यह बात आपकी बिलकुल ठीक है आर्य ! मैं बड़े भ्रम में था। आपने आकर मेरी आंखें खोल दीं।"

"इसीलिये तो मैं अबकी वार किसी विहार में न ठहर कर तेरे पास ठहरा। विहार में ठहरते तो यह पता सबको चल जाता कि तुम्हारी-हमारी गुप्त वार्ता हुई है। किन्तु राजभवन के वार्तालाप का किसी को पता भी न लगेगा।"

"हां, यह बात आपकी ठीक है। किन्तु अब यह बतलाइये कि पिता जी से मैं कोषबल किस प्रकार मांगू ।"

"तुम प्रथम अपनी सेनाओं में अपने पिता के विरुद्ध प्रचार-कार्य आरंभ कर दो। यह कार्य बड़ी सतर्कता से करना होगा। यह पता बिलकुल न लगने पावे कि उस प्रचार-कार्य में तुम्हारा अथवा मेरा हाथ है।"

"सेनाओं में प्रचार की क्या आवश्यकता है आर्य ?'

"इसलिये कि यदि तुम्हारे पिता ने तुमको कोषबल देना राजी से स्वीकार न किया तो तुम उनसे बलपूर्वक ले सको ।"

"किन्तु सेनाएं मेरे प्रति भक्ति की शपथ ले चुकी हैं। वह मेरी आज्ञा अवश्य मानेंगी।"

"इससे पूर्व सेनाओं ने तुम्हारे पिता के प्रति भी तो राजनिष्ठा तथा भक्ति की शपथ ली थी। वह अपनी प्रथम शपथ को मानेंगी अथवा द्वितीय शपथ को।"

"तब तो द्वितीय शपथ की अपेक्षा प्रथम को ही प्रधानता देनी होगी ।"

"मेरा अभिप्राय बिलकुल यही है। तुम सेना की शपथ का ध्यान न कर उनको इस प्रकार अपने वश मे करो कि यदि तुम अपने पिता को कैद करने की आज्ञा भी दो तो सेनाएं उसमें ननु-नच न करें।"

"सेनाएं बहुत कुछ मेरे वश में हैं। मैं जब चम्पापुरी में था, तब भी सेनाओं की सुख-सुविधा का विशेष ध्यान रखता था। आज भी मैं इस बात में उदासीन नहीं हूं। यद्यपि पिता जी ने सेनाओं के श्रेणी रूप को समाप्त कर दिया है, किन्तु वह अपने उस रूप की अपेक्षा अपने वर्तमान रूप में मेरी अधिक भक्त हैं। मैं भी उनकी प्रत्येक प्रकार की सुख-सुविधा का विशेष ध्यान रखता हूँ।"

"खैर, मैंने तुमको बतला दिया, अब उसके ऊपर आचरण करना तुम्हारा काम है। मेरा विश्वास है कि तुम्हारे पिता तुमको राजी से कोषबल का अधिकार कभी भी न देंगे।"

"यह तो मै भी समझता हूं और मुझ को वह अधिकार सैनिक बल से ही लेना होगा।"

"मेरा आशय बिलकुल यही था सौम्य! तुम अपने पिता के स्वतंत्र रहते किसी प्रकार भी वास्तविक सम्राट् नहीं बन सकते। समझ गये न ?"

"मैं खूब समझ गया, आर्य!"

"अच्छा तो अब हम जाते हैं।"

"जैसी आर्य की इच्छा !"

इस प्रकार देवदत्त राजगृह के राजवंश में आग की एक चिनगारी फेंक कर वहां से चले गयें।

५६

कोषबल पर अधिकार

प्रहर भर रात्रि गई होगी। शरद् ऋतु होने के कारण सभी लोग अपने-अपने घरों में गरम वस्त्रों में घुसे हुए हैं। सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार भी अपने शयन-कक्ष में विश्राम कर रहे थे कि अजातशत्रु ने प्रवेश करके कहा—

"मै, अन्दर आ सकता हूं, पिता जी ?"

"हां, बेटा अवश्य आओ।"

इस समय अजातशत्रु सैनिक वेष में था। उसने अपने शरीर पर सभी अस्त्र-शस्त्र लगा रखे थे। सैनिक वेष में वह बहुत सुन्दर दिखलाई दे रहा था। उसके अन्दर आने पर सम्राट् ने उसे एक आसन पर बैठने का संकेत करते हुए पूछा—

"क्यों, आज इस सैनिक वेष में क्यों हो बेटा ?"

"मै अभी सेनाओं को व्यूहबन्दी का अभ्यास करते देख रहा था कि वही वस्त्र पहने हुए यहां चला आया।"

"व्यूहबंदी के अभ्यास की ऐसी क्या आवश्यकता आ पड़ी, जो दिन मे न करके इस समय रात में किया गया ?"

"पिता जी ! मैं सेनाओं को प्रातःकाल तथा सायंकाल दोनों समय युद्धाभ्यास कराता हूं और स्वयं अपने निरीक्षण में कराता हूँ।"

"क्या कोई सैनिक अभियान करने का विचार है ?"

"कोई विशेष विचार तो नहीं है, पिता जी ! किन्तु मै भारत में एकछत्र चक्रवर्ती राज्य की स्थापना करना चाहता हूं। मैं न केवल सोलहों महाजनपदों को मगध के राजमुकुट की आधीनता में लाना चाहता हूं, वरन् यथाशक्ति किसी भी राज्य को स्वतंत्र रहने देना नहीं चाहता। छोटे-छोटे स्वतंत्र राज्य प्रजा के लिये अभिशाप होते हैं पिता जी!"

"मुझे तुम्हारे यह वचन सुनकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है बेटा ! तुम जानते हो कि शिशुनाग वंश की स्थापना तुम्हारे पितामह ने की थी, किन्तु मगध को साम्राज्य का रूप मैंने दिया है। अंग देश की विजय से हमारे साम्राज्य-निर्माण का मार्ग खुल गया है। मुझे यह देख बड़ी भारी प्रसन्नता हो रही है कि तुम मेरे द्वारा आरंभ किये हुए कार्य को पूरा करने की अभिलाषा रखते हो।"

"किन्तु पिता जी ! मेरे उन सभी कार्यों में भारी बाधा पड़ रही है।"

"कैसी बाधा बेटा ?"

"कोषबल की पिता जी !"

"तो धन खर्चने से तो मैं तुमको रोकता नहीं।"

"फिर भी पिता जी ! यह कार्य इतनी गोपनीयता से किया जाना चाहिये कि दाहिने हाथ द्वारा किये हुए को बायां हाथ भी न जाने।"

"तो तुम्हारी गोपनीयता में क्या त्रुटि रह जाती है ?"

"बात यह है कि कोषबल पर आपका अधिकार होने से मेरे व्यय के भेद कोषाधिकारियों को पता लग जाते हैं। यह बात हमारे लिये आगे चलकर हानिप्रद हो सकती है।"

"तो तुम कोष के अधिकारियों को बदल दो।"

"अधिकारी तो फिर भी रहेंगे ही।"

"अच्छा, अधिकारियों को हटा दो, हम स्वयं उस कार्य को किया करेंगे।"

"आप इस वृद्धावस्था में इतना कार्य नहीं कर सकते पिता जी !"

"तो तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?"

"मेरा अभिप्राय यह है पिता जी ! कि आप साम्राज्य के शासन के साथ कोषबल का शासन-कार्य भी मुझे दे दें।"

"देखो, बेटा, अभी हमको तुम्हारी संगति पर संतोष नहीं है। जब हमको तुम्हारी संगति पर संतोष हो जावेगा तो हम तुमको कोषबल का शासन सौंप देंगे।"

"क्या आपकी दृष्टि में मेरे पास किसी अवांछनीय व्यक्ति का आना-जाना होता रहता है ?"

"निश्चय से ऐसा ही है, बेटा !"

"आपका संकेत किस व्यक्ति से है पिता जी ?"

"देवदत्त से, बेटा ! यह अच्छा आदमी नहीं है। उसने स्वयं अपने चचेरे भाई महात्मा गौतम बुद्ध के विरुद्ध विद्रोह करके बौद्ध संघ में फूट डाली। अब वह मगध के राजकुल में भी फूट डालने का यत्न कर रहा है। यदि तुम देवदत्त की संगति छोड़ने का वचन दो तो मैं कोषबल का शासन तुमको अविलम्ब देने को तैयार हूँ।"

अपने पिता के यह शब्द सुनकर अजातशत्रु को क्रोध आ गया, वह पैर पटक कर जोर से कहने लगा—

"मैं अपने गुरु की निन्दा नहीं सुन सकता पिता जी ! मुझे राज्य देने के कारण आप नहीं, वरन् आर्य देवदत्त हैं। उनकी निन्दा के लिये आपको प्रायश्चित्त करना होगा।"

इस पर सम्राट् को भी क्रोध आ गया और बोले—

"क्या अनर्गल बोल रहा है बच्चे ! प्रायश्चित्त और वह भी हम ही को करना पड़ेगा !"

"निश्चय आपको आर्य देवदत्त की निन्दा करने का प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। मैं आपको बन्दी करता हूं।"

"देखूं तो तू मुझे कैसे बन्दी करता है।"

यह कहकर वृद्ध राजा उठकर खड़े हो गये। किन्तु अजातशत्रु इसके लिये पहले ही तैयार होकर आया था। उसने फुर्ती से उठकर अपने पिता को बलपूर्वक पृथ्वी पर गिरा दिया और हाथ बांध दिये। इसके पश्चात् उसने उनको उस कक्ष से निकाल कर जेल में ले जाकर डाल दिया। अजातशत्रु ने पिता को बन्दीगृह में डाल कर बलपूर्वक कोषबल पर अधिकार कर लिया।

आज राजगृह में बड़ी सनसनी फैली हुई है। सब ओर आतंक छाया हुआ है। प्रजावत्सल, न्यायकारी तथा धार्मिक जीवन वाले वृद्ध सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार को उनके पुत्र कुणिक अजातशत्रु द्वारा बन्दीगृह में डाल दिये जाने से जनता में बड़ा भारी असन्तोष है, किन्तु खुलकर कहने का किसी को साहस नहीं हो रहा है। तो भी नगर के प्रत्येक व्यक्ति के मुख पर यही चर्चा है।

सब कोई इसी विषय की चर्चा कर रहे हैं। सम्राट् को बन्दी हुए आज लगभग पन्द्रह दिन हो गये, किंतु नगर के आतंकमें कोई कमी नहीं है। आज नगर में अचानक यह अफवाह फैल गई कि सम्राट् बिम्बसार का अपने बन्दी जीवन में देहान्त हो गया। एकदम सभी बाजार बन्द हो गये। सारी दूकानों में ताले पड़ गये। सड़कें सुनसान दिखलाई देने लगीं। लोग दो-दो, चार-चार की टोलियों में एकत्रित होकर इसी घटना की चर्चा कर रहे थे। एक स्थान पर तो कुछ नवयुवक अत्यधिक उत्तेजित थे।

"इस प्रकार के अत्याचारों को अब सहन नहीं किया जा सकता। भाई सोम ! क्या तुम लोग इसी प्रकार देखते रहोगे ?"

सोम—तो भाई यज्ञदत्त ! हम कर भी क्या सकते हैं !

यज्ञदत्त—हम क्या नहीं कर सकते ? विद्रोही प्रजा बड़े से बड़े शासकों को भी राज्यच्युत कर सकती है। क्यों भाई प्रभुदत्त ठीक है न ?

प्रभुदत्त—आपकी बात तो ठीक है, किन्तु यहां विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या हमारे विद्रोह करने से हमारा अथवा सम्राट् का कुछ हित हो सकता है ?

यज्ञदत्त—सम्राट् का हित क्यों नहीं हो सकता ?

प्रभुदत्त—हमारे पास इतनी शक्ति तो है नहीं कि हम विद्रोह करके एकदम सम्राट् को बन्दीगृह से छुड़ा कर तथा अजातशत्रु को राज्यच्युत करके उसके पिता को फिर सिंहासन पर बिठला दें, उलटे विद्रोह का यह परिणाम हो सकता है कि सम्राट् को बन्दीगृह में एकदम जान से मारकर हमको भी विद्रोह के अपराध में शूली दे दी जावे। क्यों भाई सोम ! तुम्हारी क्या सम्मति है ?

सोम—बात तुम्हारी सोलह आने ठीक है। विद्रोह या तो इतनी बड़ी तैयारी के साथ किया जावे कि उसे एकदम सफलता मिल जावे अन्यथा विद्रोह करने का नाम भी नहीं लेना चाहिये।

यज्ञदत्त—किन्तु हम को सम्राट् का स्वास्थ्य-समाचार तो ठीक-ठीक मिलना ही चाहिये।

यज्ञदत्त यह कह ही रहा था कि सोम एक ओर को अंगुली उठा कर प्रसन्न हो कर बोल उठा।

सोम—अच्छा, वह देखो सुभद्र इधर को ही आ रहा है। वह बन्दीगृह के प्रहरियों में से है। उससे सम्राट् के सम्बन्ध में सब समाचार ठीक-ठीक पता चल सकेंगे।

सोम के यह कहते-कहते सुभद्र भी वहीं आ पहुंचा। उसको देखकर सोम बोला—

"मित्र सुभद्र ! सब लोग सम्राट् के स्वास्थ्य का समाचार जानने को उत्सुक हैं। तुम बन्दीगृह के प्रहरी हो। भाई तनिक इस विषय पर थोड़ा प्रकाश तो डालो।"

इस पर सुभद्र बोला—

"आप लोग चिन्ता न करें। मैं सम्राट् के बन्दी जीवन के सम्बन्ध में आपको आरंभ से लेकर अब तक के सब समाचार सुनाता हूं।"

यज्ञदत्त—हां ! भाई ! जल्दी सुनाओ। हम लोग उसे सुनने के लिये अत्यधिक उत्सुक हैं।

सुभद्र—जब अजातशत्रु ने सम्राट् को उनके शयन-कक्ष में बन्दी किया तो उसने तत्काल उनको एक दो गज लम्बे, दो गज चौड़े तथा दो गज ऊंचे पिंजड़े में डाल दिया। रात्रि का समय था, जिससे इस घटना का पता किसी को भी नहीं लग सका और सम्राट् के उस पिंजरे को बन्दीगृह के एक एकान्त स्थान में सुगमता से पहुंचा दिया गया। आरंभ में उनको अत्यधिक कम भोजन दिया गया, जिससे वह भूख से तड़प-तड़प कर प्राण दे दें। उन दिनों सम्राट् से मिलने की अनुमति अजातशत्रु ने अपनी माता के अतिरिक्त और किसी को नहीं दी।

सोम—तो क्या चेलना रानी अपने पुत्र को इस कार्य से नहीं रोक सकीं ?

सुभद्र—राज्य एक ऐसा भारी नशा होता है कि उस नशे वाले व्यक्ति को अपने उद्देश्य के अतिरिक्त और कुछ भी दिखलाई नहीं देता। चेलना रानी ने अजातशत्रु को बहुत कुछ समझाया, किन्तु वह सम्राट् को छोड़ने को या

उनके साथ नम्रता पूर्ण व्यवहार करने को किसी प्रकार भी सहमत नहीं हुआ। उसने अपनी माता से यहां तक कह दिया कि 'माता, यदि तुमने इस विषय में अधिक आग्रह किया तो सम्राट् से तुम्हारा मिलना भी बन्दकर दिया जावेगा।' हताश होकर वह बेचारी भी अपना मन मार कर चुप हो गई। अजातशत्रु को उसकी पत्नी सुप्रभादेवी ने भी समझाया, किन्तु उसने उसकी बात भी न सुनी।

यज्ञदत्त—तो इसका यह अर्थ हुआ कि अजातशत्रु ने अपने पिता को अधिकारच्युत करने के उपरान्त अपनी माता को भी अधिकारच्युत कर दिया।

सोम—इसमें भी कोई संदेह है ? अच्छा सुभद्र ! तुम इस घटना को सुनाते चलो।

सुभद्र—महारानी चेलना ने जब देखा कि इतने अल्प भोजन से बन्दी सम्राट् अपने प्राणों की रक्षा नहीं कर सकेंगे तो वह छिप कर उनके लिये एक कटोरे में भोजन ले जाने लगी। किन्तु अजातशत्रु को इस घटना का पता चल गया।

यज्ञदत्त—तब अजातशत्रु ने क्या किया ?

सुभद्र—अजी, कुछ न पूछो। उसने माता को भी जान से मारने की धमकी देकर बन्दी सम्राट् के लिये भोजन ले जाने से रोक दिया ?

सोम—तो क्या वह पतिव्रता पतिसेवा करने से भी वंचित कर दी गई ?

सुभद्र—अजातशत्रु ने तो अपनी ओर से कोई कमी नहीं की, किन्तु वैदेही रानी ने अपने पति की सेवा करने का एक और उपाय निकाल लिया।

यज्ञदत्त—वह क्या था ! मित्र सुभद्र ?

सुभद्र—रानी चेलना ने एक ऐसे पोषक चूर्ण का आविष्कार किया जो अल्पतम मात्रा में खाये जाने पर भी जीवन धारण करने में सहायता दे सके। रानी इस चूर्ण को अपने शरीर पर मल कर राजा के पास जाया करती थी और राजा अपनी जीभ को पिंजरे से बाहिर निकाल कर रानी के शरीर को चाट लिया करता था।

इस घटना को सुनते ही सभी उपस्थित व्यक्तियों को रोना आ गया। सोम रोते-रोते बोला—

"हाय ! इतने बड़े साम्राज्य के स्वामी को इस प्रकार भूख से तड़पा-तड़पा कर मारा जा रहा है !"

सुभद्र—मित्र, इतने से ही अपने धैर्य को मत छोड़ो। अभी तो इससे भी भयंकर बात मैं आप को सुनाऊंगा।

यह सुनकर सोम चुप होकर बोला—

"अच्छा मित्र ! तुम इस घटना-चक्र के प्रवाह को आगे बढ़ाओ। मैं उसको सुनने के लिये अपने हृदय को पत्थर का बनाने का यत्न करूंगा।"

सुभद्र—किन्तु अजातशत्रु को अपनी माता के इस कार्य का भी कुछ दिनों बाद पता चल गया।

यज्ञदत्त—तो फिर उसने क्या किया ?

सुभद्र—फिर तो उसने अपनी माता का भी बन्दी सम्राट् से मिलना बन्द कर दिया ?

सोम—अच्छा, आजकल सम्राट् की तबियत कैसी है ?

सुभद्र—इन दिनों उनको वही आरंभ वाला अत्यधिक कम भोजन दिया जा रहा है, जिससे वह हर समय भूखे बने रहकर प्रतिक्षण मृत्यु के समीप पहुंचते जाते हैं।

यज्ञदत्त—अच्छा, बन्दी सम्राट् का इन पन्द्रह दिन का जीवन इतने अधिक कष्टों में बीता।

सुभद्र—किन्तु, मैं आपसे अब अनुमति लूंगा, क्योंकि मेरे पहरा देने का समय अब होने ही वाला है।

यह कहकर सुभद्र एक ओर को चला गया और शेष युवक भी इसी बात की आलोचना करते-करते अपने-अपने घर की ओर चले गये।

९०

बिम्बसार की मृत्यु

"मत रो मेरे लाल ! अंगुली के फोड़े में अभी चैन पड़ जावेगा।"

महारानी सुप्रभा देवी अपने बेटे उद्दायीभद्र को यह कहकर सान्त्वना देती जाती थीं, किन्तु बालक चुप होने का नाम नहीं लेता था। उसकी अंगुली में एक भयंकर फोड़ा निकला हुआ था, जिसकी बेचैनी से बच्चा बेचैन होकर जोर २ से रो रहा था। रानी जितना ही बच्चे को बहलाती जाती थी, वह उतना ही जोर से रोता जाता था। रानी के अतिरिक्त महल की दास-दासियां सभी बहला कर थक गईं, किन्तु बालक का रोना बन्द न हुआ। उसी समय वहां अजातशत्रु भी आ गया। बालक का कष्ट देखकर उसके हृदय में वात्सल्य का स्रोत उमड़ आया। उसने उद्दायीभद्र को गोद में लेकर पुचकारना आरंभ किया, किन्तु बालक तब भी चुप न हुआ। अन्त में अजातशत्रु ने बालक की फोड़े वाली अंगुली को मुख में रख लिया। मुख की गर्मी से अंगुली को कुछ सेक लगा, जिससे बच्चे को थोड़ा चैन पड़ गया। अब बच्चे का रोना कुछ कम हो गया। बच्चे को कुछ चुप होते देखकर अजातशत्रु ने उसकी अंगुली को अपने मुख में से निकाल दिया। इस पर बालक ने फिर रोना आरम्भ कर दिया। अजातशत्रु ने जब अंगुली को दुबारा मुख के अंदर रखा तो बालक फिर चुप हो गया।

इस प्रकार अजातशत्रु यह समझ गया कि मुख में अंगुली रखने से बच्चे को चैन पड़ जाता है, जिससे उसका रोना बन्द हो जाता है और इसी लिये वह अंगुली को मुख से निकाले जाने पर रोने लगता है। अजातशत्रु बच्चे की अंगुली को बहुत देर तक मुख में रखे रहा।

अजातशत्रु को उदायीभद्र की अंगुली को अपने मुख में रखे बहुत समय हो गया, जिससे मुख की उष्णता से फोड़ा फूट गया और उदायीभद्र को चैन पड़ गया, अजातशत्रु कुल्ला करके उदायीभद्र की अंगुली को फिर से देख

रहा था कि वहां उसकी माता महारानी चेलना देवी भी आ गई। वह सारे दृश्य को देखकर अजातशत्रु से बोली—

"बेटा ! पिता का प्रेम अपनी संतान पर कितना होता है, अब तेरी समझ में आ गया होगा। एक बार तेरी अंगुली में भी ऐसा ही फोड़ा निकला था। वह फोड़ा बहुत दिनों में जाकर पका था। जब तक फोड़ा नहीं पका, तेरे पिता उसी प्रकार तेरी अंगुली को अपने मुख में रखे रहते थे। तेरी अंगुली का फोड़ा तो उनके मुख में इस प्रकार फूटा था कि वह उसके मवाद को बड़ी कठिनता से थूक पाए थे।"

अपनी माता के इन शब्दों का अजातशत्रु पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसका हृदय द्रवित हो गया और वह कहने लगा—

"हाय ! मेरी बुद्धि को क्या हो गया था, जो मैंने अपने प्यारे पिता को ऐसे दुःख दिये। मैंने उनको जान-बूझ कर इतना कम भोजन दिया कि वह शीघ्र मर जावें। हाय, धिक्कार है मेरे जीवन पर कि मैंने अपने पिता पर ऐसे अत्याचार किये। न जाने पिता जी इस समय जीवित है या नहीं। यदि मुझे कोई व्यक्ति इस समय यह संवाद दे सके कि मेरे वृद्ध पिता अब भी जीवित हैं तो मैं उसे अपना सारा राज्य दे दूंगा।"

अजातशत्रु के मुख से यह वचन सुनते ही लोग वृद्ध राजा का समाचार लेने को बन्दीगृह की ओर भाग पड़े। राजा बिम्बसार इस समय न केवल अत्यधिक वृद्ध हो गए थे, वरन् कारावास तथा भूख के कष्ट के कारण उनका शरीर इतना निर्बल हो गया था कि हिलने-डुलने योग्य भी नहीं रह गए थे। उनके मुख पर एकदम मुर्दनी छा गई थी।

उन्होंने जो बाहर लोगों के भागने का शोर सुना तो उनको यही संदेह हुआ कि अजातशत्रु उनको कोई नया कष्ट देने का प्रबन्ध कर रहा है। अपनी इस कल्पना से उनके मन में इतना शोक हुआ कि घबराहट के मारे उनके हृदय की धड़कन बंद हो गई और उनका शरीर निर्जीव होकर पिंजरे के अन्दर पड़ा रह गया।

इस प्रकार अंग देश के विजेता तथा सैनिक श्रेणी के नेता परम प्रतापी सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार का ऐसी शोचनीय अवस्था में स्वर्गवास हुआ।

अजातशत्रु इस घटना को सुनकर शोक से मूर्छित हो गया।

॥ इति शुभम् ॥

'साकेत' और 'कामायनी' के पश्चात् चिन्तन काव्य की तीसरी प्रतिनिधि रचना

तथागत

भगवान् बुद्ध के जीवन पर आधारित एवं उनके दर्शन प्रतीकों को सरल रूप से सब के लिये बोधगम्य बनाने वाला यह प्रबन्ध काव्य प्रथमवार हिन्दी को मिला है। एक प्रकार से हिन्दी के लिये यह अनुपम काव्य कहा जायगा। कविवर कुमुद विद्यालङ्कार की युगभर की काव्य-साधना इस में सन्निहित है।

●

सुन्दर छपाई : अनेक दर्शनीय चित्र :

मोहक गेट-अप

मूल्य ३॥)

●

रीगल बुक डिपो, नई सड़क, दिल्ली